फौलाद का आदमी

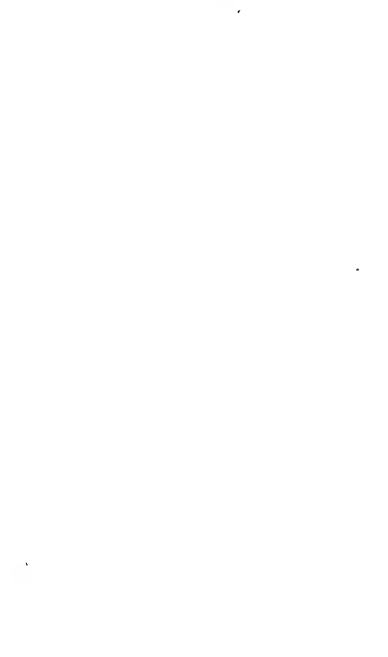
फौलाद का आदमी

रामकुमार भ्रमर



Geeta Bhawan

मनहर चौहान और लक्ष्मी को



फौलाद का आदमी, मैं और इतिहास के कुछ पन्ने

• •

विस्तृत, अपार नीलाकाश की तरह फैला भूतकाल और उससे जुड़े हुए विस्मयकारी इतिहास की अनंत गहराइयों तक डूब जाने में जो सुख मिलता है, उसकी कल्पना वे ही कर सकते हैं, जिन्होंने इतिहास-रस का पान किया है। बस, सत्तावन-क्रांति के इतिहास के प्रति ऐसी ही कुछ भूख और डूबने के आनन्द की चाह थी मन में। यह दावा नहीं करता, कि थाह पा गया हूँ (शायद कोई भी नहीं कर सकता) पर इतना निश्चित है कि कुछ खोज जरूर लाया होऊँगा। निर्णायक आप हैं।

अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता-संग्राम के बारे में पढ़ते-गुनते हर बार ऐसे-ऐसे चरित्रों की जानकारी मुझे मिली, जिनका बहुत कम वर्णन इतिहास के पन्नों पर है, पर जितना भी है, बहुत चौंकानेवाला है। यही नहीं, ऐसे चरित्रों को पढ़ते समय हर बार मुझे लगा कि उनके बारे में जितना लिखा गया, वह न सिर्फ नाकाफी है बल्कि उनके प्रति अक्षम्य अपराध भी है। तिस पर विशेष रूप से उस समय जब हम नए सन्दर्भों और आयामों में अपने इतिहास के पुनर्मूल्यांकन की बात करते हैं या फिर दावा करते हैं कि कर चुके हैं। कम से कम सत्तावन-क्रांति के बारे में ऐसा ही हुआ है। शासकीय स्तर पर भी और अशासकीय स्तर पर भी। हर ओर से कहा गया है कि हमने सन् १८५७ के संग्राम को उसके असली रूप

'स्वतंत्रता संग्राम' की तरह पहचान लिया है और उससे सम्बद्ध क्रांतिकारियों के बुत खड़े कर उन्हें पर्याप्त मान भी दे दिया है।

पर मुझे लगता है कि ऐसा बहुत है, जो नहीं हुआ है और ऐसा भी बहुत है, जिसे करके हमने किसी-न-किसी स्तर पर जाने-अनजाने कुछ विशिष्ट पात्रों के प्रति अन्याय किया है। 'फौलाद का आदमी' ऐसे ही एक विशिष्ट पात्र और उससे जुड़े पात्रों की कहानी है। और इस कहानी को वर्तमान-संदर्भों में देखने का प्रयास मैंने इस उपन्यास में किया है। मेरी निश्चित राय है कि इतिहास या भूतकाल विसराकर न तो वर्तमान की कोई इमारत गढ़ी जा सकती है और न भविष्य का कोई महल तैयार किया जा सकता है। मैं इस तरह के 'आधुनिकता-बोध' में विश्वास नहीं करता। मेरा विचार है कि इतिहास की घटनाओं को यदि आज की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थितियों में देखने की चेष्टा की जाये तो ऐसी बहुत-सी बातें पायी जा सकती हैं, जो शाश्वत हैं और जिन्हें हर वर्तमान या भविष्य बदले रूपों में भोगता है।

और इस विचार के साथ ही मैं सत्तावन-क्रांति और वर्तमान के बीच के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों के बारे में सोचता हूँ। लगता है कि सत्तावन क्रांति एक सबक है, प्रेरणा भी है और शायद वह कटु-यथार्थ भी है, जो 'पूर्णता' के दंभ में घिरे लोगों को यह बता-सिखा सकता है कि वे गलतफहमियों में जी रहे हैं। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो बदले रूपों में समय के साथ आज भी हैं।

१८५७ की क्रांति को शासकीय तौर पर स्वाधीनता संग्राम की ही संज्ञा दी गयी है तथापि इतिहासकारों में इस संग्राम को लेकर विभिन्न मत-मतान्तर आज भी हैं। किसी ने इसे क्रांति माना है तो किसी ने देशी राजाओं के स्वार्थों की लड़ाई, किसी के मतानुसार १८५७ में जन-विद्रोह हुआ था तो किसी ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा है।

'गदर' बहुत बहावदार शब्द है। पर भाषा के बहाव के लिए धर्मयुद्ध को, स्वतंत्रता-संग्राम को या देश से विदेशी सत्ता उखाड़ फेंकने के संगठित जन-प्रयास को 'गदर' की संज्ञा देना अपमानास्पद है। मैं 'विद्रोह' शब्द को

भी सतावन-क्रांति से जोड़कर बरदाश्त नहीं कर पाता। जिन्होंने इसे 'विद्रोह' कहा, उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि विद्रोह मूल अर्थ में वह होता है जो एक नालायक बेटा अपने पिता के प्रति करे या नौकर मालिक के प्रति करे। सतावन के संग्राम के लिए 'गदर' या 'विद्रोह' दोनों ही शब्द अनुपयुक्त हैं। अपनी छीनी गयी चीज की प्राप्ति के लिए लड़ी गयी लड़ाई के लिए 'विद्रोह' शब्द का प्रयोग गलत है। यह पहलू अलग है कि अंग्रेज इतिहासकारों की दृष्टि में वह 'विद्रोह' या 'म्यूटिनी' थी, किन्तु भारतीय इतिहासकार जब उसे 'विद्रोह' निरूपित करते हैं तो आश्चर्य से अधिक लज्जा आती है।

तब प्रश्न उठता है कि सतावन की लड़ाई आखिर थी क्या? उत्तर स्पष्ट है—"वह अन्याय से न्याय का धर्मयुद्ध था; स्वाधीनता-संग्राम था, देशभक्तों द्वारा परतन्त्रता से मुक्ति का महान प्रयास था; एक सहज भावना थी, जो कभी भी उद्घाटित होनी थी।"[1]

जिन सिपाहियों, नागरिकों, राजाओं ने इस संग्राम में भाग लिया, उनके मन में विदेशी सत्ता के प्रति क्षोभ और घुटन पहले से ही थी। जब तमाम हिन्दुस्तानियों (भले वे हिन्दू रहे हों या मुसलमान, राजा रहे हों या जन-साधारण) के सामने प्रतिकार की समूह-दृष्टि सामने आयी तो सहज ही उसने हर स्तर पर और हर शर्त पर विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का संगठित प्रयास किया—राजद्रोह या विद्रोह नहीं।

'लन्दन टाइम्स' के विशेष प्रतिनिधि सर विलियम हावर्ड रसेल ने, जो उस समय भारत में मौजूद था, लिखा है—

"We had a war of religion, a war of race, and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to re-establish the full power of native Chiefs and the full sway of native religions."[2]

(…वह ऐसा युद्ध था, जिसमें लोग अपने धर्म के नाम पर, अपनी

---

१. '१८५७ का स्वातंत्र्य समर' वि० दा० सावरकर।
२. 'माई डायरी इन इंडिया इन १८५८-५९' : रसेल।

कौम के नाम पर बदला लेने के लिए और अपनी आशाओं को पूरा करने के लिए उठे थे। इस युद्ध में समस्त राष्ट्र ने अपने ऊपर से विदेशियों के जुए को उतार फेंकने और उसकी जगह देशी नरेशों की पूर्ण सत्ता और देशी धर्मों के पूर्ण अधिकार फिर से कायम करने का संकल्प किया था।)

एक दूसरी दलील है कि १८५७ का युद्ध देशी राजाओं के स्वार्थों की लड़ाई थी। यह दलील शायद इस आधार पर दी जाती है कि इस युद्ध में नाना साहब पेशवा, महारानी लक्ष्मीबाई, सम्राट बहादुरशाह, कुंवरसिंह आदि ने नेतृत्व किया था। इन सभी को किसी-न-किसी तरह अंग्रेजों से हानि पहुँची थी, किन्तु ऐसा कहने से पूर्व इस एक पक्ष के अलावा दूसरे महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार नहीं किया जाता।

पहली बात तो यह कि हिन्दुस्तान का सम्पूर्ण इतिहास राजशाही का है। स्वाभाविक ही उस समय तक जनतंत्र या आज की तरह प्रजातंत्रीय शासन-पद्धति का विचार जन-साधारण के पास नहीं था। राजभक्ति या स्वामिभक्ति ही भारतीयों के गुण थे। दूसरे यह कि सैनिकों व जनता के सामने नेतृत्व के लिए योग्य और प्रसिद्ध व्यक्ति (जैसी उनकी कसौटी थी) नहीं थे। भारतीयों में जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच का विचार सदा से रहा है। कुलीन और चर्चित व्यक्ति ही नेतृत्व करने के अधिकारी हो सकते थे। किसी साधारण व्यक्ति में सारे गुण होते हुए भी सिपाही या जनता उसका नेतृत्व स्वीकार नहीं कर सकते थे। ऐसी स्थिति में उनके जाने-पहचाने राजा, जमींदार या सामंत ही उनका नेतृत्व कर सकते थे। यही नहीं, वे किसी सामान्य राजा या जमींदार पर एकाएक विश्वास नहीं कर सकते थे, अतः उन्होंने ऐसे लोगों को ही अपना नेता स्वीकार किया, जो किसी न किसी रूप में अंग्रेजों के विरोधी के रूप में सामने थे।

फिर इन अंग्रेज-विरोधी राजाओं और जनता या सैनिकों के बीच समझौतों की स्थिति पैदा हुई। मध्यस्थ बनकर जब असन्तुष्ट जनता या सैनिकों का कोई प्रतिनिधि ऐसे राजाओं से मिला तो उन्होंने तुरन्त उसका प्रस्ताव मान लिया। यह भी हो सकता है कि इस 'स्वीकार' के पीछे असंतुष्ट राजाओं को 'खोयी हुई सत्ता' या 'छिनी हुई पेंशन' की प्राप्ति का

मोह रहा हो। पर चूंकि क्रान्तिकारियों को स्वतंत्रता के लिए तथा राजा-महाराजाओं को शायद 'सत्ता-प्राप्ति के लिए' एक-दूसरे के सहयोग की जरूरत थी, अतः इस समझौते में दोनों को घाटा न था। समझौता हुआ और धर्मयुद्ध की बागडोर अधिकतर 'रिटायर्ड' राजा-महाराजाओं या जमींदारों के हाथों में रही। उदाहरणार्थ, जब मेरठ के क्रान्तिकारी दिल्ली पहुंचे तो उन्होंने बूढ़े मुगल सम्राट बहादुरशाह से, जो अंग्रेजों से पेंशन प्राप्त कर नौकरों-जैसी हालत में रह रहा था, नेतृत्व करने का निवेदन किया।

पं० सुन्दरलाल ने मेटकाफ का उद्धरण देते हुए बताया है —"सम्राट ने उनसे कहा कि मैं आप लोगों को तनखाह कहां से दूंगा? मेरे पास कोई खजाना नहीं है।"

"सिपाहियों ने उत्तर दिया—'हम लोग हिन्दुस्तान भर के अंग्रेजी खजाने ला-लाकर आपके कदमों पर डाल देंगे।'

"···बूढ़े सम्राट ने स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व स्वीकार कर लिया *और समस्त किला सम्राट की जय-ध्वनि से गूंज उठा।*"[1]

ठीक यही बात 'मैंलस्ट्रीम एण्ड म्योर' में काशीप्रसाद ने कही है।

और परिणाम हुआ, बहादुरशाह तथा क्रान्तिकारियों के बीच समझौता। दोनों का लक्ष्य एक था, चाहत एक थी। यह एक अलग बात थी कि किसी का लक्ष्य लौटा हुआ सम्मान और सत्ता पा जाना था, किसी का आजादी।

सत्तावन क्रांति को लेकर एक और बात भी कही जाती है कि वह योजनाबद्ध नहीं थी और न ही उसका पूर्व-संगठन हुआ था। कहा जाता है कि यह सब इत्तिफाकों की भीड़ से हुआ।

स्व० मौलाना अबुलकलाम आजाद ने लिखा है :

"१८५७ का विद्रोह सावधानी से बनायी गयी किसी निश्चित योजना पर आधारित नहीं था और न ही उसके पीछे बड़े-बड़े चतुर आयोजक ही

---

१. मेटकॉफ का कथन उद्धृत- पं० सुन्दरलाल (भारत में अंग्रेजी राज—तीसरी जिल्द, पृ० १५०८)

थे। अंग्रेज़ों की तरह बहादुरशाह को भी इस विद्रोह पर आश्चर्य था।"[१]

स्वर्गीय मौलाना साहब के विचार से मैं सहमत नहीं हूँ क्योंकि उन्होंने जिन ऐतिहासिक तथ्यों को प्रमाण मानने से इनकार कर दिया है, उन्हीं को मैं प्रमाण मानकर चला हूँ। यह बात भीजमती नहीं कि 'अंग्रेज़ों की ही तरह बहादुरशाह को भी इस विद्रोह पर आश्चर्य था।' यहाँ यह विचारणीय है कि यदि सम्राट् की सहमति का पूर्व संकेत क्रान्तिकारियों के पास न होता या सम्राट ने पूर्व निश्चय न कर रखा होता तो एकाएक ही सम्राट् उनके नेता बनने को तैयार न हो जाते। यदि बूढ़ा सम्राट् इस क्रान्ति से अनभिज्ञ होता तो मेटकाफ के ऊपर कहे गये संक्षिप्त से वार्तालाप पर न तो नेतृत्व स्वीकार करता और न क्रान्तिकारी ही इतने बड़े आयोजन का सेहरा उस के सिर बाँध देते।

क्रांति के इतिहास में ऐसे पचासों चरित्र मिलते हैं, जिन्होंने संगठन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और योजना के महत्त्वपूर्ण अंग रहे। फैजाबाद के मौलवी अहमदशाह का नाम संगठन के साथ सबसे पहले आता है। जन-साधारण और सैनिकों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न करने और उन्हें एक निश्चित समय पर स्वाधीनता-संग्राम में भाग लेने के लिए तैयार करने का बहुत-सा श्रेय उसी को है।

"विप्लव के उन सहस्त्रों प्रचारकों ने, जिन्होंने घूम-घूमकर जन-सामान्य के हृदयों को अपनी ओर किया, सबसे मुख्य नाम फैजाबाद के एक ज़मींदार मौलवी अहमदशाह का है। लखनऊ और आगरा के शहरों में दस-दस हज़ार आदमी अहमदशाह का व्याख्यान सुनने के लिए जमा होते थे। हिन्दू और मुसलमान अपनी सौ वर्ष की पराधीनता की कहानी सुन-सुनकर मौलवी के बयानों से यह शपथ खाकर उठते थे कि हम लोग आगामी स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राणों की बाजी लगा देंगे।"[२]

होम्स ने लिखा :

"A man fitted both by his spirit and his capacity to

---

१. अठारह सौ सत्तावन, भूमिका, पृ० ९ : सुरेन्द्रनाथ सेन के लिए मौलाना आजाद।
२. 'भारत में अंग्रेजी राज,' तीसरी जिल्द, पृ० १३९२ (पं० सुन्दरलाल)।

support a great cause and to command a great army. This was Ahmadullah, the Moulbi of Faizabad."[1]

(फैजाबाद का मौलवी अहमदुल्लाह एक ऐसा व्यक्ति था, जो अपने भावों और अपनी योग्यता दोनों की दृष्टि से एक महान आन्दोलन को चलाने और एक विशाल सेना का नेतृत्व करने, दोनों के योग्य था।)

सत्तावन के विप्लव का सम्पूर्ण इतिहास ऐसे व्यक्तियों की सूझबूझ और योग्यता से भरा पड़ा है। क्रांति के संगठन के लिए ऐसे प्रचारक व संगठक सम्पूर्ण देश में घूमते थे।

सर जॉर्ज ली ग्रांड जेकब लिखता है :

"But it is difficult to describe the wonderful secrecy with which the whole conspiracy was conducted and the forethought supplying the schemes and the caution with which each group of conspirators worked a part, concealing the connecting links and instructing them with sufficient information for the purpose in view. And all this was equalled only by the fidelity with which they adhered each other."[2]

(जिस आश्चर्यजनक और गुप्त ढंग से यह समस्त षड्यन्त्र चलाया गया, जितनी दूरदर्शिता के साथ योजनाएं की गयी, जिस सावधानी के साथ इस संगठन के विविध समूह एक-दूसरे के साथ काम करते थे, एक समूह का दूसरे के साथ सम्बन्ध रखनेवाले लोगों को किसी का पता न चलता था और इन लोगों को केवल इतनी ही सूचना दी जाती थी जितनी उनके कार्य के लिए आवश्यक होती थी। इन सब बातों को बयान कर सकना कठिन है और ये लोग एक-दूसरे के साथ आश्चर्यजनक वफादारी का व्यवहार करते थे।)

पं० सुन्दरलाल ने इसी सन्दर्भ में कुछ नेताओं की बातचीत को लेकर

---

१. 'इंडियन म्यूटिनी' (होम्स)
२. 'वेस्टर्न इंडिया' (सर जार्ज ली ग्रांड जेकब, के० सी० आई० सी० बी०)

योजनाबद्ध होने की बात कही है :

"...मार्च, सन् १८५७ के प्रारंभ में नाना साहब और अज़ीमुल्ला खाँ तीर्थयात्रा के बहाने बिठूर से निकले। नाना साहब का भाई बाला साहब भी उनके साथ था। सबसे पहले ये लोग दिल्ली पहुँचे। लाल किले के दीवानेखास में सम्राट् बहादुरशाह, बेगम ज़ीनतमहल और दिल्ली के मुख्य-मुख्य नेताओं के साथ इन लोगों की बातचीत हुई। इसके बाद नाना अम्बाला गया। अन्य अनेक स्थानों का चक्कर लगाने के बाद १८ अप्रैल को नाना और उसके साथी लखनऊ पहुँचे ..."[१]

सुन्दरलालजी के इस कथन की पुष्टि में जे० सी० विल्सन का निम्न कथन देखा जा सकता है :

"From the available evidence, I am quite convinced that the 31st of May, 1857 had been decided on as the date for simultaneous revolt."[२]

(प्राप्त प्रमाणों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया हूँ कि ३१ मई, १८५७ का दिन भारत में एक साथ विप्लव करने के लिए नियत कर दिया गया था...)

क्रांति के संगठकों ने उस समय जो दौरे किये उनसे भी सिद्ध है कि क्रांति का संगठन हुआ था। मार्च में जब नाना साहब बिठूर से तीर्थयात्रा के बहाने निकले तो कालपी, लखनऊ आदि ऐसे स्थानों पर गये जो तीर्थ-स्थान नहीं हैं।

सुरेन्द्रनाथ सेन लिखते हैं : "भारत में आनेवाला नया आदमी भी यह जानता था कि कालपी और लखनऊ हिन्दुओं के तीर्थस्थान नहीं हैं। नाना साहब के दल में अज़ीमुल्ला खाँ भी था। एक हिन्दू यात्री के साथ मुसलमान का होना बड़ी अजीब बात थी।"[३]

---

१. 'भारत में अंग्रेजी राज', तीसरी जिल्द, पृ० १३६१ (पं० सुन्दरलाल)

२. आफीशियल नेरेटिव आर हाइटस को 'कम्प्लीट हिस्ट्री ऑफ दी ग्रेट सिपाय वार' में जे० सी० विल्सन का कथन।

३. 'अठारह सौ सत्तावन' (सुरेन्द्रनाथ सेन)

ऐसे एक नहीं अनेक तथ्य हैं जो यह विश्वास करने के लिए बाध्य करते हैं कि क्रान्ति संगठित थी। उसके पीछे योग्य आयोजक थे। सारी कार्यवाही इस सीमा तक गुप्त रही थी कि यह जानते हुए भी कि कुछ 'अनिश्चित' होनेवाला है, अंग्रेजी शासन उस 'कुछ' का पता लगाने में स्वयं को असमर्थ पाता था। क्रान्ति से पूर्व ही सभी ओर इस बात का प्रचार हो गया था कि 'जल्दी ही कुछ होगा'। कानपुर में तो 'अज्ञात आशंका' से अंग्रेज भयभीत थे। पर यह क्या, कब, कैसे होगा, यह सब किसी को पता न था। यदि क्रान्ति संगठित न होती तो ऐसी आशंकाएं फैलना अस्वाभाविक होता।

हर्डीकर ने लिखा है : "कानपुर में भय, आशंका और अविश्वास का वातावरण था। अंग्रेज समझते थे कि किसी भी समय हिन्दुस्तानी उन पर आक्रमण कर सकते हैं, अतः वे सदा ही सशस्त्र रहते थे। सभी हिन्दुस्तानियों को शंका की दृष्टि से देखते थे।"[1]

सर जॉन के ने उस समय की स्थिति का वर्णन इस तरह किया :

"For months, for years, indeed they had been spreading their net work of intrigues all over the country."[2]

एक अन्य स्थान पर सर जॉन के ने सिपाहियों की गुप्त सभाओं की चर्चा करते हुए ऐसी सभाओं में भाषण करने वालों के मुंह पर नकाब पड़ा होना बताया है।

कमल और रोटी के प्रतीक भी इस बात का कम बड़ा प्रमाण नहीं है कि संग्राम की योजना सैनिक और जन-स्तर पर काफी गहराई से संगठित की जा रही थी। कमल का फूल सैनिकों के लिए क्रान्ति में भाग लेने का सन्देश था और चपाती ग्राम-ग्राम पहुंचाकर जनता से सहयोग की प्रतिज्ञा करवाई जाती थी।

एक चौकीदार अपने पास के गांव से दूसरे चौकीदार को छः चपातियां देता और साथ में निर्देश देता था कि इन चपातियों के टुकड़े प्रमुख ग्रामीणों

१. '१८५७' पृ० ११९ (श्रीनिवास बालाजी हर्डीकर)
२. 'इंडियन म्यूटिनी, पहली जिल्द, पृ० २४ (सर जान के)

में वितरित कर यह संकेत दे दिया जाए कि वे उस महान कार्य में, जो हाल में ही होने जा रहा है, अपनी सम्पूर्ण शक्ति और निष्ठा से हाथ बटाएँ। स्मरणीय है कि इन चपातियों के साथ ग्रामीणों को इस बात का संकेत बिलकुल न मिलता था कि आगामी ऐसा कौन-सा महान कार्य है, जो होने जा रहा है। परिणामस्वरूप ग्रामों में एक रहस्यमय अशांति फैल गयी। लोग जानते थे कि कुछ होगा, पर वह क्या, कब और कैसे होगा, यह उन्हें ज्ञात न था। उन्हें केवल इतना मालूम था कि वह कोई जबरदस्त घटना होगी। रहस्य केवल उन्हीं लोगों तक था, जो क्रांति के अत्यधिक विश्वास-पात्र नेता थे। सैनिकों में भी कुछ लोगों को ही कमल के फूल का मतलब मालूम था, हालांकि फूल हर सैनिक तक पहुँच चुके थे।

चपाती को लेकर डा० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी ने अपनी पुस्तक में कर्नल वी० वी० मैलेसन का निम्न लेख उद्धृत किया है: "मुझे लेश-मात्र भी सन्देह नहीं कि मौलवी अहमदुल्लाह शाह विद्रोह का मस्तिष्क था। उसने अपनी यात्रा के समय चपाती की योजना निकाली।"[1]

मैलेसन का कथन उसका अनुमान ही माना जाना चाहिए, क्योंकि इसके अलावा कहीं भी इस बात का संकेत नहीं मिलता कि चपाती मौलवी की सूझ थी। सच तो यह है कि चपाती और कमल का फूल कैसे, कहाँ से और कब स्वतंत्रता संग्राम के चिह्न बने, अब तक निश्चित पता नहीं चल सका है। इतना अवश्य है कि ये संकेत उस समय सारे भारत में घुमाये जा रहे थे।

अब कुछ नेताओं की बात। सुन्दरलालजी के अनुसार क्रान्ति के मुख्य नेताओं में नाना पेशवा सबसे पहला था, जबकि अजीमुल्ला दूसरा। हो सकता है कि ऐसा ही रहा हो, किन्तु कुछ ऐसे तथ्य भी हैं, जो हमें इस धारणा पर पुनर्विचार के लिए बाध्य करते हैं, जैसाकि मैंने पूर्व में लिखा तत्कालीन भारत सामाजिक और राजनैतिक रूप से उस समय तक राज-शाही परम्परा का आदी था, अतः स्वाभाविक था कि क्रांति का नेतृत्व किसी देशी राजा के हाथ में रहता। पर क्या किसी क्रांति में तलवारबाजी

१. 'स्वतन्त्र दिल्ली', पृ० १७१८ (डा० सैयद अतहर अब्बास रिजवी)

करने भर में किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों को उसका सम्पूर्ण श्रेय दिया जा सकता है?

मुझे लगता है कि नहीं। श्रेय है, पर कुछ अंशों तक। मूल श्रेय उस मस्तिष्क को मिलना चाहिए, जिसके दिमाग में सबसे पहले क्रान्ति की योजना आयी। और वह था अजीमुल्ला—तत्कालीन समाज-स्थिति के तहत एक बहुत साधारण आदमी। अपनी योजना को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उसे किसी राजा या सामन्त की आवश्यकता थी, और माध्यम बना था—नाना पेशवा।

नाना पेशवा स्वयं बहुत योग्य राजनीतिज्ञ नहीं था। पं० सुन्दरलाल ने स्वयं ही स्वीकार किया है: "कानपुर के समस्त अंग्रेज और उनकी मेमें नाना साहब के महल में ठहरती रहती थीं। नाना उनकी खूब खातिर-तवज्जोह करता था और चलते समय कीमती दुशाले और आभूषण आदि उनको भेंट करता रहता था···

"···जब पेंशन बन्द हो गयी और अजीमुल्ला की लन्दन में वकालत असफल हो गयी तब परिणाम यह हुआ कि उसी समय से युवक नाना साहब के चित्त में अंग्रेजों की ओर से घृणा उत्पन्न हो गयी। वह अपने और अपने देश को अंग्रेजों के पंजों से छुड़ाने की तदबीरें सोचने लगा।"

पेशवा के व्यक्तित्व के बारे में सहज रूप से अंग्रेज इतिहासकार सर जॉन के ने लिखा:

"Quite unostentateous young man, not at all addicted to any extra habits and invariably showing a ready disposition to attend to the British Commissioner."[1]

(शान्त स्वभाव और आडम्बर रहित युवक था। उसमें कोई भी बुरी आदत न थी और वह अंग्रेज कमिश्नर की सलाह मानने के लिए सदा तत्पर रहता था।)

ऐसे विचार भी मिलते हैं, जिनके आधार पर नाना क्रान्ति के एक योग्य और वीर नेता के रूप में तो सामने आता है, किन्तु ऐसा नहीं कि

---

१. 'हिस्ट्री ऑफ दी सिपाय वार', पहली जिल्द, पृ० १०४ (सर जॉन के)

समस्त क्रान्ति का सेहरा उसी के सिर बाँध दिया जाए। हालाँकि क्रांति संचालन विठूर से ही होता था। ऐसे अनेक पत्र-व्यवहार भी नाना ने ही किये थे, किन्तु नाना के पीछे ऐसा कौन-सा व्यक्तित्व कार्य कर रहा था, यह भी विचारणीय है।

सुरेन्द्रनाथ सेन के अनुसार नाना का व्यक्तित्व यह है :

"जान लैंग को कुछ दिनों तक उसका अतिथि होने का अवसर मिला था। उसने नाना साहब को बहुत ही साधारण प्रतिभावाला व्यक्ति बताया है। उसने लिखा है कि मुझे यह आदमी बहुत योग्य नहीं लगा है, पर मूर्ख भी नहीं है।"[1]

एक अन्य अंग्रेज़ शेरर ने लिखा है :

"मैंने डाक्टर जे० एन० त्रेसीदर से यह सुना था कि धोंडूपंत बहुत नीरस आदमी था। तीस या चालीस के बीच की आयु का। मझोले कद का, चौड़े-चपटे नाक-नक्श का और निरन्तर मोटा होते जानेवाला यह व्यक्ति यदि तिकोनी मराठा पगड़ी न पहनता होता तो वह बाजार के एक मामूली दुकानदार जैसा लगता। वह पगड़ी अच्छी तरह नहीं बाँधता था। वह अंग्रेज़ी नहीं बोलता था।"[2]

अब प्रश्न उठता है उस शक्ति और व्यक्तित्व का, जो सम्भवतः नाना को संचालित कर रही थी और विठूर स्वाधीनता-संग्राम का केन्द्र बन गया था।

नाना के आसपास चार व्यक्ति हैं—राव साहब, बाला साहब, तात्या टोपे और अज़ीमुल्ला खां। राव साहब, नाना का भतीजा था तथा बाला साहब भाई। क्रान्ति के समय ये दोनों चरित्र उभरकर सैन्य-संचालन में सामने आये। वे खूब लड़े, कुरबान भी हो गये, किन्तु क्रान्ति-संगठन और उससे पूर्व उन्होंने तसवीर में कोई भी महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा नहीं किया। तीसरा व्यक्ति तात्या भी सैनिक है। इतिहास में वह एक दूरदर्शी और लड़ाका सेनापति तो है, किन्तु नीतिज्ञ नहीं। तब एकमात्र आदमी बचता

१. 'अठारह सौ सत्तावन', पृ० २२५ (सुरेन्द्रनाथ सेन)
२. 'मेमोरोज ऑफ दी इंडियन म्यूटिनी', पृ० २२५ (शेरर)

है—अजीमुल्ला खां।

देशी और विदेशी सभी इतिहासकार एकमत होकर अजीमुल्ला के बहुमुखी व्यक्तित्व तथा प्रभावशाली गुणों को स्वीकार करते हैं। क्रान्ति के समय के अंग्रेज सेना-अधिकारियों तथा अखबारनवीसों ने अजीमुल्ला की विद्वत्ता, नीतिज्ञता तथा दूरदर्शिता स्वीकार की है।

सुन्दरलाल ने लिखा है : "अजीमुल्ला अत्यन्त नीतिज्ञ था। अंग्रेजी, फ्रांसीसी दोनों भाषाओं का पूर्ण पंडित था। विलायत में वह हिन्दुस्तानी वेश में ही रहता था। देखने में वह अत्यन्त सुन्दर था।"[1]

सुरेन्द्रनाथ सेन ने अजीमुल्ला को 'अद्भुत आदमी' कहकर उसके व्यक्तित्व को 'सेल्फ मेड' बताया है। उन्होंने लिखा है: 'वास्तव में अजीमुल्ला के प्रारम्भिक जीवन के बारे में कुछ अधिक मालूम नहीं है।"[2]

मोब्रे थॉमसन का कहना है :

"अजीमुल्ला एक ऐंग्लो इंडियन परिवार में खिदमतगार था। अवसर से लाभ उठाकर उसने अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा का अच्छा-खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वह इन दोनों भाषाओं को अच्छी तरह लिख सकता था और इनमें अच्छी तरह बातचीत कर सकता था। पहले वह विद्यार्थी बना और फिर गवर्नमेंट स्कूल में अध्यापक हो गया और इसके बाद वह नाना का वकील बना।"[3]

अजीमुल्ला खां के प्रारम्भिक जीवन के बारे में इतिहासकारों ने भिन्न-भिन्न बातें कही हैं, किन्तु हर बात से इतना अवश्य सिद्ध है कि वह एक औसत दर्जे के परिवार से उच्चतम स्थिति तक पहुँचा था।

लेकर्ड ने कहा है :

"अजीमुल्ला भी दान के टुकड़ों पर पला था। १८३७-३८ के अकाल में उसे अपनी माँ के साथ बंगाल से कलकत्ता से लाया गया था। उस समय वे भूखे मर रहे थे। उसकी माँ एक कट्टर मुसलमान होने की वजह

---

१. 'भारत में अंग्रेजी राज', तीसरी जिल्द (पं० सुन्दरलाल)
२. 'अठारह सौ सत्तावन', पृ० १२९ (सुरेन्द्रनाथ सेन)
३ 'अठारह सौ सत्तावन', पृ० १२६ (सुरेन्द्रनाथ सेन द्वारा उद्धृत थॉमसन का कथन)

से, अपने लड़के को, जो उस समय बच्चा ही था, ईसाई बनाये जाने के विरुद्ध थी। उसकी शिक्षा-दीक्षा कानपुर के फ्री स्कूल में पैटन नामक एक अंग्रेज़ अध्यापक की देखरेख में हुई और सहायता के तौर पर उसे तीन रुपया मासिक भत्ता मिलता था। उसकी माँ आया का काम करके अपना जीवन-निर्वाह करती थी। दस साल की पढ़ाई के बाद अजीमुल्ला उसी स्कूल में अध्यापक हो गया। दो साल बाद वह ब्रिगेडियर स्कॉट का मुंशी हो गया। जब ब्रिगेडियर स्कॉट जाने लगे तो उन्होंने अज़ीमुल्ला खाँ को अपने उत्तराधिकारी का मुंशी बना दिया। ब्रिगेडियर अंशबर्नहम के साथ अज़ीमुल्ला ने ठीक बर्ताव न कर उसे नाराज कर दिया और फिर वह रिश्वत के आरोप में नौकरी से निकाला गया, फिर वह नाना के पास आ गया।"[1]

इन दोनों कहानियों से एक बात स्पष्ट होती है कि अज़ीमुल्ला खां जन्मजात प्रतिभाशाली था। इस प्रतिभा का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि बहुत छोटे दरजे से उठकर उसने नाना पेशवा के प्रमुख सलाहकार और मित्र की हैसियत बनाई थी।

एक ओर अज़ीमुल्ला का यह प्रारंभिक विकास और दूसरी ओर उसका आकर्षक, सुन्दर और प्रभावशाली व्यक्तितत्व। लॉर्ड रॉबर्ट्स ने ३१ दिसम्बर, १८५७ को अपनी बहन के नाम एक पत्र में लिखा :

"उस दिन बिठूर में नाना साहब के महल की तलाशी लेते समय हमें उस दुष्ट अज़ीमुल्ला के नाम इंग्लैंड की महिलाओं के पत्रों का एक गट्ठर मिला। एक पत्र ऐसी स्त्री का था, जिसमें नीचे 'तुम्हारी स्नेहमयी माता' लिखा हुआ था। एक पत्र ब्राइटन से मिला। यह एक लड़की का था, जिसमें प्रेम की बातें लिखी हुई थीं। इस पत्र का कुछ भाग फ्रेंच में लिखा हुआ था। ऐसी बकवास मैंने पहले कभी नहीं पढ़ी। मालूम होता है कि यह दुष्ट फ्रेंच भी समझता होगा। अंग्रेज़ महिलाएं वासना के नशे में कितनी अन्धी हो जाती हैं? कोई कुमारी...अज़ीमुल्ला से शादी करने वाली थी और मुझे लगता है कि अब भी वह ऐसा करना पसन्द करेगी, हालांकि

१. पर्सनल नेरेटिव ऑफ दी आउटब्रेक एण्ड मेसेकर एट कानपुर (शेफर्ड)

कानपुर के हत्याकांड में मुखिया व्यक्ति यही अजीमुल्ला खाँ था।"[1]

नाना पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरतमहल या तात्या टोपे क्रांति के सैनिक नेता ही थे, जबकि संगठक और आयोजक ऐसे लोग थे, जो सेनानायक न होने या उच्च कुलों में न जन्मे होने के कारण इतिहास में अप्रकाशित रह गये। जैसा कि हमने पूर्व में कहा, क्रान्ति अवश्यभावी थी। अंग्रेजों के प्रति जन-साधारण व सैनिकों में प्रारंभ से ही असंतोष था, पर यह असन्तोष चिनगारी भर था। यह चिनगारी हर आदमी के मन में पैदा हो चुकी थी, किन्तु हर आदमी की अपनी-अपनी चिनगारियाँ थी। वे सगठित नहीं थी। ऐसे समय पर इन चिनगारियों को एकसूत्र में पिरोने का काम शेष था। लोग अंग्रेजी शासन का जुआ उतार तो फेंकना चाहते थे, पर उनके समक्ष महान् अंग्रेजी शक्ति और उसकी सम्पन्नता का भय था। ऐसी स्थिति में अपनी-अपनी चिनगारियाँ दबाये हुए लोग खामोश पड़े थे। तब कुछ ऐसे लोग सामने आये, जो उन्हें जाग्रत कर रहे थे, सगठित करते घूम रहे थे। ऐसे जिन लोगों ने चिनगारियों को एकत्र कर विशाल ज्वाला का रूप दिया, वे इतिहास के पन्नों में बहुत फीके हैं। इन लोगों में अजीमुल्ला खाँ ही सबसे पहला और कीमती नाम है।

संसार में जहाँ, जितनी भी क्रान्तियाँ हुई, उनकी भूमिका में किसी न किसी नीतिज्ञ की सूझ-बूझ अवश्य रही है। यह अटल नियम है कि बिना किसी विचारक या नीतिज्ञ की सूझबूझ के न तो किसी देश में राजनैतिक क्रान्ति संभव है, न सामाजिक या धार्मिक। भारत में बहुविधि क्रान्तियाँ हुई हैं। कृष्ण, शंकराचार्य, बुद्ध, महावीर आदि ने यदि धार्मिक क्रान्तियाँ कीं तो राजनीति में चाणक्य, तिलक और गांधी जैसे कूटनीतिज्ञों ने क्रांतिकारी विचारभूमि रखी।

सन् १८५७ की क्रान्ति में सैनिक नेता तो बहुत दीखते हैं, किन्तु उतने विशाल योजनाबद्ध युद्ध की वैचारिक पृष्ठभूमि नीतिज्ञ के नाम पर विधवा है। तब सहज ही यह समझा जाता है कि उसके पीछे कोई नीतिज्ञ नहीं था, किन्तु जैसाकि हमने पूर्व में कहा, वैचारिक पृष्ठभूमि के बिना न

१. 'रॉबर्ट्स लैटर्स ड्यूरिंग दी इंडियन म्यूटिनी।'

तो कोई घटना होती है, न क्रांति, फिर अठारह सौ सत्तावन का महान् स्वातंत्र्य-संग्राम नीतिज्ञ के नाम पर अनाथ कैसे हो सकता है ?

सत्तावन-क्रान्ति की पृष्ठभूमि से अज़ीमुल्ला का नाम निकाल दिया जाये तो अवश्य पृष्ठभूमि अनाथ हो सकती है, पर इतिहासकार लाख नकारते रहें, क्रान्ति के आधार-स्तंभ को नहीं निकाला जा सकता। हालाँकि बहुत से लोगों ने ऐसा ही गलत प्रयत्न किया है और ऐसे लोगों को तत्कालीन भारतीय सामंतशाही और गुलामी के युग ने सहायता दी है।

अज़ीमुल्ला क्रान्ति का ऐसा चरित्र है, जिसके साथ न सिर्फ हमारी समाज-व्यवस्था ने उस समय अन्याय किया, अपितु आज भी उसका सही मूल्यांकन नहीं हो सका है। यह एक दुखद विडम्बना थी कि तत्कालीन सामाजिक ढाँचे में क्रान्ति की महान योजना का जनक होते हुए भी न तो अज़ीमुल्ला को जन-समर्थन ही मिल सकता था और न ही वह नेतृत्व कर सकता था, लाचार उसने अपने सभी मौलिक विचार और योजनाएँ पेशवा नाना साहब को उधार देकर अपना स्वप्न साकार किया।

अज़ीमुल्ला की योग्यता और दूरदर्शिता के बारे में भारतीय इतिहास-कारों ने बहुत कम और विदेशी इतिहासकारों ने काफी लिखा है। वही व्यक्ति था, जो उस युग में भी अपने देश की आज़ादी के लिए विदेशों में सहायता-प्राप्ति के लिए घूमता रहा। वह पेशवा की पेंशन के मामले में वकालत करने इंग्लैंड गया और वापसी में कुस्तुनतुनिया, सेवस्तोपोल और अन्य स्थानों का दौरा करता आया। जहाँ भी वह पहुंचा, वहाँ से उसने भारतीय स्वतंत्रता के लिए सहायता पाने की चेष्टा की। इटली में गैरीबाल्दी ने तो उसे आश्वस्त ही कर दिया था, पर जब तक गैरी-बाल्दी की सहायता प्राप्त होती, हिन्दुस्तान का स्वाधीनता-संग्राम कुचला जा चुका था। गैरीबाल्दी और नाना में जितना भी पत्र-व्यवहार हुआ, उसका कारण अज़ीमुल्ला था।

अज़ीमुल्ला की मृत्यु पर इतिहासकार एकमत नहीं हैं। कुछ के अनु-सार उसकी मौत कानपुर-क्रांति के दौरान ही हुई और कुछ ने कहा है कि बिठूर से फतहगढ़ भागते समय वह पेशवा नाना साहब के साथ था।

किंवदन्तियाँ हैं कि वह पेशवा के साथ नेपाल की तराइयों में बरसों तक भटकता रहा। बाद में पेशवा के साथ ईरान चला गया। किन्तु यह बात जड़मूल में ही बड़ी थोदी लगती है,क्योंकि अब तक पेशवा नाना साहब की मृत्यु भी कम विवादास्पद नहीं रही है।

नाना के बिठूर छोड़ने के सम्बन्ध मेंअनेक इतिहासकारों ने तत्कालीन प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार विष्णुभट्ट गोडसे केवर्णन को ही सत्य माना है—गोडसे ने पेशवा की बिठूर से रवानगी का दृश्य अपनी आँखों देखा था। उन्होंने लिखा है :

"...ब्राह्मणों को प्रणामादि कर श्रीमंत ने नाव पर पैर रखे। उनके बाद उनकी और भाइयों की पत्नियाँ बैठी। कैलासवासी श्रीमंत बाजीराव पेशवा की विधवा पत्नी और उनकी ओरस-पुत्री—ये पाँच महिलाएँ नाव पर चढ़ी, तत्पश्चात् राव साहब और बाला साहब उस पर आये। श्रीमंत के एक स्वामिभक्त अनुचर राघोबा ने भी उनके साथ चलने की जिद की। नाव में बहुत वजन हो गया था, किन्तु जब राघोबा नहीं माना तो श्रीमंत ने भावविभोर हो, उसे भी नाव में बिठाल लिया...इस तरह नाव पर नौ व्यक्ति हो गये। और फिर नाव चली जा रही थी अज्ञात दिशा की ओर..."

इस वर्णन में अज़ीमुल्ला का नाम नहीं है। प्रकट है कि नाना की रवानगी के समय अज़ीमुल्ला या तात्या दोनों में से कोई उनके साथ न था। गोडसे ने स्पष्ट रूप से जिन नौ व्यक्तियों के नाव पर होने का ज़िक्र किया है, उनमें पेशवा के परिवार के अलावा उनका एकमात्र सेवक राघोबा ही है। तब यह मानना कठिन ही नहीं असंभव है कि नाना के साथ अज़ीमुल्ला भी था।

कानपुर के सत्तीचौरा घाट के हत्याकांड के समय तक अज़ीमुल्ला कानपुर में मौजूद था, इस बात का प्रमाण रॉबर्ट्स का अपनी बहन के नाम लिखा वह पत्र है, जिसमें उसने हत्याकांड के लिए अज़ीमुल्ला को जिम्मेदार ठहराया है। यही एक प्रमाण है,जिसके बाद से अज़ीमुल्ला एकाएक गायब हो जाता है। तब क्यों न समझा जाये कि कानपुर-क्रान्ति में ही

अज़ीमुल्ला की इति हुई।

यदि अज़ीमुल्ला के कार्यकलाप का समाप्तिस्थल कानपुर ही माना जाये तो भी वह अपने संक्षिप्त-से जीवन में इतना काम तो कर ही चुका था कि इतिहास-लेखक उसका नाम भूलने की गुस्ताखी न करते।

जो भी हो, मैंने यह गुस्ताखी नहीं की है। 'फौलाद का आदमी' अज़ी-मुल्ला और सत्तावन-क्रान्ति की एक किरण भर है, उसे समूची कह देने का साहस मैं नहीं कर सकता हूँ।

कानपुर में नाना पेशवा की फौज द्वारा की गयी अंग्रेज़ों की घेराबन्दी का वर्णन मोब्रे थॉमसन की डायरी के आधार पर किया गया है। थॉमसन घिरे हुए अंग्रेज़ों में से था और सत्तीचौरा घाट के हत्याकांड के बाद जो थोड़े बहुत अंग्रेज़ बचकर निकल सके थे, उनमें वह भी था।

—रामकुमार भ्रमर

बालाबाई का बाज़ार,
ग्वालियर–१

१

कानपुर !

सन् १८५४ के जून की तपती दोपपरी में एक खूबसूरत बंगले से चली एक घोड़े की टमटम शहर के एक छोर से दूसरे पर जा रुकी। यहाँ शहर की सबसे अधिक गंदी बस्ती थी। बूढ़ा कोचवान, जिसका सांवला रंग धूप की तेजी के कारण काला दीखने लगा था, बहुत थकी-सी, कुछ ऐसी चाल से, जैसे घोड़े की जगह वही जुता रहा हो, चलता हुआ, किसी चौकोर डिब्बे की तरह बन्द टमटम के दायीं ओर पहुंचा। खिड़की का पर्दा उठाकर उसने कुछ फुसफुसाहट की, फिर पर्दा ज्यों-का-त्यों बन्द कर दिया। एक क्षण वहीं खड़े रहकर उसने लाल पगडी के नीचे माथे पर बह आया पसीना पोंछा, फिर सामने के गंदे झोंपड़े के पासवाले चबूतरे पर छांह में बैठे व्यक्तियों की ओर धीमी-धीमी चाल से बढ़ा।

वे लोग खड़े हो गये। गंदी बस्ती में एक उजली बग्घी आयी, तन्दुरुस्त घोड़ा रुका, निस्सदेह ही यह कोई महत्त्वपूर्ण बात थी। बूढ़ा कोचवान उनके पास चला गया। खड़े हुए लोगों के चेहरे भय से सूखने-मुर्झाने लगे। वे इस तरह ऊबे-ऊबे और परेशान दीखने लगे, जैसे उनका सब कुछ लुट गया हो या भयानक धूप में उन्हें पांच मील पैदल चलकर वहाँ आना पड़ा हो।

कोचवान ने पूछा, "गफूरी बेगम यहीं रहती है ?"

इक्ट्ठा लोगों में से एकाएक किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। एक-दूसरे के चेहरे देखे।

"सुना कि नहीं ?" कोचवान कुछ ऊँचे स्वर में ऐसे बोला, जैसे टमटम के पर्देनुमा डिब्बे में बैठने वाला आदमी वही है, "गफूरी बेगम यहीं रहती है ?"

'हूँ !" चार में से एक ने कुछ चौंककर कहा, "हाँ !" फिर एक ओर गंदे मकानों की ओर संकेत किया, "उधर, यहाँ से पाँचवाँ झोंपड़ा गफूरी बेगम का ही है ।"

बूढ़े कोचवान ने दर्शाये संकेत तक दृष्टि दौड़ाई, फिर बोला, "वहाँ तक चलकर बताओ न !"

चारों में से सभी ने एक-दूसरे के चेहरे देखे, फिर वह व्यक्ति जिसने मकान बताया था, चुपचाप कोचवान के आगे-आगे हो लिया ।

दोनों एक गंदे और बेहद दुर्गंधयुक्त झोंपड़े के पास जा रुके ।

"यही है गफूरी का मकान ?" बूढ़े कोचवान ने झोंपड़ी की किवाड़ी में एक हल्का-सा धक्का देकर जानकारी की, फिर स्वीकृति के लिए पीछे मुड़कर देखा, तो वह व्यक्ति दूर सड़क पर लौटता जाता दिखाई दिया ।

कोचवान शायद उसे बुलाता, किन्तु तभी झोंपड़ी के भीतर से आवाज़ आयी, "क्या बात है ?"

"कुछ नहीं ।" कोचवान ने भारी स्वर में पूछा, "गफूरी बेगम यहीं रहती है ?"

"हाँ, मैं ही हूँ ।" एक टूटा-सा, कमज़ोर नारी-स्वर उभरा । कोचवान तेज़ी से दो कदम बढ़कर प्रवेश कर गया ।

झोंपड़ी बाहर से जितनी गंदी दीखती थी उतनी भीतर से नहीं थी । एक ओर पड़ी चारपाई पर वृद्धा गफूरी बेगम लेटी थी । कोचवान को आया देखकर वह कराहती हुई उठने लगी ।

"आप ? ···अमीन मियाँ ?"

"हाँ, गफूरी बेगम!" कुछ परेशान स्वर में अमीन कोचवान ने आश्चर्य-पूर्वक पूछा, "तुम्हें क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं ।" गफूरी बेगम बैठ गई । स्त्री-सुलभ सरलता के साथ

शरीर के बाएँ-दाएँ कपड़े सभाले, बोली, "पिछले चार दिनों से मुझे बुखार आ रहा है, मियाँ !"

"हूँ," अमीन ने जैसे सुना ही नहीं और अगर सुना तो समझने की तकलीफ नहीं उठाई। नये सिरे से बात प्रारम्भ कर दी। बोले, "तुम नहीं आयीं बेगम, तो गए चार दिनों से बाबा लोग बड़ी तकलीफ में है।"

"मैं खुद भी काफी परेशान हूँ, मियाँ!" गफूरी बेगम ने कराहा। दबी थकी-सी आवाज में उत्तर दिया, "बाबा लोग को रोज ही याद कर लेती हूँ, पर बड़ी लाचारी है। कमबख्त बुखार ने तो हाथ-पैर ही तोड़ डाले हैं।" कहते-कहते गफूरी बेगम ने एकाएक ही पीड़ा भूलकर स्वर थोड़ा ऊंचा किया, "अरे! आप·· खड़े हैं? बैठ जाइए! बैठ जाइए!"

"नहीं-नहीं, मुझे जल्दी है!" अमीन कोचवान दो कदम पीछे हटकर अपनी व्यस्तता प्रकट करने लगा, "दो दिनों से साहब को टालता रहा हूँ, बेगम! मगर बाबा लोग तो मानता ही नहीं। रोता है और बोलता है···'फूरी बेगम के पास जायँगा! फूरी बेगम के पास जायँगा! उसकी पप्पी लँगा!' साहब से उसका तकलीफ नहीं देखा गया तो खुद ही तुम्हारे पास आया है!"

"साहब खुद आया है?" गफूरी बेगम का बुखार जैसे चुटकी मारते हवा हो गया, "कहाँ है?"

"बाहर, टमटम में!" अमीन मियाँ ने बतलाया, "बहुत खफा है! दो दिनों से तुम्हारे लिए अंग्रेजी गालिया बोलता रहा।"

"ओह!" गफूरी बेगम उठने का प्रयत्न करने लगी, "पर मुझे तो खबर ही नहीं थी। मैं अभी उसके पास चलकर माफी माँग लेती हूँ।" वह उठी, पर कमजोरी के कारण गिर पड़ी।

बूढ़े अमीन मियाँ उसे सभालने लपके, पर उनके हाथ गफूरी बेगम को थामने-थामते अधूरे में ही रह गए। सुनसान कमरे में इस तरह एक पराई औरत को छूना उन-जैसे सकोची आदमी के लिए कठिन बात थी।

गफूरी बेगम चारपाई पर ही गिरी थी, सो अधलेटी रह गई।

"चोट तो नहीं आयी ?"

"नहीं !" गफूरी बेगम ने कहा। दोबारा उठने का प्रयत्न किया, "साहब खुद आया है ? मैं अभी चलती हूँ !"

"नहीं-नहीं, आप लेटी रहिए।" अमीन मियाँ ने यह जाने हुए भी कि साहब गफूरी बेगम के स्वागत न करने पर काफी बिगड़ेगा, लाचार होकर गफूरी बेगम को रोक दिया, बोले, "मैं साहब को समझाए देता हूँ।"

"नहीं, मियाँ !" गफूरी बेगम ने अमीन कोचवान को रोका, "साहब नाराज हो जाएगा।" वह उसका स्वभाव भली-भाँति जानती थी।

"नहीं-नहीं, बेगम ! आखिर साहब भी तो आदमी है। ऐसी हालत में आपको बाहर तक चलना कैसे मुमकिन है ? मैं उसे समझा लूँगा !"··· कहते हुए अमीन कोचवान झोंपड़े से बाहर निकल गया।

गफूरी बेगम ज्यों-की-त्यों लेट रही। पर मन में संकोच था। कानपुर के एक बड़े अंग्रेज अफसर साबर के यहाँ पिछले चार वर्ष से आया का काम करती आ रही थी। चारसालों की नौकरी मेंगफूरी बेगमने साबरका क्रोध खूब देखा था। साबर के मुंह से हर छोटी-मोटी बात पर अविरल गालियाँ बहने लगतीं। साबर की गाली के साथ गफूरी बेगम को लगता, जैसे उसके सीने में कोई नुकीला भाला गड़ा दिया गया है। गहन पीड़ा उठती, विरोध की तीव्र इच्छा होती, पर गफूरी बेगम पी जाती। कई बार तो यहाँ तक हुआ कि साहब की गाली के प्रत्युत्तर में उससे भी कईगुनी वजनदार गाली गफूरी बेगम की ज़बान तक आ गई, पर गफूरी बेगम को उस पर काबू रखना पड़ा। ऐसे हर मौके पर गफूरी कीआँखों केसामने अज़ीम का चेहरा अनायास ही उभर आता है और वह ठंडी हो जाती है। अजीम मंजिल-ब-मंजिल, उम्र, पढ़ाई और विद्वत्ता की सीढ़ियाँ पार करता हुआ, योग्यता अर्जित कर रहा है। गफूरी बेगम अपना विरोध जुबान और दाँतों के बीच किसी संकोच में उलझाकर वापस निगल जाती है। थोड़े समयका इन्तज़ार औरहै। जल्दी ही अज़ीमको किसी देशी राजा केयहाँ नौकरी मिलजाएगी और गफूरी इन ज़हरीली गालियों से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाएगी।

दरवाजे की वह जर्जर किवाड़ी खुलने से पहले चरमराई, जिसे अमीन कोचवान जाते समय उढ़क गया था। गफूरी बेगम ने स्वाभाविक कौतूहल से दृष्टि उस ओर गड़ा दी।

पहले अमीन, और उसके पीछे-पीछे साबर साहब आते दीख पड़े। गफूरी चारपाई से उठने का प्रयत्न करने लगी। उसे लगा जैसे साबर के धरती पर पड़ते हुए कदमों का वजन उसने अपने सीने पर उठा रखा है। गफूरी बेगम उठकर बैठ गई। वह खड़ी भी होना चाहती थी, किन्तु शरीर और शक्ति ने साथ नहीं दिया।

अमीन कोचवान ने पास ही पड़ा गदा-सा मूढ़ा साबर साहब के सामने रख दिया। साबर ने एक दृष्टि मूढ़े पर डाली, फिर बजाय उस पर बैठने के दायाँ पैर उस पर रखा और हमेशा की तरह कड़वे स्वर में पूछा, "गफूरी, तुम बिमार हाय ?"

"हाँ, मा'ब !" भीगे स्वर में गफूरी ने उत्तर दिया, "चार रोज से मुझे बुखार आ रहा है।"

"तुमको छुट्टी मंगता हाय ?" साबर ने उतने ही कड़े स्वर में पूछा।

"जी, हुजूर !" गफूरी ने फिर कहा, "मैं ठीक होते ही काम पर हाजिर हो जाऊँगी। बाबा लोग मुझे भी बहुत याद आते हैं, पर क्या करूँ बुखार ने लाचार कर दिया है। मुझे दो दिन की छुट्टी और दे दीजिये।"

"टुम साला बाबा लोग का नाम मट बोलो ! हम टुमको तमाम दिन का छुट्टी डेता हाय !" साबर ने क्रोधित होकर कहा।

गफूरी नहीं समझी। समझने की चेष्टा में उसने साबर का चेहरा देखा, जिस पर क्रोध और खीज के स्पष्ट भाव थे।

"हम टुमको हमेशा का वास्ते छुट्टी डेटा हाय !" साबर ने मूढ़े से पैर हटा लिया। जबड़े कसे जैसे सुडौल शब्दों को दाँतों में भींचकर कोई गंदी गाली तैयार कर रहा हो, बोला, "हिन्डोस्टानी ! साला, कामचोर !"

गफूरी 'छुट्टी' का मतलब समझी। अनुनयपूर्वक बोली, "माफ करो, साहब ! मैं सचमुच बीमार हूँ। मुझे काम से अलग…"

सावर वापस हो गया। पीछे-पीछे सिर झुकाये अमीन कोचवान चला।

शरीर में शक्ति न होते हुए भी गफ़ूरी खड़ी हो गई, "हुज़ूर..." उसने कुछ कहना चाहा, पर सावर ने सुना नहीं। एक बूढ़ी चरमराहट के साथ किवाड़ी बन्द हो गई।

गफ़ूरी वेगम का वीमार शरीर फिर से चारपाई पर आ गिरा।

२

सन् १८५४ आते-न-आते व्यापार करने के वहाने आयी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान में शासक के रूप में पैर फैला लिये थे। दिल्ली का बूढ़ा मुगल सम्राट् वहादुरशाह नाम-भर का सम्राट् था! उसकी अधिकार-शक्ति हिन्दुस्तान तो दूर, लाल किले में भी कुछ नहीं थी। देश की सबसे बड़ी मराठा शक्ति वाजीराव पेशवा (द्वितीय) को सन् १८१७ में ही पेंशन देकर कानपुर से अठारह मील दूर विठूर ला रखा गया था। देशी राज्यों के कुछ छुटपुट राजा वचे थे, जिनका सहारा लेकर अंग्रेज़ों ने दिल्ली-सम्राट् और पेशवा जैसी शक्तियों को समाप्त किया था। इन दस-वीस सालों के हेरफेर में ही डलहौजी की 'लैप्स नीति' ने वहुत-से राजाओं की स्वतंत्रता निगल ली।

आपसी फूट और परस्पर द्वेषभाव के परिणामस्वरूप, अपने ऊपर गुलामी और सैनिक शक्ति का भारी दवाव सहन करते हुए, देशी राज्यों के शासकों की आँखें अव खुलीं, पर वहुत देर हो गई थी। हिन्दुस्तान की धनी धरती पर लूट-खसोट और सामाजिक-धार्मिक अत्याचारों का वोलवाला था। इस दमन और अत्याचार के विरोध में भूले-भटके कोई न्याय की मांग करता या अन्याय के प्रतिकार की वात उठाता तो उसे तलवार की

नोक पर दबा दिया जाना।

नागपुर के राजा, तीसरे रघुजी भोंसले की मृत्यु सन् १८५३ में हुई, वैसे ही सन् १८५४ में एक ऐलान कर नागपुर का राज्य इस कथन के साथ कम्पनी ने अधिकार में ले लिया कि 'रानियाँ दत्तक पुत्र यशवंतराव को गद्दी देना नहीं चाहतीं और यशवंतराव को गद्दी न देना, अंग्रेज सरकार का रानियों के ऊपर उपकार करना है।' ऐलान एकदम झूठ और बेबुनियाद था। रानियों ने विरोध किया तो कम्पनी की फौजें, नागपुर शहर और महल की लूटमार करने लगी। राजमहल के अमूल्य सामान का माटी मोल सड़कों पर नीलाम कर दिया गया। हाथी सौ-सौ रुपये में, और करोड़ों के जवाहरात सैकड़ों में बेच दिये गये।

नागपुर की इस बरबादी पर सारे देश में सनसनी फैल गई, पर इस सनसनी का परिणाम कुछ नहीं हुआ। हिन्दुस्तानी, भय से भीगी बिल्ली की तरह, दुम दबाये, अपमानों का असंतोष ढोते हुए, सड़कों पर घूमते रहते। सिर उठाने का साहस नहीं रहा था।

कानपुर अंग्रेजों की महत्त्वपूर्ण सैनिक छावनी थी। स्वाभाविक ही अन्य स्थानों की अपेक्षा, यहां अधिक अंग्रेज परिवार बसे थे। राजनीतिक और व्यापारिक दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होने के कारण इस शहर में सैनिक शक्ति भी बढ़ा-चढ़ाकर रखी गई थी। नगर की लगभग सभी सुन्दर इमारतों और स्थानों पर अंग्रेज सैनिक-असैनिक अधिकारियों का कब्जा था। अनेक नये बंगले बनाये गये थे तथा अंग्रेज परिवारों के लिए गिरजे आदि धर्म-स्थानों और शाम गुजारने के क्लबों की भी व्यवस्था की गई थी।

जहाँ-तहाँ मुख्य स्थानों और बाजारों में अंग्रेज साहब और मेमें जितनी निश्चिन्तता और निर्द्वन्द्वता के साथ घूमते-फिरते नज़र आते, ठीक उतना ही भय का बोझ लिए हिन्दुस्तानी इधर-उधर आते-जाते। यह समझ सकना कठिन था कि घर किसका अपना है, किसका पराया।

अंग्रेज सैनिक बाजारों में सौदा करने तो माल की दर हिन्दुस्तानी

दूकानदार नहीं बताता था अपितु अंग्रेज ग्राहक दाम निश्चित किया करता था। ग्राहक के चले जाने के बाद दूकानदार उसे देर तक घूरता रहता, कुछ वैसी ही घृणापूर्ण दृष्टि से जैसे कोई कट्टर हिन्दू पंडित माँस के गिजगिजे लोथड़े को देखता है। पर यह दृष्टि साहब की पीठ पर होती थी, चेहरे के सामने सदा एक मुसकराहट के साथ ही उसे अंग्रेज ग्राहक का स्वागत करना होता था। असंतोष और क्रोधाग्नि से भरी हिन्दुस्तान की भिखारियों की-सी अपंग जिन्दगी, विदेशी इमारत की सीढ़ियों पर घिसट-घिसटकर जिन्दा थी, अभी मरी नहीं थी।

कानपुर के मुख्य बाजार में स्थित फ्री स्कूल की इमारत किसी गिरजे जैसी ही लगती थी। इसके पास ही अध्यापकों के कतारबन्द बंगले थे, जिनकी दीवारों पर अंग्रेजी गोरे रंग जैसी ही चमकदार कलई पुती हुई थी। हर बंगले के बाहर लॉन के छोटे-छोटे ग्राउण्ड थे, जिनमें हिन्दुस्तानी धरती में उगनेवाले खुशबूदार फूलों की जगह बिना खुशबू और चटक-मटक वाले विदेशी फूल मुसकराते रहते। अकसर शाम के समय लॉन पर बंगलों के गोरे परिवारों के सदस्य बैठे रहते। गपशप के बीच हँसी के फव्वारे छूटते, चाय-नाश्ते का दौर चलता। ठीक ऐसे ही समय ग्राउण्ड में लगे बेमहक फूलों की क्यारियों और पौधों में जीवनदायी पानी उंडेलने का काम कोई सांवला-सा हिन्दुस्तानी करता दीखता। कोई भारतीय महिला 'बाबा लोग' को अपनी छाती से चिमटाये, हरी दूब पर टहलती देखी जाती। गोरा 'बाबा' हिन्दुस्तानी औरत के साँवले चेहरे पर तमाचा मारकर खुश होता और उस एक तमाचे के स्वागत में मुसकराकर महिला दूसरा गाल उसके सामने पेश कर देती।

फ्री स्कूल में जितने अध्यापक थे, उन्हें देखते हुए ये बंगले कम थे, किन्तु फिर भी ये बहुत हो जाते थे और इनमें से भी एक खाली पड़ा हुआ था। क्योंकि ये बंगले केवल अंग्रेज और ईसाई शिक्षकों को ही मिल सकते थे, देशी अध्यापकों के लिए इनका कोई प्रावधान न था। स्कूल में जितने अध्यापक अंग्रेज जाति या ईसाई धर्म के अनुयायी थे, उतने इनमें समा

गये थे।

स्कूल के बादवाले दो बंगलों को छोड़कर तीसरा बंगला अंग्रेज़ी के अध्यापक मिस्टर पैंटन का था। वे दुबले-पतले, लम्बे-से व्यक्ति थे, आयु करीब पैंतालीस वर्ष से ऊपर ही रही होगी, पर शरीर में जरा भी शिथिलता न आयी थी। स्वभाव से वे अध्ययनशील, धार्मिक और नम्र प्रकृति के आदमी थे। परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती पैंटन और एकमात्र बेटी मिस जूलिया थी। यह सीमित और छोटा-सा परिवार अपने-आप में बहुत सुखी और प्रसन्न था।

जूलिया अपने पिता मिस्टर पैंटन की ही प्रतिरूप थी। पिता की तरह ही उसका दुबला-सा शरीर था और स्वभाव से भी मिस जूलिया उतनी ही नम्र और धार्मिक प्रवृत्ति की थी। गंभीरता लाने वाली आयु से बहुत पहले ही उसने गंभीरता पा ली थी, हालांकि बीस वर्ष की लड़कियाँ अक्सर गंभीर, और कम-से-कम उतनी गंभीर नहीं हुआ करती, जितनी मिस जूलिया थी। किसी साधारण-सी बात पर भी वह बहुत सोचती और सोचना धीरे-धीरे उसकी आदत बन गई थी।

पैंटन महोदय के सरल और नम्र स्वभाव के कारण उनके यहाँ विद्यार्थी आते रहते थे। इनमें यदि अंग्रेज़ विद्यार्थी होते तो हिन्दुस्तानी भी होते। हालांकि साधारण अंग्रेज़ के सामने असाधारण-से-असाधारण हिन्दुस्तानी भी हेय समझा जाता था, किन्तु पैंटन महोदय अंग्रेज़ विद्यार्थियों के प्रति जितने सहृदय थे, उतने ही हिन्दुस्तानियों के प्रति थे और यही कारण था कि देशी-विदेशी हर तरह के विद्यार्थियों की वहाँ भीड़ रहती थी।

मिस जूलिया पैंटन भीड़ के अनेक विद्यार्थियों से परिचित थी। विशेषकर उस हिन्दुस्तानी विद्यार्थी के प्रति वह बहुत आकृष्ट थी जो हर रविवार उसके पिता से मिलने आता था। सामान्य शिष्टाचार के बाद वह अपने जरूरी प्रश्नों का समाधान लेता और अधिक समय न लेकर जल्दी ही लौट जाता। कई माह से जूलिया उसे देख रही थी और अनचाहे ही

उस विद्यार्थी के प्रति आकृष्ट हो गयी थी, हालाँकि वह उस युवक की जिस्मानी खूबसूरती से प्रभावित नहीं थी। इस तरह के बाह्य आकर्पण में साधारण लड़कियों की भाँति जूलया कभी नहीं वंध सकती थी, अपितु उसे युवक के वातचीत के तरीके, चेहरे की गंभीरता और उन नीली आँखों ने, जो हमेशा कुछ गहराई-सी लिये रहती थीं, वहुत आर्कपित किया था। वह वहुत कम वोलता था और जितना भी वोलता था अपने-आप में इतना महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली होता था कि सामनेवाले पर गहरा असर करता। जूलिया के साथ भी ऐसा ही हुआ। एक-दो वार छुटपुट वात चली और युवक ने गहरा असर डाला।

आज था रविवार और वह आया हुआ था। चूंकि मिस्टर पैटन छोटे परिवार में नौकर की जरूरत महसूस नहीं करते, अतः जूलिया को स्वयं ही चाय लानी पड़ी।

मिस्टर पैटन ने प्याला उसकी ओर वढ़ाया, "गरमी का मौसम आलस लानेवाला होता है—यह प्याली तुम्हें वहुत स्फूर्ति देगी।"

किंचित मुसकराकर उसने प्याला ले लिया।

जूलिया स्वयं को वहुत सुन्दर मानती है। लोगों का विचार है कि पहली दृष्टि में ही जूलिया का आकर्षक रूप, वड़ी आसानी से सामनेवाले के दिल में उतर जाता है और वह वार-वार उसे देखना पसन्द करता है, किन्तु जूलिया उससे खीझ गयी जव उस युवक ने उस पर एक के वाद दूसरी दृष्टि नहीं डाली।

मिस्टर पैटन चाय की चुस्कियों के वीच कह रहे थे, "मेरा खयाल है, तुम ज़रूर ताजगी महसूस कर रहे हो, खान। हिन्दुस्तान में शराव के लायक मौसम नहीं है, अन्यथा मैं तुम्हें वह भी देता।"

वह फिर मुसकरा दिया, "वेशक!" उसने कहा, "मैं ताजगी महसूस कर रहा हूं। सचमुच हिन्दुस्तान में शराव के लायक मौसम नहीं है, पर यहाँ के लोग गैरज़रूर शराव पी लेते हैं। नशा किये हुए हैं।" वात समाप्त होते न होते मिस जूलिया ने देखा कि खान के चेहरे पर मुसकरा-

हट नहीं थी, बल्कि उसके स्थान पर एक ऐसी गंभीरता मिली उदासी के भाव थे, जैसे वह पिछले कई सालों से हँसा ही न हो।

मिस्टर पैटन ने खान के उत्तर को बहुत गंभीरतापूर्वक नहीं लिया, पर जूलिया ने उस पर काफी गहरे तक सोचा। उसे लगा जैसे युवक के मन में गहरा घाव है, जिसे उसने अपने सुन्दर चेहरे की मुसकराहट में छिपा रखा है। जूलिया की इच्छा थी, खान से कहे, कि वह चाय से अलग वहीं और की बातें कर रहा है।

मिस्टर पैटन ने प्याली खाली कर दी। बोले, "खान, तुम्हारा घर तो यहाँ से काफी दूर होगा। सुना है किसी गंदी बस्ती में रहते हो तुम। इतनी धूप में वहाँ तक पैदल जाते हुए बहुत तकलीफ होती होगी ?"

"जी, महाशय !" खान ने लापरवाही से उत्तर दिया, "फिलहाल जिधर मैं रहता हूँ उधर गंदी बस्ती है। मकान भी कच्चा है, मगर हर मकान पहले कच्चा ही होता है। मुझे वहाँ तक धूप में पैदल जाना होता है, यह भी सही है, पर सवारी और छाँह की भूमिका बना रहा हूँ ..." टेबिल पर रखी हुई एक पुस्तक को घुमाते हुए उसने बात जारी रखी, "फिर सच तो यह है महाशय कि धूप में पैदल चलनेवाला हर आदमी छाँह के बारे में सोचता है। हर पक्के मकान की भूमिका कच्चे मकान में बनती है।"

"तुम बहुत आत्मविश्वासी हो।" पैटन ने खान के उत्तर को ऊपर-ही-ऊपर तौलकर कहा, "कितना अच्छा होता कि तुम्हारे देश का हर आदमी तुम्हारी तरह सोचता और आत्मविश्वास रखता !"

जूलिया चुप थी, उसने खान की ओर इस आशा से देखा कि वह फिर कोई नयी बात कहेगा।

खान हँसा, "इसी बात को यों कहा जाये तो ठीक रहेगा कि हिन्दुस्तानियों में आत्मविश्वास और सोचने की भावना तो है, पर इनके साथ जरूरी तीसरा गुण उनके पास नहीं है, जिसे अविश्वास कहते हैं। हिन्दुस्तानी कभी भी, किसी पर भी विश्वास कर लेते हैं, यह एक जबर-

दस्त अवगुण है।"

थोड़ी देर मिस्टर पैटन ने कोई प्रश्न नहीं किया।

जूलिया बोली, "मिस्टर अज़ीम, क्या आपमें भी यही अवगुण है?" उसका विचार था कि इस प्रश्न का उत्तर सोचने में खान को कुछ समय लगेगा, क्योंकि किसी भी समूह या व्यक्ति के बारे में राय प्रकट करना उतना ही आसान है, जितना कि स्वयं के बारे में कुछ कह पाना कठिन। पर ऐसा नहीं हुआ।

खान ने तुरन्त उत्तर दिया, "फिलहाल मुझमें भी यही अवगुण है, पर मैंने इसे पहचान लिया है।" खान ने बोलते-बोलते कुछ रुककर जूलिया को देखा। ऐसे, जैसे उसकी नीली आँखें, जूलिया का शरीर वेधकर अन्तर की गहराइयों तक चली गई हों। "जल्दी ही इस अवगुण को निकालने का प्रयत्न कर रहा हूँ।" उसने कहा।

जूलिया हँसी, "क्या आपको विश्वास है कि आप यह कमज़ोरी दूर कर लेंगे?"

"बेशक!" खान के स्वर में दृढ़ता थी, "मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो अपनी कमजोरी पहचानकर भी उससे मोह किये रहते हैं, उसे दूर करने की कोशिश नहीं करते।"

"अभी तक की कोशिश के बाद आप अपनी यह कमज़ोरी कहाँ तक दूर कर पाये हैं?"

खान की तीखी दृष्टि जूलिया के चेहरे पर पुनः गड़ गई। उसके होंठ फड़के, चेहरे पर फौलाद की-सी कठोरता उभर आयी। दूसरे ही क्षण आश्चर्यजनक रूप से उसने स्वयं पर काबू कर लिया। चेहरे की कठोरता मुसकान से धो दी। बोला, "मिस पैटन! अब तक तो मैं इंच-भर भी अपनी यह कमजोरी दूर नहीं कर सका हूँ। अब देखिए न, मैं आप पर बहुत भरोसा करता हूँ।"

देर से चुप बैठे पैटन महाशय खिलखिलाकर हँस पड़े। फिर जूलिया ने कुछ नहीं कहा। चाय की खाली प्यालियाँ उठायीं और भीतर चली गई।

कुछ देर तक खान स्कूल और पढ़ाई के बारे में पैंटन से बातचीत करता रहा और जब तक जूलिया लौटी तब तक वह जा चुका था।

मिस्टर पैंटन किसी पुस्तक में सिर गड़ाए टेबिल पर झुके हुए थे। जूलिया पास आकर खड़ी हो गई। खान की अजीब-सी बातचीत का प्रभाव अब भी उसके मन-मस्तिष्क पर था।

"डैडी !" जूलिया ने मिस्टर पैंटन का ध्यान भंग किया, "मुझे इस आदमी ने बहुत प्रभावित किया है। इसकी बातें अकसर बहुत अजीब हुआ करती हैं। क्या आपने कभी मेरी तरह इसके बारे में सोचा है ?"

मिस्टर पैंटन ने किताब बन्द कर दी। उन्हें अपनी लड़की का खोजी स्वभाव बहुत पसन्द है।

जूलिया कह रही थी, "मेरा खयाल है, कि आपके विद्यार्थियों में खान सबसे अधिक तेज है।"

"तुम्हारा खयाल ठीक है,जूलिया।" पैंटन ने चश्मा उतारकर टेबिल पर रख दिया, "निस्संदेह ही खान मेरे विद्यार्थियों में सबसे अधिक योग्य है। वह मुझे बहुत पसन्द है। वह अपनी पढाई के बारे में जितना मुस्तैद है, उससे कहीं अधिक अपने देश के प्रति जिम्मेदारी से सोचता है। क्या तुमने उसकी बातचीत के व्यग्य को नहीं समझा ?"

"यही तो कारण है कि मुझे उसकी बातचीत अच्छी नहीं लगती, क्योंकि उसमें हमारे प्रति विद्रोह का भाव होता है। मुझे इस तरह के लोगों से घृणा भी होती है।"

"ऐसा इसलिए होता है जूलिया, क्योंकि तुम हिन्दुस्तानी नहीं हो और तुम्हारे देश पर गुलामी का जुआ नहीं रखा हुआ है।" पैंटन ने हँसकर उत्तर दिया, "किसी की देशभक्ति, स्वाभिमान या योग्यता घृणा की चीज़ नहीं है।"

जूलिया निरुत्तर हो गई।

"जूलिया, खान की तरह का स्वभाव व्यक्ति की महानता और उसके श्रेष्ठ गुणों का सूचक है। खान-जैसे लोग नफरत की चीज नहीं। वे प्रेम

और श्रद्धा के अधिकारी हैं। ऐसे लोग हमें कुछ देते हैं,कुछ सिखाते हैं। उनसे घृणा कर दूर होते जाने के बजाय, हमें उनसे मित्रता बढ़ाकर उनके पास जो कुछ है, वह ले लेना चाहिए। यही हमारी सफलता है।"

जूलिया कुछ नहीं बोली, वह खान और उनकी बातचीत के बारे में ही सोच रही थी।

पैटन महाशय कह रहे थे, "कभी-कभी मैं सोचता हूँ, जूलिया! यदि हर हिन्दुस्तानी खान-जैसा होता तो क्या हम यहां के शासक हो सकते थे?"

जूलिया ने उत्तर नहीं दिया।

३

गफ़ूरी बेगम लगभग आठ रोज बाद स्वस्थ हो सकी। शरीर में कुछ शक्ति आयी तो सबसे पहले उसने सावर साहब के यहां जाने का निर्णय लिया। अज़ीम की पढ़ाई समाप्ति के नजदीक थी। दो-तीन माह शेष थे। ऐसे में काम छूट जाना उसे बहुत अखर रहा था। किसी भी तरह गफ़ूरी ये दो-तीन माह काट लेना चाहती थी।

अज़ीम हमेशा की तरह आज भी शाम तक लौटा नहीं था। गफ़ूरी बेगम ने दो-चार चपातियां उतारीं, अचार की फांकों के साथ उन्हें एक डिब्बे में बन्द कर छींके पर रखा और सावर साहब के बंगले पर चली गई। डेढ़ घंटे बाद जब वह लौटी तो उसका चेहरा उदास था, जैसे किसी लम्बी बीमारी के बाद उठी हो। नौकरी की विनय अस्वीकार हो गयी थी।

वह आयी, तब तक अज़ीम खाना खा चुका था और बाहर के मैदान में एक चारपाई पर लेटा कोई पुस्तक पढ़ने में मशगूल था। गफ़ूरी बेगम ने दुख और खुशी की एक विचित्र प्रतिक्रिया अनुभव की। उसने जिन्दगी के कई बेहतरीन साल अज़ीम और उसकी पढ़ाई के लिए दूसरों के बच्चे

हँसाने-खिलाने में काट दिये थे। उसे लगा कि अज़ीम ने उसके बेहतर समय के बलिदान का पूरा खयाल किया है। बस्ती में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी वही था। गफ़ूरी बेगम बड़ी खुश होतीं जब बस्ती के हर आदमी के काम में अज़ीम सहारा बन जाया करता। मुन्ने मियाँ को ससुराल से अक्सर चिट्ठी आया करती थी, वह पढ़ नहीं सकता था, इसलिए दौड़ा-दौड़ा अज़ीम के पास आता, उससे चिट्ठी सुनता। रामगोविंद पांडे का लड़का परदेस में फिरंगियों की फौज में नौकरी करता था। पांडे जी उसकी चिट्ठी भी अज़ीम से बचवाते। यह सब देख-देखकर गफ़ूरी बेगम के बूढ़े शरीर में जवानी का अहसास उग आता। लगता जैसे अज़ीम को पढ़ा-लिखाकर उसने सब पा लिया है। अज़ीम को देखती और तमाम चिन्ताओं से थोड़ी देर के लिए मुक्ति पा जाती।

गफ़ूरी बेगम एक क्षण खड़ी लेटे हुए अज़ीम को देखती रही। फिर भीतर घर में जाने लगी। दरवाज़े की चरमराहट से अज़ीम का ध्यान टूटा।

"अम्मी!" उसने पुस्तक बन्द कर कहा, "तुम्हारी तबीयत अभी-अभी दुरुस्त हुई है और हाल ही फिर इधर-उधर दौड़ना शुरू कर दिया?"

गफ़ूरी बेगम देहरी पर ही रुक गयी। वह नहीं चाहती थी कि अज़ीम का ध्यान टूटे। उसकी पढ़ाई में दखल हो। उसने चेहरे की उदासी हटाने का असफल-सा प्रयत्न किया। पर चिन्ता का रंग बहुत गहरा होता है और हर आदमी अच्छा अभिनेता नहीं हुआ करता। गफ़ूरी बेगम भी प्रयत्न के बावजूद चेहरे पर उभरी उदासी न हटा सकी। एकाएक कुछ कह भी न सकी। अज़ीम बोला, "तुम्हें एक खुशखबरी सुनाऊँ?"

"क्या?" बड़ी फीकी-सी आवाज़ में गफ़ूरी बेगम ने पूछ लिया।

"मुझे काम मिल गया है।" अज़ीम ने उत्साहपूर्वक बताया।

"क्या?" गफ़ूरी बेगम पूर्ववत् गंभीर ही रही। अज़ीम को बहुत आश्चर्य हुआ एक अच्छे समाचार के बावजूद गफ़ूरी बेगम की उदासी नहीं

धुली। उसने कहा, "यहाँ के कलेक्टर हिलसंडन की लड़की के लिए फ्रेंच के मास्टर की जरूरत है। उन्होंने मेरे मास्टर पैटन साहब से बातचीत की थी। पैटन साहब ने मेरी सिफारिश की है।"

"तो तू भी अब फिरंगियों की नौकरी करेगा ? क्यों ? और अभी तो तेरी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई है ? नौकरी का खयाल मन में कैसे आया ?"

अज़ीम को आश्चर्य नहीं हुआ। वह अपनी माँ का स्वभाव जानता था कि उसे फिरंगियों से चिढ़ है। उसने गफूरी बेगम को समझाने की चेष्टा की, "मेरी पढ़ाई पूरी होने में अब वक्त ही क्या बचा है ? पढ़ाई खत्म होने के बाद काम ढूंढने में वक्त लगेगा ही, यही सोचकर मैंने हिलसंडन साहब के यहाँ 'हाँ' कर दी है। तुम्हारी मरजी नहीं है, तो कल 'ना' कर दूंगा।"

"तूने 'हाँ' कर दी है ?"

"हाँ।" अज़ीम बोला।

"फिर 'ना' कर देगा ?" गफूरी बेगम ने दूसरा सवाल किया, "तू भी झूठ बोलना सीख रहा है ? वायदा-खिलाफी ? फिरंगियों के स्कूल में पढ़कर और साहबों की संगति में रहकर तूने यही सीखा है ? क्यों ?"

अज़ीम ने सिर झुका दिया। वह अकसर गफूरी बेगम को समझ नहीं पाता।

"जब 'हाँ' कर आया है तो कल से काम पर पहुँचना।" गफूरी बेगम ने आदेशपूर्ण स्वर में कहा, किवाड़ खोले और भीतर चली गयी। अज़ीम पीछे-पीछे गया। माँ नाराज हो गई है, उसे दुख होगा। अज़ीम ने उसे मनाने की चेष्टा की, "मैं काम पर तो जाऊंगा, अम्मी ! मगर एक शर्त है !"

"क्या ?"

"कि तुम अपना काम छोड़ दोगी !"

गफूरी बेगम माँजने के लिए जूठे बर्तन इकट्ठा कर रही थी। कमजोरी के कारण उसके हाथ-पैरों में रह-रहकर कसक हो रही थी। अज़ीम की शर्त

सुनकर उसका सारा दर्द मिट गया। अज़ीम साहबों की नौकरी करेगा, यह सुनकर उसे दुख हुआ था, पर उसके व्यवहार ने सारा दर्द धो डाला। बोली, "मैं तो तेरे कहने से पहले ही तेरी शर्त पूरी कर आयी हूं। साबर साहब के यहाँ से छुट्टी हो गई है मेरी।"

छुट्टी होना, और छुट्टी लेना दोनों में अन्तर है। अज़ीम गंभीर हो गया, "साबर साहब के यहाँ से छुट्टी हो गई है। क्यों? क्या बात थी?"

गफूरी उसी तरह जूठे बर्तन एकत्र करती रही, "बीमारी के दौरान मैं काम पर नहीं पहुंच सकी थी, सिर्फ़ इतनी-सी बात थी। 'बाबा लोग' को तकलीफ हुई। साबर साहब के लिए मेरी बीमारी से ज्यादा बड़ी बात बाबा लोग का मचलना है!"

अज़ीम की गंभीरता एक पीड़ाभरी उदासी में बदल गयी। कितनी अजीब बात है! साहब के 'बाबा लोग' का मचलना एक हिन्दुस्तानी बुढ़िया की बीमारी से ज्यादा कीमती है।

बूढ़ी गफूरी बेगम कह रही थी, "इन फिरंगियों की नौकरी करना, ज़लालत मोल लेना है। मुल्क से खुदा की नज़र फिर गयी और हम, जो इस धरती पर सितारों की खेती कर रहे थे, आज साहबों की नौकरी कर रहे हैं!"

"खुदा की नज़र नहीं फिरी, हिन्दुस्तानियों के दिमाग फिर गये। तकदीर नहीं रूठा करती अम्मी, दिमाग रूठ जाते हैं।" अज़ीम के स्वर में गहन असंतोष था—"साहब खुद नहीं आये, हम ही उन्हें बुलाकर लाये। खुदा को दोष देने और उस पर तोहमत लगाने से क्या फायदा?"

गफूरी बेगम को अज़ीम का उत्तर अच्छा लगा। यही चाहती है वह। सन् १८३८ में जब वह कलकत्ता से भागी, तो अज़ीम बच्चा ही था, और कलकत्ता में ईसाई धर्म का जोर-जबरदस्ती से प्रचार चल रहा था। गफूरी बेगम को भय था कि कहीं ईसाई-प्रचारक अज़ीम को मस्जिद से बहकाकर गिरजों में न पहुंचा दें? वह कलकत्ता से चली आयी थी। कानपुर आकर उसने पहले से कहीं बुरे दिन देखे, पर धैर्य और शांति के

साथ वह ऐसे दिनों से लड़ती-जूझती आ रही थी। उसने अज़ीम को अब तक धर्म-परिवर्तन से बचाये रखा था। बचपन से ही उसने अज़ीम के मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा के बीज बोये, एक सच्ची हिन्दुस्तानी औरत की तरह उसने अज़ीमुल्ला के मन में गुलामी के प्रति विद्रोह और असंतोष की चिनगारी पैदा की, जो अज़ीम के युवा होते-होते एक जबरदस्त ज्वाला में बदल गयी। आज जब अज़ीम के मुंह से उसने ऐसी विद्रोही बातें सुनी तो वह खुश हुई। विश्वास का बीज पड़ा। अज़ीम कभी ईसाई नहीं हो सकता! फिरंगी उसे मोड़ नहीं सकेंगे! थोड़ी देर बाद गफूरी बेगम ने व्यंग्य किया, "तमाम हिन्दुस्तानियों की तरह तेरा दिमाग भी तो फिर गया है। अब तू भी तो फिरंगियों की नौकरी करेगा?"

अज़ीम चुप रह गया। लगा कि वह गलत है, पर कैसे वह शायद उस समय तय नहीं कर पा रहा था।

गफूरी बोली, "मैंने तेरी खातिर फिरंगियों के बच्चे खिलाये। सोचती थी कि तेरी पढ़ाई पूरी हो जाये तो तू किसी देशी राजा के यहाँ काम करेगा पर···" बोलते-बोलते उसकी आवाज भर आयी, "अब तू भी साहबों की खुशामद और जी-हुजूरी करेगा। वे हिन्दुस्तानियों को ईसाई बनाने की बात करेंगे और तू उनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलायेगा? वे किसी देशी राज्य पर अंधेरे में हमला करेंगे और तू उनका मशालची रहेगा? क्यों?···सब जानता है और वतनपरस्ती का भाषण कर रहा है!"

अज़ीम का सिर झुका रहा। हिलसंडन साहब के यहाँ काम के लिये 'हाँ' कहकर शायद उसने भूल की है। गफूरी बेगम फिरंगियों को पसन्द नहीं करती। अज़ीम वहाँ नौकरी करे, यह भी पसन्द नहीं है उसे। यह जानते हुए भी अज़ीम ने यह नौकरी स्वीकार कर निर्णय में बहुत जल्दी की।

गफूरी और भी कुछ कहना चाहती थी, किन्तु उसने स्वयं पर काबू कर लिया। अज़ीम से पहली बार नाराज हुई थी और जितनी हुई, अज़ीम के लिए इतना ही काफी था।

भीगे-से स्वर में अज़ीम ने कहा, "अम्मी, मैं 'हाँ' कर चुका हूँ, इसलिए कुछ दिन काम करने के बाद किसी भी बहाने यह काम छोड़ दूँगा।"
गफूरी ने कुछ कहा नहीं, बर्तन रगड़ने लगीं।

४

कानपुर से अठारह मील है बिठूर।
सन् १८१७ में बाजीराव (द्वितीय) को जीवन-निर्वाह के नाम पर आठ लाख रुपया सालाना पेंशन देकर साधारण-से जागीरदार की स्थिति में यहाँ रखा गया। पूना से बिठूर आते समय अंग्रेज़ों से छिपाकर एक भारी खज़ाना बाजीराव अपने साथ ले आया था, जिसे उसने यहीं किसी गुप्त स्थान पर रखवा दिया। उसके आश्रितों की संख्या हज़ारों की थी, उन्हें भी वह अपने साथ बिठूर ही ले आया था। इस तरह पेशवा के आते ही बिठूर की आबादी चौगुनी हो गई। नये घर बने, नयी रौनक आयी और एक साधारण-से ग्राम से बदलकर बिठूर ने अच्छे-खासे शहर की शक्ल ले ली। बाजीराव के आश्रितों ने अपना कारबार फैला दिया। कुछ खेती की ओर उन्मुख हुए, कुछ व्यापार की ओर। जो बाकी बचे, वे पेशवा से मासिक तनख्वाह पाते रहे। पेशवा ने उन्हें यहाँ-वहाँ काम-काज में लगा दिया। बाजीराव को अब भी पुरानी मान-मर्यादा का बहुत ख्याल था। धन अटूट था उसके पास, खूब जी खोलकर लुटाता। दान-धर्म और शाही ठाठ उसने कायम रखे। उसने अपनी निजी फौज भी न तोड़ी। पेंशन दिये जाने के बावजूद अंग्रेज़ों के लिये बाजीराव डर का कारण था। वे सतर्क रहते थे, अतः जब उन्होंने बाजीराव की निजी फौज पर ऐतराज़ किया तो उसने फौज समाप्त न कर नाममात्र को उसकी छटनी कर दी। अंग्रेज़ों को इससे ही धैर्य धरना पड़ा। वे बाजीराव से उलझना नहीं चाहते थे। पेशवा

नाम का प्रभाव अब भी बहुत था।

सन् १८०७ में बाजीराव बीमार पड़ा। ऐसा कि उसे जीवन-ज्योति बुझती-सी दीखने लगी। अपने आश्रितों और पेशवा के पद की उसे चिन्ता थी। औलाद उसके कोई न थी। महाराष्ट्र के ही एक कुलीन ब्राह्मण मोरोपंत तांबे उसके विशेष सलाहकार थे। उनके और अन्य सरदारों के समक्ष बाजीराव ने उत्तराधिकारी गोद लेने का विचार रखा। सभी ने एकमत होकर उसे स्वीकृति दी। वे सभी बाजीराव की साँसों के प्रति आशंकित थे। विचार कार्य-रूप में परिणत हुआ। बीमारी की हालत में जल्दी ही पंडितों को बुलाया गया। हिन्दू धार्मिक पद्धति से गोद-प्रथा की कार्यवाही हुई, और एक श्रेष्ठ महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण रिश्तेदार के तीन पुत्र बाजीराव ने गोद ले लिए। मोरोपंत की सलाह थी कि एक लड़का गोद लेना ही काफी होगा, पर पेशवा ने एक मौलिक विचार प्रकट किया। बोला, "कहीं अयोग्य निकल गया तो ?" मोरोपंत निरुत्तर हुए। बाजीराव ने तीन लड़के गोद लिए। धूंधूपंत उर्फ नाना, सदाशिव पंत उर्फ दादा, गंगाधर राव उर्फ बाला। नाना सबमें बड़ा था। पेशवा के दत्तक आते समय उसकी आयु तीन वर्ष थी। उत्तराधिकारी मिल जाने के बाद बाजीराव निश्चिन्त होकर मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। विलास-कार्यक्रम बन्द किये गये। बिठूर में दान-पुण्य का दौर तेज हुआ। बीमारी के बावजूद पेशवा चार बजे प्रातः गंगा-स्नान करने जाता, तत्पश्चात् महल में पूजा-पाठ होता। कथा-वाचक धर्मग्रन्थों का पठन-पाठन करते। पर प्रकृति का चमत्कार, बाजीराव का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन सुधरता गया और वह जल्दी ही पूर्ण स्वस्थ हो गया।

सन् १८३९ में नाना धूंधूपंत की उम्र पन्द्रह वर्ष थी।

इस वर्ष बाजीराव फिर बीमार हुआ, किन्तु अधिक नहीं। मृत्यु से उसे बहुत भय लगता था। इस बार उसने एक वसीयतनामा कर अपने सबसे बड़े बेटे धूंधूपंत को पेशवा की पदवी और सम्पूर्ण जागीर-जायदाद तथा अधिकारों का उत्तराधिकारी बना दिया। वसीयतनामे की एक प्रति

कम्पनी सरकार को और दूसरी मोरोपंत तांबे को तीनों बेटों की सरपरस्ती सहित सिपुर्द कर दी गई। पर इस बार भी पेशवा चार-छह दिन की बीमारी झेलकर चंगा हो गया।

सन् १८४६ में बाजीराव के तीनों दत्तक पुत्रों में से मंझले सदाशिवराव उर्फ दादा साहब की एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। उसने अपने पीछे एकमात्र आठवर्षीय पुत्र राव साहब को छोड़ा।

मोरोपंत तांबे की पुत्री मनू से (जो आगे चलकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई) राव साहब की खूब पटती थी। आयु के मामले में दोनों लगभग समवयस्क ही थे। साथ-साथ खेले, पढ़े-लिखे, बड़े हुए।

सत्तर वर्ष की आयु पाकर सन् १८५१ के जनवरी माह में बाजीराव मरा। मृत्यु से पूर्व बाजीराव अपनी दो नाबालिग लड़कियाँ और छोड़ गया। एक का नाम था योगबाई, दूसरी कुसुमबाई। बाजीराव अपने जीवित रहते ही दोनों दत्तक पुत्रों नाना साहब और बाला साहब का विवाह करने के अलावा पौत्र राव साहब का भी विवाह कर गया था। मोरोपंत की पुत्री मनू तीनों राजपुत्रों के साथ खेली थी। बाजीराव ने उसे पुत्रीवत् स्नेह दिया था। राजपुत्रों के साथ-साथ उसने मनू के भी हाथ पीले किये थे और अल्हड़, निस्संकोची और साहसी मनू चौदह वर्ष की आयु में झाँसी के प्रौढ़ राजा गंगाधरराव के साथ ब्याही गयी। बाजीराव ने मनू के विवाह में बड़ी धूमधाम की थी। खूब जी भरकर धन दिया था और पितृवत् स्नेह के साथ मनू को डोली बिठूर से झाँसी रवाना की थी।

बाजीराव की मृत्यु के बाद पेशवा-परिवार में एक छोटा-सा झगड़ा हुआ। योगबाई और कुसुमबाई दोनों नाबालिग लड़कियों के नाम पर उनके चाचा बलवंतराव ने पेशवा बाजीराव की पेंशन प्राप्त करनी चाही, पर कम्पनी सरकार ने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर नाना को ही पेशवा का उत्तराधिकारी माना, किन्तु इसके साथ ही एक आदेश भी दिया जिसमें

बाजीराव की वसीयत के अनुसार नाना को उत्तराधिकारी मानते हुए भी पेंशन वन्द किये जाने की घोषणा की गई थी। बाजीराव की मृत्यु के बाद से सन् १८५४ तक धूंधूपंत नाना पेंशन-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील था।

स्वभाव से मृदुभाषी होने के अलावा नाना साहब सामान्य राजाओं की तरह किसी खास शौक का शिकार नहीं था। कानपुर तथा इधर-उधर के अनेक अंग्रेज़ परिवारों से उसके काफी अच्छे सम्बन्ध थे। वह अंग्रेज़ अधिकारियों और शासन के प्रति स्वयं को हमेशा ही एक अच्छा मित्र साबित करने की चेष्टा करता रहता था। कानपुर के कलेक्टर हिलर्संडन से उसकी गाढ़ी मित्रता थी। अकसर वह उनसे सलाह लेकर कार्य किया करता था। हिलर्संडन जैसी-जैसी सलाह देता गया, पेंशन-प्राप्ति के लिए नाना वैसी-वैसी चेष्टा करता गया। बीच में कई बार नाना के मन में अंग्रेज़ों के प्रति कटुता भी पैदा हुई, किन्तु हिलर्संडन ने उसे समझाया-बुझाया, कम्पनी सरकार और लाट साहब की न्यायतुला में पासंग न होने की दुहाई दी और प्रयत्न जारी रहे। हिलर्संडन को नाना के प्रति सहानुभूति थी। नाना अनेक मौकों पर अंग्रेज़ों का एक योग्य मित्र साबित हुआ था।

जब-जब कानपुर के किसी सैनिक या असैनिक अंग्रेज़ अधिकारी का मन बस्ती के घनेपन से ऊबता, वह हिलर्संडन की सिफारिशी चिट्ठी लेकर बिठूर जा पहुंचता। नाना बड़े सम्मान और शिष्टाचार के साथ उसका और उसके साथवालों का स्वागत करता। महल में ठहराता। भोज देता। कीमती आभूषण तथा कपड़े आदि भेंट कर विदा करता। नाना को अंग्रेज़ी न्याय पर विश्वास था। हिलर्संडन की मदद मिल रही थी। कम्पनीसरकार और उसके बीच चिट्ठियों का आदान-प्रदान चल ही रहा था, एक-न-एक दिन पेंशन फिर मिलने लगेगी—इसी आशा-किरण के सहारे वह जागीर के काम-काज की वैसी ही देखरेख और खर्च करता गया, जैसा पेशवा के समय में होती थी। प्रातः गंगास्नान और पूजापाठ से निवृत्त होकर वह घंटे-भर का समय प्रजा को देता। बिठूरवासियों की समस्याएँ सुनता-समझता और

उनके हल का प्रयत्न करना। पेशवाई दरबार की परम्परा ज्यों-की-त्यों चली आ रही थी। अन्तर इतना ही था कि बिठूर का पेशवाई दरबार तड़क-भड़क और रतबे-मनंबे के मामलों में पूना के पेशवाई दरबार से दस प्रतिशत रह गया था, पर दरबार तो था ही। नाना अपने सौष्ठवयुक्त शरीर पर पूर्वजों की ही तरह लम्बा-सा रेशमी अंगरखा पहनता, जिस पर जरी का सुनहरा और चाँदी का काम होता। उसकी मोटी-मोटी अंगुलियों में कीमती हीरे और जवाहिरातों की अंगूठियाँ होतीं। साँवले, किन्तु भरे हुए चेहरे पर नुकीली मूछों से उसके व्यक्तित्व में अधिक प्रभाव पैदा हुआ था। उसका सिर घुटा हुआ था जिस पर तिकोनी मराठा पगड़ी रखे वह बुलन्द आवाज में अधिकारियों, किसानों या जन-साधारण को आदेश देता।

गुरुवार २६ जून को दरबार में एक किसान पेश हुआ। दरबार में नाना के भाई बाला साहब, भतीजे राव साहब, दीवान मोरोपंत तांबे, युद्ध-कला के शिक्षक तात्या और छुटपुट सरदारों के अलावा इत्तिफाक से कानपुर का अंग्रेज कमिश्नर मोरलैंड भी उपस्थित था।

कमिश्नर की ओर फरियादी किसान की दृष्टि गई तो सम्पूर्ण घटना सुनाते-सुनाते वह रुक गया। उसने भयपूर्वक कभी नाना और कभी मोरलैंड की ओर देखा।

"निडर होकर सब कहे जाओ।" नाना ने कहा।

किसान हकलाया। उसने मोरलैंड की ओर देखा और दृष्टि नीची कर ली। उसके पैरों में कम्पन हो आया। लगा जैसे भीतर कोई बैठा है जिसने उसकी वाक्‌शक्ति दबा ली है।

नाना ने दोबारा आदेश दिया, "चिन्ता मत करो। पूरी घटना बयान करो। न्याय होगा।"

तात्या ने भी आदेश दिया, "घबराओ मत! जो बात है, वह बताओ!'

"हुजूर!" किसान ने मोरलैंड की टेढ़ी नजरों की परवाह छोड़ दी, साहस के साथ बोला, "मेरे खेत का एक टुकड़ा फिरंगी पादरी ने जबरन

दवा लिया है। मैंने कहा-सुनी की तो उसने कमिश्नर साहव का डर दिखा दिया···मैंने···"

"कहो, कहो।" कोने में तिकोनी पगड़ी सिर पर धरेबैठा वाला साहव वोला।

फरियादी ने पुनः मोरलैंड को देखा। वोला, "मैंने श्रीमन्त पेशवा सरकार के न्याय का डर दिखाया तो उसने कहा, "जाओ! कह दो अपने पेशवा से, हम देखेंगे कि वह क्या करते हैं!"

तात्या का दायाँ हाथ तलवार की मूठ पर कस गया। नाना की मुट्ठियों की पकड़ गद्दी पर गहरी हो गयी और उसने कमिश्नर मोरलैंड की ओर तीखी दृष्टि से देखा। कमिश्नर का सिर झुका हुआ था। तात्या सोच रहा था कि पेशवा कड़ा रुख अख्तियार करेगा, पर ऐसा नहीं हुआ। गद्दी पर भिची नाना की मुट्ठियाँ खुल गईं। चेहरे पर पूर्ववत् सौम्यता और शान्ति लौट आयी। उसने वाला साहव को जाँच-पड़ताल के आदेश दिये। किसान विदा हो गया।

दो दिन वाद वाला साहव किसान की फरियाद की सचाई पर रिपोर्ट लेकर हाजिर हुआ। किसान का निवेदन सही पाया गया था। उसकी धरती का एक छोटा-सा टुकड़ा पड़ोसी अंग्रेज़ ने दवा रखा था और उस पर दीवार खड़ी कर दी थी। पेशवा का आदेश हुआ—चार घंटे के अन्दर यदि अंग्रेज़ पादरी किसान की धरती से अवैध कब्जा न छोड़े तो उसकी दीवार उखाड़ फेंकी जाये। आदेश पर सील लगी—'वहुक्म श्रीमन्त पंतप्रधान नाना धूंधूपंत पेशवा वहादुर।'

मोरलैंड ने आदेश सुना। उसके गले की नसें तन गईं। लगा, जैसे सरे वाजार किसी ने जूता सुंघाया है।

दरवार वरखास्त हुआ। पेशवा उठकर महलों में चला गया। साहव-सरदारों ने विदा ली।

पेशवा का आदेश अंग्रेज पादरी तक पहुंचा दिया गया। चार घंटे के अन्दर ही दीवार गिर गई और किसान की धरती खाली हो गई।

मोरलैंड को नाना की आज्ञा खल गई थी। शाम के समय जब नाना साहब अपने भाई के साथ चौपड खेलने में व्यस्त थे, अनुचर ने आकर निवेदन किया, "श्रीमन्त पेशवा बहादुर की जै! कमिश्नर साहब भेंट चाहते हैं।"

नाना ने स्वीकृति दी। कमिश्नर मोरलैंड उपस्थित हुआ। बराबर से स्थान देकर नाना ने पूछा, "कैसे आना हुआ?"

"श्रीमन्त पेशवा बहादुर से कुछ निवेदन करना था।"

"कहिए?"

"सरकार ने गवर्नर जनरल बहादुर का वह पत्र तो पढ़ा ही होगा, जिसमें पेंशन के बारे में खबर दी गई थी?"

"पढ़ा है।" नाना ने कहा, "उसके बारे में लिखा-पढ़ी चल रही है। आप तो जानते ही हैं कि वह उचित नही है। हमारे कैलासवासी पिताश्री श्रीमन्त पतप्रधान बाजीराव पेशवा बहादुर को वार्षिक पेंशन इस सन्धि के साथ दी गई थी कि पेशवाई परिवार का निर्वाह हो। उसमें ऐसी कोई बात नही थी कि उनके उत्तराधिकारी की पेंशन बन्द कर दी जायेगी।"

"जानता हूं।" कमिश्नर ने स्वीकार किया, "किन्तु यह आपके और लाट साहब के बीच की बातें हैं, इनके बारे में मैं क्या कहूं? मैं तो एक दूसरी ही प्रार्थना लेकर हाजिर हुआ हूं।"

मोरलैंड पेंशन के बारे में बात नही करना चाहता। नाना ने विषय पर वहीं पूर्ण विराम दिया। बोला, "खैर, आप अपनी बात कहिये। कम्पनी सरकार का और कोई नया हुक्म?"

नाना का व्यंग्य और आवाज का तीखापन मोरलैंड ने पहचाना। पर कर भी क्या सकता था? हिन्दुस्तानी राजाओं की आदतें ही ऐसी हैं। वह मन मसोसकर रह गया। बोला, "प्रार्थना थी कि आप मोहर बदल लें। वह मोहर जो आजकल आपकी चिट्ठियों में लगती है, सही नही है।"

"क्या मतलब ?" नाना चुप रहा। किन्तु बाला साहब से न रहा गया। तमककर बोला, "पेशवा बहादुर की पेंशन तो पेंशन, अब उनकी मोहर भी कम्पनी सरकार को खटकने लगी ? आखिर चाहते क्या हैं लाट साहब ?"

नाना ने दृष्टि-संकेत से बाला साहब को रोका जो कमिश्नर के वार्तालाप और व्यवहार से क्रमशः उग्र होता जा रहा था। फिर बोला, "कम्पनी सरकार की बात जरा साफ कीजिए। उनके ख्याल से मोहर कैसे गलत है ? हमारे पूज्य पिताश्री जिस मोहर का उपयोग अपने लिए करते थे, उसी का हम भी कर रहे हैं। जो भी उस स्थान पर रहेगा, उसके लिए वही मोहर प्रयुक्त होगी।"

मॉरलैंड ने बाला साहब के क्रोध की परवाह नहीं की। कहने लगा, "कम्पनी सरकार ने उस मोहर के उपयोग की स्वीकृति नहीं दी है। और जब तक इसके बारे में लाट साहब कोई निर्णय नहीं कर लेते, मेरी प्रार्थना है कि आप उसका उपयोग न करें।"

"ऐसा क्यों ?" नाना ने आश्चर्य व्यक्त किया, "कम्पनी सरकार को मोहर के उपयोग में क्या आपत्ति हो सकती है ? पेशवा पदवी के पद-स्वाभिमान की शोभा है, वह मोहर।"

"कम्पनी सरकार को भी यही याद है।" मॉरलैंड ने शान्ति से कहा, "श्रीमन्त बाजीराव पेशवा बहादुर को जब पेंशन मिली तो पूना की गद्दी उनके पास थी। लाट साहब ने इसीलिए उन्हें अपने सम्पूर्ण जीवन मोहर के उपयोग की कृपापूर्ण स्वीकृति दी थी। आप उनके उत्तराधिकारी जरूर हैं, पर वह गद्दी आपके पास नहीं है। सरकार अब चाहे तब आपको उस मोहर का उपयोग करने से रोक सकती है।"

नाना का चेहरा मॉरलैंड के इस व्यवहार के साथ रंग बदलता गया। उसकी आँखें क्रोध से कुछ अधिक फैल गईं और माथे पर नसों का उभार उभर आया। यही स्थिति बाला साहब की थी। पर नाना ने भी यहीं अधिक धीरज से काम लिया था।

कमिश्नर ने कहा, "मैं इसी निवेदन के लिए श्रीमन्त के अमूल्य समय का थोड़ा-सा हिस्सा लेने आया था। मेरा खयाल है कि आप कम्पनी सरकार का आदेश न मिलने तक उस मोहर का उपयोग नहीं करेंगे ?"

"ऐसा नहीं हो सकता !" बाला साहब उबल पड़ा, "हमने और हमारे बैकुण्ठवासी पिताश्री ने कम्पनी सरकार का हर अन्याय बर्दाश्त किया है। हमारे देश पर उन्होंने छल-प्रपंच से कब्जा किया। श्रीमन्त पतप्रधान स्वर्गीय बाजीराव को उन्होंने गद्दी से उतारा, मौजूदा पेशवा बहादुर की पेंशन में भी हीला-हवाला चल रहा है। अब कम्पनी सरकार हमारे निजी मामलात में भी दखल कर रही है। यह सब सहन-शक्ति से बाहर हो जाएगा।"

नाना ने उसे फिर रोका।

कमिश्नर मोरलैंड ने ऊँची आवाज में कहा, "हम श्रीमत को केवल सदेशभर दे सकते हैं। सकेत न समझा गया तो कम्पनी सरकार हर तरह से समर्थ है।"

बाला साहब और कोई कड़ा उत्तर दे देता किन्तु नाना की चुप्पी के कारण क्रोध पी गया।

नाना ने उत्तेजना के बिना कहा, "आप हमारे मित्र और कम्पनी सरकार के दूत हैं। अतः आप से कोई बात छिपाई नहीं जा सकती। आप भी यह मानते होंगे कि हर छोटे-मोटे मामलों में लाट साहब का दखल करना उनके लिए शोभाजनक नहीं है। मोहर का उपयोग किसी व्यक्ति विशेष के साथ नहीं जुड़ा है; अपितु वह पूना की गद्दी और पेशवा बहादुर की शक्ति का प्रतीक है। जो व्यक्ति उस पद का अधिकारी होगा, उसके लिए वही मोहर चलेगी। कम्पनी सरकार ने हमें स्वर्गीय पेशवा का उत्तराधिकारी माना है, हमारे लिए उस मोहर के उपयोग न करने का प्रश्न ही नहीं उठता !"

मोरलैंड सकपकाया। नाना की दलीलें स्पष्ट और न्यायोचित थीं। और उस पर यों ही कोई बात नहीं लादी जा सकती थी। कुछ देर वह चुप

रहा। फिर बोला, "आप तो जानते ही हैं कि मैं दोनों ओर की डोर से अधिक कुछ नहीं हूँ। यह ठीक है कि कम्पनी सरकार ने आपको पेशवा का उत्तराधिकारी माना है किन्तु वह आपको उस मोहर के उपयोग की स्वीकृति देगी, इसमें मुझे सन्देह है। मैं तो केवल इतनी प्रार्थना करने आया हूँ, कि जब तक स्वीकृति न मिले, आप मोहर का उपयोग न करें।"

"यह असम्भव है।" नाना ने उत्तर दिया, "हमें रोज़ ही काम-काज में अधिकार-शक्ति के प्रतीक की आवश्यकता होती है, कम्पनी बहादुर के यहाँ पेंशन का मामला अरसे से लटका हुआ है। यदि इसी तरह मोहर का मामला भी लटका रहा तो हमें कष्ट होगा। फिर हमारे विचार से मोहर सम्बन्धी कोई निर्णय आवश्यक नहीं है। कम्पनी ने हमारा अधिकार मान लिया है, अतः हम मोहर के उपयोग के अधिकारी हो गए हैं।"

कमिश्नर कठोर हो गया, "तो आप उस मोहर का उपयोग बन्द नहीं करेंगे ?"

शिष्टाचारपूर्वक नाना ने अपनी असमर्थता प्रकट की, "आप ही विचार कीजिए, हमें कितनी कठिनाई होगी ?"

बाला साहब के चेहरे पर मोरलैंड के प्रति उपेक्षा की व्यंग्यपूर्ण मुसकान खिल गई।

नाना बोला,"आप हमारे मित्र हैं। हम चाहते हैं कि आप लाट साहब से पत्र-व्यवहार कर पेंशन के मामले का निर्णय शीघ्रतापूर्वक करवाएँ। इसके अलावा कम्पनी सरकार को हमारे पत्र का उत्तर भी दिलवाएँ जिसमें बकाया पेंशन की रकम की माँग है। उम्मीद है कि आप ज़रूर इस सम्बन्ध में उन्हें लिखेंगे।"

मोरलैंड ने उत्तर नहीं दिया। उठा और चलने लगा तो बाला साहब ने हँसकर कहा, "साहब ! श्रीमंत पेशवा को प्रणाम तो करते जाइए !"

मोरलैंड ठिठक गया। उसने क्रुद्ध होकर बाला साहब को देखा। बाला तलवार की मूठ पर हाथ रखे मुसकरा रहा था। हिन्दुस्तानी और विशेषकर यहाँ के राजे-महाराजे बहुत अक्खड़ स्वभाव के होते हैं—उसने

सोचा और सिर झुकाकर प्रणाम किया। फिर बिना एक क्षण रुके हुए वापस हो लिया।

मोरलैंड ने अपने बंगले पर पहुँचते ही गवर्नर जनरल के नाम चिट्ठी लिखी। आशय था कि पेशवा और उसके भाई बाला साहब ने बहुत अशिष्ट व्यवहार किया है। सदा ही वे कम्पनी सरकार का अपमान करते हैं। अंग्रेज नागरिकों से जमीनें छीनकर नाना हिन्दुस्तानियों में बाँट देता है और अंग्रेजों के उठते हुए बंगलों तथा गिरजों की दीवारें गिरवा दी जाती हैं। नाना का व्यवहार देखकर लगता है जैसे वह कम्पनी-शासन के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र कर रहा है'''

गवर्नर जनरल को लिखे इस पत्र में मोरलैंड ने यह भी सूचित किया कि इस षड्यन्त्र में वह मोहर बहुत काम आती है जिसे पत्र-व्यवहार में नाना प्रयोग करता है और जिस पर लिखा है, 'श्रीमंत पंतप्रधान नाना धूंधूपंत पेशवा बहादुर'।

पत्र में 'पेशवा' शब्द पर विशेष जोर देकर लिखा गया था कि देशी राजाओं पर इस शब्द का गहरा प्रभाव पड़ता है और नाना इस प्रभाव का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील है।

मोरलैंड ने कुछ सुझाव भी दिए थे। सबसे महत्त्वपूर्ण यह था कि 'पेशवा' शब्द को समाप्त कर नाना की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रखी जाए।

पत्र रवाना कर मोरलैंड निश्चिंत हो गया।

५

"यह हिन्दुस्तानी बहुत समझदार और मेहनती है।" इस टिप्पणी के साथ ब्रिगेडियर स्कॉट ने अजीम को नये ब्रिगेडियर को सौंप दिया था। नये

ब्रिगेडियर का नाम था—अंशवर्नहम। ऊंचा कद, भरा शरीर और तपे हुए सोने-सा चमकदार रंग।

अब तक किसी देशी राजा के यहाँ काम नहीं मिल सका था और अज़ीम को अनचाहे ही 'साहबों' की नौकरियाँ करनी पड़ रही थीं। दोपहर को वह ब्रिगेडियर के मुंशी का काम करता और शाम को कलेक्टर की लड़की मेरी हिलर्सडन को पढ़ाने के लिए उसके बंगले पर जाता।

स्कॉट अज़ीम के कार्य से बहुत खुश था। और यही कारण था कि अपने स्थानांतर के समय वह अज़ीम की योग्यता और भलमनसाहत की तारीफ करते हुए अपने स्थान पर आये नये ब्रिगेडियर अंशवर्नहम को उसे सौंप गया।

नये ब्रिगेडियर ने काम सँभाला। वह स्कॉट के स्वभाव के विपरीत सौ प्रतिशत अंग्रेज़ था। उसकी आवाज़ में न तो स्कॉट की तरह मृदुता थी, न ही वह उतना व्यवहारकुशल था। शरीर से कमज़ोर और आयु से वृद्ध होने के कारण उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन और सनक थी।

पन्द्रह दिनों में ही नया ब्रिगेडियर मातहतों में आलोचना का विषय बन गया।

दो देशी रिसालों—तिरेपनवीं और छप्पनवीं रेजिमेंट—के अलावा दूसरी देशी घुड़सवार सेना में नये ब्रिगेडियर के कड़े स्वभाव, धार्मिक पक्ष-पात और दुर्व्यवहार के प्रति गहन असंतोष छा गया। जहाँ-जिधर, समय और एकान्त मिलता, अंशवर्नहम को लेकर सिपाही आलोचनाएँ करते। कोई कहता, 'इसके जन्म के समय सियार रोये होंगे', किसी का खयाल था कि ईश्वर की भूल से ब्रिगेडियर आदमी का जन्म पा गया था। खानसामे से मेहतरानी और सिपाही से ऊँचे देशी अफसरों तक सभी की अंशवर्नहम के प्रति एक ही राय थी।

परेड के एकदम बाद ब्रिगेडियर आफिस में बैठ जाता। किसी न किसी पर डाँट-फटकार पड़ती रहती। बाहरवाले कमरे में एक छोटी चौपाई रखे, धरती पर बैठा अज़ीम फाइलों में खोया रहता। बाहर बैठे-बैठे उसे

उकताहट बिलकुल न आती क्योंकि भीतर के कमरे में हर समय एक-न-एक तमाशा चलता होता। कभी मेहतरानी पेश हो रही होती, तो कभी किसी देशी हिन्दू सिपाही की चुटिया को लेकर अंगवर्नहम की तीव्र-चिल्लाहट सुन पड़ती, जो परेड के समय पगड़ी से बाहर झाँक रही थी। किसी समय मिलिट्री-गार्डन के माली पर सफाई ठीक से न करने के आरोप के साथ अंग्रेज़ी गालियाँ बरसती होतीं और कभी शेख उसमान बावर्ची पर मीट में नमक ज्यादा डाल देने पर ब्रिगेडियर बौखला रहा होता। यह अज़ीम का सौभाग्य ही था कि अब तक उसके साथ एक भी ऐसा मौका न आया था।

आज जैसे ही ब्रिगेडियर परेड से निबटकर अपने आफिस में आया, वैसे ही उसने छप्पनवीं देशी फौज के जमादार टीकासिंह को तलब किया।

टीकासिंह पेश हुआ। कद्दावर शरीर, भरे चेहरे पर मोटी-मोटी हल्लेदार मूँछें, बड़ी-बड़ी आँखों में गहरे लाल रंग के डोरे, चौड़े ललाट पर त्रिशूल। टीकासिंह का व्यक्तित्व देखकर अज़ीम को लगा, जैसे पौराणिक कथाओं में वर्णित किसी दैत्य को देख रहा है, पर इस सबके बावजूद टीकासिंह उसे अच्छा लगा। उसके शरीर में सुडौलता थी, मांसपेशियों में कसाव। टीकासिंह अज़ीम के सामने से तेज चाल से ब्रिगेडियर के कमरे में प्रवेश कर गया।

ब्रिगेडियर अंगवर्नहम के सामने पहुँचकर जमादार ने अदब से सिल्यूट दिया।

अंगवर्नहम का भारी स्वर फूटा, "तुम सिपाही हो, और सिर्फ सिपाही नहीं, सिपाहियों की जमादारी करते हो। परेड पर इस तरह माथा गंदा करके आना बन्द कर दो। इससे और सिपाहियों पर गलत असर पड़ता है।"

जमादार टीकासिंह का चेहरा उतर गया। हैरान ब्रिगेडियर की ओर देखता ही रह गया। सिपाही की नौकरी से शुरुआत कर बाईस साल तक फौज में तरक्की करते-करते उसने जमादार का ओहदा पाया था। उसके

देखते-देखते कई ब्रिगेडियर आए और चले गए, किन्तु कभी किसी ने उसके माथे पर लगे चन्दन पर एतराज नहीं उठाया। यह उसके 'धरम-करम' की बात थी। जमादार सन्न रह गया। उसने मन-ही-मन ब्रिगेडियर को कोसा — कमबख्त ! ऐसा अफसर तो पहली ही बार देखा।

ब्रिगेडियर ने पहले से भी अधिक कठोर स्वर में आदेश दिया, "इस रंग को अभी पोंछ डालो !"

टीकासिंह चुप खड़ा रहा। क्या कहे ?

"सुना या नहीं ?" अंगवर्नहम चिल्लाया।

"मगर हुजूर, यह तो हमारे धरम-करम की बात है। मन्दिर का चन्दन कैसे मिटाया जा सकता है ? इससे हमारा देवता नाराज होगा।" टीकासिंह ने नम्रतापूर्वक उसे समझाने की चेष्टा की।

"यू डैमिट !" अंगवर्नहम पर जमादार के नम्र निवेदन का बिलकुल प्रभाव नहीं हुआ। "हमसे जबान लड़ाते हो ? कम्पनी सरकार की नौकरी में तुम्हारा बोगस 'धरम-करम' नहीं चलेगा।"

टीकासिंह ने फिर प्रार्थना की, "कम्पनी सरकार की नौकरी में मेरी आधी जिन्दगी बीती जाती है, पर किसी अफसर ने हुजूर की तरह ऐसा मुझसे नहीं कहा। मैं हमेशा से चन्दन लगाता हूँ, साहब ! और चन्दन से बिगड़ता ही क्या है !"

"शट् अप !" ब्रिगेडियर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ, "तुमको जो हुक्म दिया, उसको पूरा करो ! हम पीछे वाले अफसरों की माफिक नहीं है। इस चन्दन को इसी वक्त पोंछ डालो ! एकदम मिटा दो। हम फालतू बातें नहीं सुनना चाहते !"

टीकासिंह सकपकाया, किन्तु लाचारी थी। उसने ब्रिगेडियर का आदेश बेमन पूरा कर दिया।

"नाव यू कैन गो !" तीर की तरह ब्रिगेडियर का दूसरा आदेश हिन्दी और अंग्रेजी में साथ-साथ छूटा, "तुम यहाँ से जा सकते हो। एट वंस लीव दिस प्लेस !"

टीकासिंह ने सिल्यूट दिया। सिर झुकाया और ग्लानि तथा असंतोष का वजन उठाये हुए गर्दन उठाकर कमरे से बाहर निकल गया। बरामदे में बैठे अजीम ने उसकी हालत देखी। अनचाहे ही हँसी फूट निकली। टीकासिंह ठिठका। उसने अजीम को ऐसे घूरा जैसे निगल ही जाएगा। अजीम ने हँसना बन्द कर दिया। काम में जुट गया। टीकासिंह सिर झुकाये वैसे ही योश से दबा-दबा बैरक की ओर रवाना हुआ। वहां पहुंचकर उसने तीसरे घुड़सवार देसी रिसाले के कमाण्डर ज्वालाप्रसाद को सारा हाल बताया। निराशापूर्वक कहा, "अब तो भइया, धरम-करम खतरे में है! आज फिरंगी ब्रिगेडियर ने मेरे माथे से चन्दन पुछवा दिया है। कल कहेगा कि तुम जनेऊ उतारकर गंगाजी में डाल दो।"

ज्वालाप्रसाद को भी सदमा हुआ। आज टीकासिंह पर गुजरी है, कल उसकी बारी आयेगी। सिपाही तो सिपाही, जमादार को इस तरह फटकार डाला?

ज्वालाप्रसाद असन्तोष और क्षोभ से भर उठा। टीकासिंह ठीक ही कहता है। आज त्रिपुंड मिटवाया है, कल जनेऊ फेंक देने की बात कहेगा! परसों सुझायेगा कि मन्दिरों में नहीं, गिरजों में जाया करो। और एक दिन हिन्दू-मुसलमान दोनों के धरम साफ हो जायेंगे। और सारा हिन्दुस्तान ईसाई बन जायेगा।

टीकासिंह वह सारा मवाद बाहर निकालने लगा, जो अजयनंट्स के व्यवहार से पैदा हुआ था, "अगर यही हाल रहा तो हम तो यहाँ नहीं ठहरेंगे, यहीं डलिया ढोकर गुजर कर लेंगे पर इस तरह धरम नहीं बेचेंगे। फिरंगी सम्हालें अपनी सम्पदा!"

ज्वालाप्रसाद ने कुछ नहीं कहा। वह भी यही सोच रहा था। अन्तर इतना था कि चोट खाकर टीकासिंह भीतर का असंतोष उगलने लगा था और ज्वालाप्रसाद उसे दबाये हुए था।

टीकासिंह बोला, "उस ब्रिगेडियर के गुलाम मुंशी को तो देखो, कमबख्त ने मेरी बेइज्जती देखी तो ठिम्-ठिम् करके हँस दिया।"

पीसकर उसने कहा, "भवानी की सौगंध, ज्वाला पंडित! मन हुआ था कि वहीं पकड़कर मुंह कुचल दूं। पर ब्रिगेडियर का कमरा पास ही है। चुप रहना पड़ा। आज काम निबटने दो ज़रा, फिर साले को फाटक से बाहर पकड़कर सारा हिसाब चुकाऊँगा। बताऊँगा कि ठाकुर की हँसी उड़ाने का नतीजा क्या होता है।"

ज्वालाप्रसाद ने शायद टीकासिंह की बात सुनी ही नहीं। वह केवल टीकासिंह के अपमान पर गम्भीरतापूर्वक सोच रहा था। वह बिहार का कट्टर हिन्दू ब्राह्मण था और धर्म के मामले में दखल बर्दाश्त करना उसके लिये असम्भव था।

दूसरे दिन फाटक पर टीकासिंह ने अज़ीम को जा पकड़ा। जब वह फाटक से निकलने लगा तो टीकासिंह ने, जो दीवार के एक किनारे खड़ा हुआ था, संकेत से उसे नज़दीक बुलाया।

अज़ीम निस्संकोच उसके पास पहुंच गया।

टीकासिंह ने पूछा, "कल तुम मेरे अपमान पर क्यों हँसे? क्या नाम है तुम्हारा?"

"अज़ीमुल्ला खान।" उसने चेहरेपर मुसकान पैदा की और मीठे स्वर में बोला, "अब तक मैंने न तो आप-जैसा सिपाही देखा था, न ब्रिगेडियर-जैसा अफसर।"

"क्या मतलब?" टीकासिंह ने माथे पर बल डालकर फिर पूछा।

"मतलब यह कि उसने आपसे चन्दन मिटाने के लिए कहा और आपने मिटा दिया?"

"और क्या करता?"

"करते भी क्या?" अज़ीमुल्ला उपेक्षा के भाव से कह गया, "हाथ आपके हैं, बन्दूकें उनकी हैं। चन्दन आपका है औरमाथा शायद फिरंगियों का। तभी तो उसने फौरन चन्दन मिटा देने का हुक्म दिया, और आपने मिटा डाला। जमादार साहब! ..." अज़ीमुल्ला ने टीकासिंह के बलिष्ठ शरीर को कुछ अपमानित तरीके से देखा, "फिरंगी के हुक्म के आगे पूजा

के चन्दन की कोई कीमत नहीं ? बड़े सीधे आदमी हैं आप।'

टीकासिंह ने कुछ समझा और कुछ नहीं। पर अज़ीमुल्ला के बात करने का ढंग उसे रुचा, अतः चुप रहा।

अज़ीमुल्ला कह रहा था, "मेरी सलाह है कि घर से भगवान की मूरत उठाकर गिरजे में फेंक दीजिए।"

"क्या बकते हो ?" टीकासिंह चिल्लाया, "आगे कुछ कहा तो ज़बान खींच लूँगा।" क्रोध में वह काँपने लगा। और उसकी मोटी मूँछों की नोकें कुछ अजीब तरीके से हिलने लगीं।

अज़ीमुल्ला पर उसके क्रोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ। वह ज़ोर से हँसा। इस तरह, जैसे टीकासिंह का क्रोध विदूषक की मुद्रा हो। बोला, "ठाकुर साहब ! ब्रिगेडियर के मुंशी पर ही आँखें निकाल सकते हैं आप, ब्रिगेडियर पर नहीं ! आपके धर्म को मैंने हवा लगायी तो यों सूखे पत्ते की तरह काँपने लगे और जब ब्रिगेडियर ने चन्दन पोंछने का हुक्म दिया तो बरामदे के कूड़े की तरह अपने माथे से धर्म झाड़ दिया। पक्के धर्मात्मा हैं आप ! धन्य हैं !"

टीकासिंह को व्यंग्य चुभा। लगा, जैसे मोर्चे से भागने में किसी साथी सिपाही ने गोली मार दी है। और वह पीठ को बेधती हुई, सीने के पार हो गयी है। उसने अपराधी-भाव से सिर झुका लिया। चाहकर भी वह अज़ीमुल्ला की आँख से आँख नहीं मिला सका।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "जमादार साहब ! हिन्दुस्तानी मुंशी को डाँटना एक बात है और फिरंगी ब्रिगेडियर के आगे सिर झुकाना दूसरी बात। जब माथे पर चन्दन लगाना आप धर्म से मानते हैं तो उसे मिटाने से पहले भी धर्म का ख़याल रखना चाहिए।"

टीकासिंह की इच्छा हुई, आत्महत्या कर ले। अज़ीमुल्ला न तो आयु में बड़ा था और न ओहदे में, पर खरी-खरी सुना रहा था।

अज़ीमुल्ला बोलता गया, जैसे प्रवचन करते-करते बहाव की जगह आ गयी हो, "उस समय मैं आपके अपमान पर नहीं हँसा था, ठाकुर

साहव ! हिन्दुस्तान की तकदीर पर रोया था। इस मुल्क में जव धर्मवाले ही न रहे तो धर्म कहाँ वचा ?"

"मुझे माफ करो भाई, भूल हुई।" टीकासिंह इस तरह उखड़े-उखड़े स्वर में वोला जैसे दलदल में धँस रहा आदमी मदद के लिए चीख रहा हो।

अज़ीमुल्ला की इच्छा थी कि जमादार को और खरी-खोटी सुना दे, पर जव उसने टीकासिंह के उतरे चेहरे को देखा, जिस पर अपराध की स्वीकारोक्ति तथा दुःख के भाव दीखने लगे थे, तो यह सोचकर कि जमादार के लिए पहला पाठ हो गया है, 'खुदा हाफिज़' कहा और आगे बढ़ गया। टीकासिंह देर तक सामने जाते अज़ीमुल्ला के प्रति श्रद्धापूर्वक देखता रहा और फिर वैरकों की ओर चला गया।

अज़ीमुल्ला कलेक्टर हिलर्संडन की लड़की मेरी को पढ़ाने के लिए उसके वंगले पर पहुँचा।

पचासवर्षीय हिलर्संडन उन व्यक्तियों में था जो स्वयं भी अच्छे मित्र होते हैं और अच्छे मित्र पसन्द करते हैं। नगर का सर्वोच्च अधिकारी होते हुए भी उसमें अहं की भावना नहीं थी। वह स्वाभिमानी था, लेकिन दूसरे के स्वाभिमान के प्रति लापरवाह नहीं था। परिवार के नाम पर उसकी एकमात्र युवा लड़की मिस मेरी थी।

हिलर्संडन जितना सौम्य, गम्भीर और मननशील व्यक्ति था, मेरी उतनी ही शरारती और अल्हड़ थी। मातृभाषा के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा वह जानती न थी। पर जव पिता ने अधिक ज़ोर डाला, तो उसने फ्रेंच पढ़ना अधिक पसन्द किया। मेरी का खयाल था कि फ्रेंच ही दुनिया की ऐसी भाषा है जिसमें जवानियों का साहित्य है। पैटन की सिफारिश पर हिलर्संडन ने अज़ीमुल्ला को अध्यापक रखा था।

स्वतन्त्र वातावरण और हिलर्संडन के प्यार ने मेरी को स्वेच्छाचारिणी

बना दिया था। चमकते रंग, सुडौल शरीर और फूल की तरह खिले रहने-वाले चेहरे के बावजूद मेरी जिद्दी, चिड़चिड़ी और तुनुकमिजाज थी।

अजीमुल्ला वक्त का पाबन्द। वह नियमित समय पर रोज जा पहुँचता। उस दिन भी पहुँचा।

कलेक्टर हिलसंडन का बंगला बड़ा था। गर्मियों का मौसम। मेरी के अध्ययन की व्यवस्था बाहर बगीचे में थी। बगले के बायीं ओर वाले हिस्से में कलेक्टर स्वयं बैठते थे। शहर के अंग्रेज अधिकारी, और कभी-कभी हिन्दुस्तानी साहूकार या रिटायर्ड राजे-महाराजे, जागीरदार, जमींदार, दो-चार की संख्या में अक्सर उनके पास बैठे रहते। गपशप चलती। बंगले के चारों ओर अंग्रेज सिपाहियों का गार्ड पहरा देता।

पढ़ाते-पढ़ाते डेढ़ मास हो चला था। पर मेरी थी कि पुस्तक के मुख-पृष्ठ का रंग भी ठीक से याद न कर सकी। जब-जब अजीमुल्ला पढ़ाना प्रारम्भ करता, तब-तब मेरी विषय से अलग दूर-दूर की बातें करती। अजीमुल्ला तंग हो जाता और एक-आध घंटे की बेतुकी दिमागपच्ची के बाद घर का रास्ता लेता।

इस डेढ़ माह की पढ़ाई में मेरी ने अजीमुल्ला से फ्रेंच की पुस्तक का पाठ तो रत्तीभर नहीं पढ़ा, बल्कि तेरी-मेरी बातें अच्छी-खासी सीख लीं। अजीमुल्ला किताब का बारहवाँ पृष्ठ समझाता तो मेरी उसकी आँखों में आँखें उलझाकर पूछती, "हिन्दुस्तान में सबसे सुन्दर औरत किसकी मानी जाती है ?" अजीमुल्ला फ्रेंच-व्याकरण बताता तो मेरी कहती, "आपके बाल बहुत अच्छे हैं। हमारे देश में ऐसे बालोंवाले युवकों को लड़कियाँ बहुत पसन्द करती हैं..." अजीमुल्ला इतिहास सुनाता तो मेरी कहती, "सुना है हिन्दुस्तानी लड़कियाँ बहुत सुन्दर होती हैं, पर मेरा अनुभव है कि आपके देश में लड़के भी कम सुन्दर नहीं होते..." अजीमुल्ला किताब बन्द कर देता। कहता, "हाँ।"

इस दिन भी हमेशा की तरह यही हुआ। अजीमुल्ला ने पुस्तक खोली ही थी, मेरी ने पूछा, "लोग शराब क्यों पीते हैं, खान साहब ?"

अजीमुल्ला ने आसपास देखा, कोई नहीं था। बोला, "इसलिए कि सड़कों पर पैदल चलती हुई शराबों का नशा न चढ़े।"

मेरी के चेहरे पर मुसकान खिली। अजीमुल्ला के उत्तर पर उसे शरमाना चाहिए था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। पहले से कहीं अधिक खुलकर पूछा उसने, "पर शराब तो दोनों ही हैं!"

"हां।" अजीमुल्ला ने कहा, "शराब-शराब का फर्क है। कुछ शराबें ऐसा नशा देती हैं जो तमाम उम्र नहीं उतरता और कुछ रात को पीजिए, सुबह उतर जाता है। इसलिए लोग ऐसी शराब पीना ज्यादा पसन्द करते हैं जो रात को पी जायें और सुबह उतर जाये। क्योंकि तमाम उम्र का नशा बेहद खतरनाक होता है। आदमी बहकता ही चला जाता है।" उसकी दृष्टि मिस मेरी के झिलझिले गाउन पर टहलती रही।

मेरी के चेहरे पर संकोच नहीं था। हालांकि वह इतना जरूर महसूस कर रही थी, जैसे उसके चिकने बदन पर कोई सुन्दरी चीज रेंग रही है। शरीर में एक विचित्र-सी कसमसाहट।

अजीमुल्ला को मेरी के चेहरे पर संकोच और लज्जा का न आना अखरा। स्त्री का सबसे बड़ा गुण और आकर्षण लज्जा है। अजीमुल्ला इस बात पर उतना ही विश्वास करता था, जितना अनेक बातों पर नहीं।

थोड़ी देर दोनों एक-दूसरे को देखते रहे। फिर भी मुलाकात बन्द नहीं, पर चढ़ाई जारी।

६

अधिक समय तक मोन्टीज को गवर्नर जनरल के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। जल्दी ही पत्र मिल गया। लिखा था—"साम्राज्ञी एक सेना के व्यवहार से खुश है। तुम्हारे सुझावों पर उचित सीमा तक

विचार किया गया है।"

पत्र लेकर मोरलैंड पेशवा के दरबार में उपस्थित हुआ।

नाना प्रतिदिन के नियमानुसार रोज की घटनाओं पर पेशियाँ ले रहा था। अंगरक्षकों से घिरा कमिश्नर पहुँचा, तो नाना ने देखा कि उसके चेहरे पर अन्य दिनों की अपेक्षा कहीं अधिक शरारत और व्यंग्य था।

नाना पेशी से निवृत्त हुआ। कमिश्नर ने दरबार के नियमानुसार पेशवा को झुककर प्रणाम किया। गवर्नर जनरल का पत्र प्रस्तुत कर निवेदन किया, "कम्पनी सरकार की ओर से गवर्नर जनरल बहादुर ने श्रीमंत पेशवा की ओर यह पत्र भेजा है।"

पेशवा ने पास ही बैठे बाला साहब को संकेत किया। अपने स्थान से उठकर बाला साहब ने पत्र खोला।

"पढ़ा जाये!" दबंग स्वर में नाना ने आज्ञा दी।

आवश्यक शिष्टाचार के बाद पत्र में लिखा था :

'आपके पेंशन सम्बन्धी पत्रों पर सरकार का विचार चल रहा है। हमें समाचार मिला है कि आप भूतपूर्व पेशवा श्रीमंत बाजीराव की मोहर का अपने पत्र-व्यवहार में उपयोग कर रहे हैं, यह हमारी दृष्टि में वैध नहीं है। कम्पनी सरकार और पेशवा के बीच यह सन्धि नहीं थी कि आगामी उत्तराधिकारी भी उसी मोहर का उपयोग करेगा। आपको पेशवा के उत्तराधिकारी के रूप में कम्पनी सरकार ने अवश्य स्वीकार किया है, किन्तु पेशवा नहीं स्वीकार किया। अतः आप उस मोहर का उपयोग नहीं कर सकते। आशा है, आप कम्पनी सरकार और उसकी मित्रता तथा कृपाओं का ध्यान रखते हुए हमारी इच्छा के विरुद्ध ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे, जिससे मैत्री-सम्बन्धों को हानि पहुँचे। कम्पनी सरकार की राय है कि आप उस मोहर के स्थान पर एक नयी मोहर बनवायें, जिस पर केवल इतना लिखा रहे—'श्रीमंत महाराजा धुंधूपंत नाना बहादुर'—कम्पनी सरकार आपको इस मोहर का अधिकारी मानती है।"

पत्र में आगे भी निर्देश किया गया था :

"...कम्पनी सरकार और आपके मैत्री-सम्बन्धों को चिरस्थायी रखना आपके और हमारे बीच की सन्धि के उचित पालन पर ही निर्भर है। अतः आपको ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कम्पनी सरकार और इंग्लिस्तान की महारानी के प्रजाजनों को कोई कष्ट पहुंचे। हमें शिकायत मिली है कि आपकी देखरेख में इंग्लिस्तान के प्रजाजनों को तकलीफ है और उनकी जायदादें जब्त की जा रही हैं। कोई भी आवश्यक कदम उठाने से पूर्व आपको सूचना देना हमारा कर्तव्य है, क्योंकि अब तक आपके और हमारे बीच मैत्री के प्रगाढ़ सम्बन्ध हैं।"

पूरा पत्र सुनने के बाद पेशवा नाना ने गम्भीर किन्तु चिन्तित स्वर में पूछा, "कुछ और ?"

"कुछ नहीं।" पत्र लपेटते हुए जबड़े भींचकर बाला साहब ने कहा, "श्रीमंत इससे आगे भी कुछ सुनना चाहते हैं ?"

तात्या, मोरोपंत और अनेक सभासदों के चेहरों पर उत्तेजना थी। तात्या तो सम्भवतः कुछ कहना ही चाहता था, पर इसी बीच पेशवा अपना स्थान छोड़कर उठ खड़ा हुआ। दरबार की बरखास्तगी के साथ ही सब लोग यथास्थान चले गये।

दरबार से लौटकर पेशवा महल के एक कक्ष में उदासी में डूबा-डूबा मसनद पर आ लेटा। थोड़ी देर बाद बाला साहब, तात्या, मोरोपंत और राव साहब पहुंचे। कुछ क्षणों तक कक्ष में मौन रहा, फिर बाला साहब बोला, "अब भी कुछ बचा है जिसे सहन किया जायेगा ?" उसके स्वर में उत्तेजना और चिन्ता थी, "फिरंगी सीमा से अधिक पैर फैला रहे हैं। कम्पनी सरकार कहती है कि देशी राजाओं और श्रीमंत की देखरेख में महारानी के प्रजाजनों को कष्ट हो रहा है। उनकी जायदादें जब्त की जा रही हैं। यह तो 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

नाना चुपचाप लेटा रहा।

तात्या ने कहा, "इन हरकतों से तो लगता है, जैसे श्रीमन पेशवा बहादुर की पेंशन भी खतरे में है। फिरंगियों के न्याय का विश्वास करना मूर्खता है। ये साँप की तरह जहरीले और बन्दर की तरह दगाबाज हैं!"

"आप ठीक कहते हैं।" बाला साहब ने तात्या का समर्थन किया। फिर नाना की ओर व्यंग्य कर कहा, "पर श्रीमन पेशवा को उनका भरोसा है। उनके विचार में फिरंगी, हरिश्चन्द्र की तरह सच्चे और सीता की तरह पवित्र हैं।"

नाना ने एक बार बाला साहब की ओर दृष्टि फेंकी, फिर लौटा ली, चुप रहा।

बाला साहब कहे गया, "पेंशन के मामले में गवर्नर जनरल बहादुर ने अब तक कुछ नहीं लिखा और मोहर के मामले में कितनी शीघ्रता से निर्णय किया? श्रीमत पेशवा जिनकी मित्रता पर इतना भरोसा करते हैं, उन्हें श्रीमन की मोहर तक पर विश्वास नहीं? यह तो बड़ी हास्यास्पद बात है!"

पेशवा अब भी चुप था। बाला साहब को क्रोध बहुत जल्द आता है, यह वह भली-भाँति जानता था।

तात्या ने कहा, "फिरंगी धोखेबाज हैं! उन पर विश्वास करना अपने पैरों पर आरा चलाना है। श्रीमंत पेशवा बहादुर की पेंशन के मामले में कोई ईमानदारी बरती जायेगी, मुझे तो ऐसा नहीं लगता।" उसके स्वर में थकान थी, जैसे चलते-चलते बैठ जाने की इच्छा हो रही हो, "मनू के साथ भी उन्होंने खूब मित्रता निबाही। न्याय के बहाने झाँसी पर कब्जा कर लिया। भोंसले के साथ भी उन्होंने न्याय किया था! मित्रता निबाही और नागपुर निगल गये? अब हमारे साथ भी मित्रता निभ रही है। देखें, भविष्य कौन-सी करवट लेता है?"

"क्यों? इस मामले को अब भी भविष्य मानते हो, तात्या साहब?" बाला राव ने कठोर स्वर में असंतोष व्यक्त किया, "इस धरती पर अब

राम, कृष्ण और समर्थ रामदास महाराज की कहानियाँ नहीं रहेंगी, सिर्फ फिरंगी और उनकी मेमें रहेंगी। गंगाजी के किनारे गायें काटी जायेंगी और गंगाजल के स्थान पर मदिरापान होगा।" वोलते-वोलते घृणा से उसका चेहरा विद्रूप होने लगा। "देखते नहीं, धीरे-धीरे सव कुछ तो फिरंगियों के हाथ पहुंच रहा है। भले मित्रता के सहारे पहुंचे, या युद्ध के सहारे।"

पेशवा ने शान्त स्वर में कहा, "वाला साहव, हम आराम करना चाहते हैं।"

वाला साहव का क्रोध चरम पर था। वहुत कुछ था, जिसे वह नाना के सामने उगल देना चाहता था, किन्तु पेशवा की आज्ञा की अवहेलना करने का साहस उसमें नहीं था। वह वापस हुआ। मोरोपंत, तात्या और राव साहव ने उसका अनुसरण किया।

वाहर आकर मोरोपंत ने वाला साहव से कहा, "आप क्रोध में वहुत वोल जाते हैं।" उन्हें पेशवा पर लगातार किये गये व्यंग्य और उलाहने अखरे थे। "श्रीमंत पेशवा के सामने आपको इस तरह नहीं उखड़ना चाहिए।"

वाला साहव कुछ नहीं वोला।

मोरोपंत ने कहा, "क्या आप समझते हैं कि फिरंगी श्रीमंत पेशवा की मित्रता का कोई विचार नहीं करेंगे? कलेक्टर हिलर्सडन स्वयं श्रीमंत पेशवा की पेंशन के मामले में लाट साहव से वातचीत और पत्र-व्यवहार कर रहे हैं। फिर फिरंगी सरकार में एकदम पेशवा का विरोध करने की शक्ति भी नहीं है। मेरा विचार है कि पेंशन देने में वे अधिक आनाकानी नहीं कर सकते। और यदि ऐसा हुआ तो फिरंगी अपना सवसे वड़ा शत्रु पैदा कर लेंगे!"

कलेक्टर हिलर्सडन के वारे में वाला साहव ने राय दी, "वे सव एक ही पेड़ के फल हैं, स्वाद अलग नहीं हो सकता।"

मोरोपंत चुप हो गये।

तात्या ने पूछा, "तांवे जी! यदि श्रीमंत पेशवा को फिरंगियों ने पेंशन न दी, तव भी मित्रता निवाहियेगा?"

मोरोपंत चुप रहे। बाला साहब ने स्वर में वैसी ही उदासी घोले हुए कहा, "और क्या करेंगे?"

मोरोपंत को भी नाना साहब की तरह अंग्रेजी न्याय पर भरोसा था। इस तरह की विद्रोह-वार्ता में उनकी रुचि नहीं थी। कुछ देर वे तात्या और बाला साहब की उखड़ी-उखड़ी बातें सुनते रहे, फिर राव साहब को साथ लेकर अपने कक्ष में चले गये।

बाला और तात्या को गवर्नर जनरल के पत्र की भाषा बहुत अखरी थी। उन्हें अंग्रेजों की इतिहास-वर्णित मित्रता के आधार पर पेंशन या न्याय मिलने की संभावना नहीं थी। कुछ समय तक एकमत होकर वे अंग्रेजों की निन्दा करते हुए पेशवा के दस्तूपन पर खेद प्रकट करते रहे, फिर यथास्थान चले गये।

दूसरे दिन नाना पेशवा ने एक अनुचर भेजकर कलेक्टर हिलसंडन को बिठूर में दावत पर आमंत्रित किया। उन्होंने सोचा था, कलेक्टर के आने पर वे फिर अपील करेंगे और मोहर के मामले में हुए अन्याय पर न्याय की माँग। तात्या और बाला साहब ने पेशवा के इस विचार से असहमति व्यक्त की। उनका विचार था कि इस दावत में धन का अपव्यय होगा। हिलसंडन ने अनेक बार पेंशन के सम्बन्ध में सिफारिशें की थीं, कभी सरकारी तौर पर, कभी व्यक्तिगत, किन्तु अब तक किसी सिफारिश पर विचार नहीं किया गया था।

७

अजीमुल्ला और टीकासिंह में उस दिन जो कुछ बातचीत हुई, उसे टीकासिंह ने स्वयं ही सारे देसी रिसाले में फैला दिया। तरह-तरह से उसकी तारीफ की और कहा, "वह सच्चा हिन्दुस्तानी है! धर्म का पाबन्द। उसने

मुझे पतित होने से बचाया। उसे ब्रिगेडियर, कम्पनी सरकार, लाट साहब और दुनिया की किसी चीज से भय नहीं लगता।"

टीकासिंह का प्रचार इतना प्रभावशाली था कि अज़ीमुल्ला सभी देशी अफसरों और रिसाले के सिपाहियों में सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। परेड से सिपाही प्रातः नौ बजे निवृत्त हो जाते। ब्रिगेडियर का कार्यालय में आने का समय दोपहर बारह बजे था। इस बीच अज़ीमुल्ला किसी रिसाले के जमादार के साथ इधर-उधर बैरकों या पेड़ की छाँह में बैठा गपशप करता देखा जाता। अब वह पहले की तरह समय पर न आकर घर से जल्द आने लगा था।

ब्रिगेडियर अंशबर्नहम को अज़ीमुल्ला और देशी रिसालों के अफसरों की गतिविधियों की सूचना मिली। एक दिन उसने स्वयं भी जांच की। सूचना सही थी। अज़ीमुल्ला सचमुच ही जल्दी आकर इधर-उधर मिलता-जुलता था। पहले तो अंशबर्नहम ने एक-एक कर सूबेदार-जमादारों को बुलाकर डांटा-फटकारा और अन्त में अज़ीमुल्ला की पेशी ली।

अज़ीमुल्ला उपस्थित हुआ। वह जानता था कि ब्रिगेडियर क्या कहने वाला है। एक दिन पूर्व ही टीकासिंह और छप्पनवीं देशी फौज के सूबेदार गंगादीन ने उसे बताया था। अंशबर्नहम को एक मुंशी और फौजी अफसरों का इतना मेलजोल अच्छा नहीं लगा। उसे सन्देह था, जैसे वे कम्पनी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करते हैं।

ब्रिगेडियर ने कड़क आवाज में पूछा, "मुंशीजी, आफिस का समय क्या है?"

अज़ीमुल्ला ने समय बताया।

'फिर तुम नौ बजे ही यहाँ क्यों आ जाते हो?" दूसरा सवाल हुआ।

"तफरीह के लिए।" अज़ीमुल्ला ने विचलित हुए बिना उत्तर दे दिया।

"यह क्लब है क्या?"

"नहीं।"

"फिर ? ···फिर नौ बजे से ही आ जाने का मतलब ?"

"गपशप ! "

"कैसी गपशप ?" बौखलाकर ब्रिगेडियर चिल्लाया, "बदतमीज़ ! हम जो पूछते हैं, उसका जवाब दो ! तुम नौ बजे से आकर यहाँ क्या करते रहते हो ?"

अज़ीमुल्ला को उसका बौखलाना और चिल्लाना अच्छा लगा। शरारत के साथ मुसकराकर बोला, "अर्ज़ किया न, साहब। दोस्तों से गपशप करता हूँ।"

"कौन दोस्त ?"

"यही देशी रिसालों के जमादार, सूबेदार। बड़े मजेदार लोग हैं, जनाब !"

"वे अफसर हैं, तुम मुंशी। तुम्हारी-उनकी कैसी मित्रता ?"

"मित्रता में मुंशी और अफसर का क्या सवाल ?"

"कैसे बोलते हो ?" अंगवर्नहम चिल्लाया।

"और कैसे बोलूँ ?" अज़ीमुल्ला ने अक्खड़पन से कहा।

"गेट आउट ! यू डैमफूल !"

अज़ीमुल्ला ने आँख टेढ़ी की, "गाली मत दीजिए, साहब !"

"यू इडियट ! निकल जाओ !"

अज़ीमुल्ला बाहर आ गया। कुछ समय बाद ही उसे काम से जवाब मिल गया। बरखास्तगी का कारण बताते हुए लिखा गया था : "तुम रिश्वतखोर और भ्रष्टाचारी हो, ऐसी अनेक शिकायतें पायी गयी हैं।" अज़ीमुल्ला ने अपना थैला उठाया। आदेशपत्र जेब के हवाले किया और हिलर्सडन के बंगले की ओर चल पड़ा।

समय से पूर्व अज़ीमुल्ला का आगमन देखकर मेरी चकित हुई।

अज़ीमुल्ला ने थैला टेबिल पर रखा और एक गहरी साँस खींचकर

कुर्सी पर बैठ गया। नौकरी से निकाले जाने के बावजूद उसके चेहरे पर शिकन न थी।

मेरी ने पूछा, "खान साहब, आज तो आप काफी जल्दी आ गये?'

"हाँ।" अज़ीमुल्ला बोला, "इत्तिफाक़ है। वैसे आने का इरादा तो न था। पर..."

"अच्छा ही हुआ।" मेरी बोली, "आप अगर शाम को आते तो हम लोग न मिलते।"

"क्यों?"

"हम लोग दावत में जा रहे हैं।"

"कब तक लौटियेगा?"

"शायद परसों तक।"

"परसों तक?" आश्चर्यपूर्वक अज़ीमुल्ला ने पूछा, "दावत इंगलिस्तान में है क्या?"

मेरी हँसी, "नहीं! दावत तो हिन्दुस्तान में ही है। बिठूर में...आप चलियेगा?"

"मैं कैसे चल सकता हूँ? बिना आमंत्रण?"

"बिना आमंत्रण क्यों? आप हमारे साथ हैं और हम सब का आमंत्रण है। आपके पास समय न हो, यह बात दूसरी है।"

"नहीं-नहीं, समय तो है।"

"फिर चलिये न!" मेरी ने इस तरह कहा कि वह इनकार न कर सका। फिर भी घर पर सन्देशा भेजने के लिए उसने समय चाहा। मेरी ने किसी नौकर के जरिए गफूरी बेगम के पास सन्देशा भिजवा दिया।

शाम को वे सब बिठूर में थे। रास्ते में अज़ीमुल्ला ने मेरी से दावतदार का नाम पूछ लिया था और यह जानकर खुश था कि वह पेशवा के यहाँ दावत में पहुँच रहा है। परिचय का उसे लोभ था।

दावत की शानदार व्यवस्था थी। अधिकतर अंग्रेज अफसर अपने परिवारों सहित आये थे। अज़ीमुल्ला ने देखा कि पेशवा उनका बहुत उत्साहपूर्वक स्वागत कर रहा था। अनेक मेहमान दावत के तत्काल बाद ही रवाना हो गये। जाते समय पेशवा ने उन्हें कीमती आभूषण और दुशालें भेंट किये। अज़ीमुल्ला को लगा, जैसे पेशवा बहुत बंधा हुआ है। कुछ मेहमान बिठूर के ही थे, वे भी जहाँ-तहाँ चले गये। कलेक्टर हिलसंडन ने भी जाना चाहा था, पर पेशवा ने नहीं जाने दिया।

प्रातः नाश्ते के समय पेशवा ने हिलसंडन से काम की बात शुरू की। तात्या, मोरोपंत और बाला साहब के अतिरिक्त अज़ीमुल्ला भी था।

नाना ने बात प्रारम्भ करने से पूर्व अज़ीमुल्ला की ओर देखा। अज़ीमुल्ला ने स्थिति समझी। शिष्टाचारपूर्वक बोला, "मैं बाहर चला जाता हूं।" वह उठने लगा किन्तु कलेक्टर हिलसंडन ने उसे बिठा लिया। नम्र स्वर में नाना से कहा, "श्रीमत पेशवा हिचकिचाएँ नहीं। खान साहब मेरी बेटी के अध्यापक हैं। सच्चे और विश्वासपात्र हैं।"

पेशवा आश्वस्त हो गया। बाला साहब, तात्या और मोरोपंत की दृष्टि अज़ीमुल्ला के चेहरे पर जा ठहरी।

पेशवा ने कहा, "खान साहब, मैं आप पर विश्वास करता हूं।" फिर उसने हिलसंडन से चर्चा की। पेंशन का जिक्र निकला। एक बार और सिफ़ारिश करने की दरख्वास्त की। मोहरवाली घटना और कम्पनी के आदेश सुनाकर उसने कम्पनी के रवैये पर खेद व्यक्त किया। अज़ीमुल्ला चुपचाप सुनता रहा। बीच में कुछ नहीं बोला। सम्पूर्ण बातचीत के बाद हिलसंडन ने पेशवा को आश्वस्त किया कि वह गवर्नर जनरल को पत्र लिखकर न्याय दिलवाने की चेष्टा करेगा। कलेक्टर ने स्वीकार किया कि पेशवा के साथ अन्याय हुआ है।

जब राजनीतिक चर्चा बन्द हो गयी तब अज़ीमुल्ला बोला, "श्रीमन्त पेशवा से एक निवेदन करूँ?" और बिना स्वीकृति की प्रतीक्षा किये उसने कहा, "क्षमा चाहता हूं। श्रीमन्त की एक बड़ी कमज़ोरी है।"

वाला साहब की भँवें चढ़ गयीं। उसे एक साधारण शिक्षक का इस तरह बोलना पसन्द नहीं आया था। नाना शान्त रहा। हिलसंडन को भी उसका दुस्साहस खला। तात्या ने कठोर स्वर में पूछा, "क्या ?"

"क्रोध न कीजिए।" अज़ीमुल्ला ने सभी के चेहरों पर हुए भाव-परिवर्तन को समझा। गम्भीर स्वर में कहा, "श्रीमंत विश्वास करने में बहुत शीघ्रता करते हैं।"

मोरोपंत हँसा। उसके विचार से बड़ी साधारण बात उस शिक्षक ने बहुत असाधारण तरीके से कही थी।

"हँसिए मत।" अज़ीमुल्ला उतने ही गम्भीर स्वर में बोला, "साधारण से परिचय पर विश्वास कर लेना कमजोरी ही है।"

सब पुनः गम्भीर हो गए।

मोरोपंत और नाना ने महसूस किया कि वह शिक्षक साधारण नहीं है। मेरी ने सभी के चेहरे देखे। उसे विश्वास था कि अज़ीमुल्ला प्रभावशाली है। यह जानकर उसे प्रसन्नता हुई कि उसका विचार गलत नहीं है।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे श्रीमन्त अशिष्टता न समझें। राजकाज के मामले जटिल होते हैं और राजनीति में विश्वास सबसे ज्यादा कीमती चीज़ है। किसी भी आदमी को अपना अमूल्य विश्वास बहुत सोच-समझकर सौंपा जाता है और तभी उसके सामने अपनी शक्ति या कमज़ोरी के बहुमूल्य रहस्य खोले जाते हैं, किन्तु श्रीमन्त बड़ी लापरवाही से किसी को भी विश्वास सौंप देते हैं। विश्वास कभी दूसरों की सिफारिश और वकालत के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसके लिए पहले परख की जरूरत होती है।"

सभी गम्भीरतापूर्वक अजीमुल्ला की बात सुने गए। हिलसंडन ने स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया कि वह सही आदमी अपने साथ लाया है। चन्दन का पेड़ स्वयं से लिपटी हुई अगुणकारी बेल में भी सुगन्धि भरता है।

अज़ीमुल्ला ने उदाहरण देकर अपने विचार की पुष्टि की, "मैं अध्यापक हूँ। गन्दी बस्ती के एक कच्चे मकान में रहकर ढेर-से संघर्षों से जूझते हुए मैंने अध्ययन किया है। इसके बावजूद मैं सिर्फ अध्यापक ही हूँ। श्रीमन्त पेशवा बहादुर के सामने मेरा आना, इस तरह बैठना और एक महान शक्ति से बात करना महज एक इत्तिफाक है। हिलर्संडन महोदय ने मेरा साधारण-सा परिचय देकर मेरे प्रति विश्वास की सिफारिश की और श्रीमन्त ने अत्यधिक विश्वास कर लिया। राजकाज के महत्त्वपूर्ण मामले निस्संकोच प्रकट कर दिए…क्षमा करें, श्रीमन्त! मुझे यह अच्छा नहीं लगा और जो बात मुझे अच्छी नहीं लगती, मैं कह देता हूँ। पचा नहीं सकता।" बात समाप्त कर उसने क्रमवार हिलर्संडन, पेशवा, तात्या, मोरोपंत और बाला साहब के चेहरे देखे। वे सब पूर्ववत् चुप और गम्भीर थे।

अज़ीमुल्ला ने नम्र स्वर में कहा, "मुझे लगता है जैसे श्रीमन्त पेशवा को मेरी बातें सीमा से बढ़ी हुई लगी हैं, अथवा मेरा इस तरह बोलना उन्हें अशिष्टता लग रहा है। यदि ऐसा है तो मैं अपनी बातों के लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ।" उसने अपने चेहरे पर दीनता प्रकट की।

"नहीं! नहीं! हमें आपकी कोई बात बुरी नहीं लगी।" पेशवा ने कहा, "आपने जो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए, उनके लिए धन्यवाद।"

तात्या ने अज़ीमुल्ला से पूछा, "सम्भवत: आप पहली बार बिठूर आए हैं?"

"हाँ।"

"आइये, आपको श्रीमन्त पेशवा का महल दिखाएं।" तात्या ने प्रस्ताव किया।

"ज़रूर।" अज़ीमुल्ला मुसकराकर उठा। तात्या उसे महल दिखाने लगा। मोरोपंत और मेरी भी उसके साथ चले गये।

नाना साहब ने एकांत पाकर हिलर्संडन से पूछा, "इस अध्यापक का क्या नाम बताया था आपने?"

"अज़ीमुल्ला खान।" कलेक्टर ने विशेषणयुक्त जानकारी दी, "अंग्रेज़ी,

फ्रेंच, उर्दू, हिन्दी सभी का अधिकारी विद्वान है।"

नाना प्रसन्न हुआ। एक क्षण विचार करने के बाद उसने प्रस्ताव रखा, "हमें भी एक ऐसे ही आदमी की आवश्यकता है। अकसर राज-काज में विदेशी भाषाओं का काम आ जाता है। ऐसे मौकों पर हमारे विचार से खान उपयुक्त रहेंगे। वे नीतिज्ञ भी हैं। यदि आप इनसे कह सकें और इन्हें स्वीकार हो तो ये हमारे साथ रह सकते हैं।"

"मैं जरूर कहूँगा। मेरे विचार से खान को कोई एतराज नहीं होगा।"

"यहीं पूछ लीजिएगा।" नाना ने कहा।

तात्या महल दिखाकर अज़ीमुल्ला को वापस लाया।

कलक्टर हिलर्सडन ने पेशवा के सामने ही पूछ लिया, "खानसाहब! श्रीमन्त पेशवा बहादुर आपको अपने साथ रखना चाहते हैं। कानपुर छोड़िएगा?"

अज़ीमुल्ला आश्चर्यचकित! उसने कभी नाना और कभी अंग्रेज़ कलेक्टर का चेहरा देखा।

बाला साहब ने विश्वास दिलाया, "आपको कोई असुविधा नहीं होगी। श्रीमन्त पेशवा बहादुर के दरबार में विद्वानों के लिए सदा स्थान है।"

अंधा क्या चाहे दो आँखें! अज़ीमुल्ला ने झुककर नाना को प्रणाम किया। बोला, "श्रीमन्त पेशवा बहादुर की आज्ञा की अवहेलना कोई हिन्दुस्तानी करे, ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

उत्तर पेशवा को रुचा। मुसकरा दिया। तीसरे दिन कलेक्टर हिलर्स-डन, अज़ीमुल्ला और मेरी के साथ बिठूर से लौटे, पर साथ में पेशवा के पाँच निजी सिपाही, एक खाली गाड़ी और बग्घी भी थी, जिसे अज़ीमुल्ला की माँ को कानपुर से बिठूर लाने के लिए पेशवा की ओर से भेजा गया था।

पेशवा के दरबार में तात्या, मोरोपंत, बाला साहब और राव साहब

के बाद पाँचवाँ स्थान अजीमुल्ला को मिला।

८

मुंशी अजीमुल्ला को ब्रिगेडियर ने भ्रष्टाचार के आरोप में नौकरी से निकाल दिया।

सिपाहियों में कानाफूसी होने लगी। एकमत सभी का विचार था कि अजीमुल्ला रिश्वतखोर नहीं हो सकता। ब्रिगेडियर के आफिस में तैनात एक देशी सिपाही ने छप्पनवीं फौज के सूबेदार गंगादीन को समाचार दिया कि मुंशी ने रिश्वत नहीं ली थी। आरोप गलत है। रात के समय तरेपनवीं देशी सेना के सूबेदार दलभंजनसिंह के कमरे में बैठक हुई। देशी रिसालों के विश्वासपात्र हिन्दुस्तानी सिपाहियों को टीकासिंह ने बैरक के आसपास तैनात किया, "सावधान रहना। कोई फिरंगी अफसर या सिपाही इधर न आने पाए।'

एक बैठक में कानपुर के देशी रिसालों के लगभग सभी हिन्दुस्तानी अधिकारी एकत्र थे। सभी के मन में धर्म की चिन्ता थी, और अन्याय के प्रतिकार की इच्छा। छप्पनवीं फौज का सूबेदार गंगादीन, स्वयं दलभंजनसिंह, छप्पनवीं फौज का ही जमादार टीकासिंह और तोपखाने का इंचार्ज मोहम्मदअली खाँ, जो कद का ठिगना होने के कारण नन्हे नवाब के नाम से प्रसिद्ध था, मौजूद थे। मोहम्मदअली कट्टर मुसलमान था और स्वयं को लखनऊ के शाही खानदान से बताता था।

सूबेदार गंगादीन हकलाता था। अधिक नहीं, कभी-कभी बातचीत में बड़े बेमौके उसकी जबान अटक जाती। गुस्से का तेज था, पर मन का साफ। सभी सिपाही जानते थे कि क्षणिक क्रोध के बाद वह ठंडा हो जाता है।

ब्रिगेडियर के आफिस में तैनात उस हिन्दुस्तानी सिपाही को गंगादीन वैठक में पेश किया, जिसने अज़ीमुल्ला खान पर लगे आरोप का खंडन र सही खवर दी थी।

नन्हे नवाव ने नाक के पास सिकुड़न पैदा कर सिपाही से पूछा, "क्यों मयाँ, क्या वात है ? साफ़-साफ वयान करो।"

"यह···हि···हि···हिन्दू है !" हकलाकर गंगादीन ने सिपाही का धार्मिक परिचय दिया।

"अच्छा, अच्छा। हिन्दू ही सही।" नन्हे नवाव ने पूछा, "क्या मामला था ?"

"हुजूर, मुंशीजी ने रिश्वत नहीं ली। उन पर तो जवरन ही दोप मढ़ दिया ब्रिगेडियर साहव ने।"

"कैसे ?" टीकासिंह ने पूछा।

"ऐसे ही।" सिपाही ने कहा, "ब्रिगेडियर साहव उन्हें नौकरी से निकालना चाहते थे।"

"क्यों ?" नन्हे साहव ने सवाल किया, "कोई वात तो होगी ?"

"हाँ, है न सा'व।" वह वोला, "मुंशीजी की पेशी हुई तो ब्रिगेडियर साहव ने पूछा, 'तुम देशी अफसरों के साथ क्यों घूमते हो ?' मुंशीजी वोले कि हमारी मित्रता है। ब्रिगेडियर साहव ने कहा, 'वे अफसर हैं। तुम मुंशी। तुम्हारी-उनकी कैसी मित्रता ?' "

"फिर मुंशीजी ने क्या कहा ?"

सिपाही ने उत्तर दिया, "मुंशीजी भी वड़े लट्ठ आदमी ! उन्होंने कहा, 'मित्रता में मुंशी और अफसरी का कैसा भेद ?' "

"फिर ?"

"फिर क्या ! आप तो जानते ही हैं, फिरंगी ब्रिगेडियर साहव कैसा गुस्सैल है। एकदम विगड़ गया। अंग्रेज़ी गाली देने लगा।"

"मुँह नहीं दवा दिया कमवख्त का !" नन्हे नवाव का नवावी खून खौला, "मुंशीजी जैसे प्यारे आदमी को गाली वकने लगा ? ज़ाहिल कहीं

का ! फिर क्या हुआ ?"

"हुआ क्या, सा'ब । मुंशीजी भी बिगड़े-दिल आदमी । उन्होंने साहब से कहा, 'गाली मत दो, सा'ब।' "

"अच्छा किया।"

"इस पर साहब खूब बिगड़ा होगा ?" सूबेदार दलभंजनसिंह ने पूछा।

"आगबबूला हो गया साहब।" सिपाही बोला, "कहने लगा, 'गेट-आउट !' और जाने कैसी-कैसी अंग्रेजी बोलता रहा। थोड़ी देर बाद उसने मुंशीजी को बरखास्त कर दिया।"

"मैं न कहता था…" टीकासिंह ने कहा, "नन्हे नवाब ! मुंशी बहुत भला आदमी था। बड़ा देशभगत। ये ब्रिगेडियर जो करें, सो कम है। बड़ा नंग आदमी है। बहुत ओछा।"

"बुरा हुआ।" नन्हे नवाब ने दुख व्यक्त किया।

"इससे भी बुरी बातें हैं, नवाब साहब।" टीकासिंह ने कहा, "तमाम लसकर को ईसाई बना देना चाहता है कमबख्त। उस दिन मुझसे चन्दन पुछवा लिया। बाईस साल से माथे पर चन्दन लगाता हूँ। पहले के अफसरों ने कभी कुछ न कहा। मगर यह सनकी…"

"सनकी नहीं है।" दलभंजन बोला, "वह यह सब-कुछ जान-बूझकर करता है। एक दिन जनरल्ल मरफी के साथ परेड में खड़ा था, तो मेरी बटालियन के उस्मान सिपाही को थोड़ी देर हो गई। मरफी साहब कुत्ते की तरह भौंकने लगा। बोला, 'गोली से उड़ा दूँगा, जो फिर कभी देर हुई।' इसने कहा, 'गोली से उड़ाने की क्या जरूरत है, इसको सूअर का माँस खिला देना।' उस्मान कटकर रह गया। भला यह भी कोई बात है !"

"फिरंगी ध…ध…धरम बिगाड़ना च…च…" सूबेदार गंगादीन कहना चाहता था। बड़ी कठिनाई से कह पाया, "चा…चाहते हैं !"

नन्हे नवाब सोच में पड़ गये। जमादार के माथे से चन्दन पुछवा

दिया ! उस्मान सिपाही को सूअर का माँस खिलाने की बात की ! ये तो सरासर मज़हब के खिलाफ बातें हैं ।

टीकासिंह कह रहा था, "न जाने मुंशी कहाँ घूमता होगा । अकारथ उसकी रोटी छीनी गई ।"

"उसके घर का पता मालूम है किसी को ?" नन्हे नवाब ने पूछा ।

"घर तो मालूम नहीं ।" टीकासिंह ने बतलाया, "मगर सुना है कि वह कलेक्टर साहब की लड़की को पढ़ाता है ।"

"बड़ा विद्वान आदमी है, भाई !" दलभंजनसिंह ने मुंशी की सराहना की, "फिरंगी की लड़की को पढ़ाना बड़ी बात है ।"

नन्हे नवाब ने सलाह दी, "मुंशीजी का हाल मालूम करो । बड़ी नाइन्साफी हुई है उनके साथ ।"

"वही तो," टीकासिंह ने कहा, "कल जाऊँगा, कलेक्टर साहब के बँगले पर । मगर सुना है कि फिरंगी सिपाही वहाँ लगे रहते हैं । बेकार ही किसी तरह का शक-शुबहा न पड़ जाए ?"

"मैं तुम्हारे साथ चलूँगा ।" नन्हे नवाब बोले, "कलेक्टर साहब की लड़की की नौकरानी मेरे मुहल्ले की ही है । शायद उससे पता चल जायेगा ।"

दूसरे दिन टीकासिंह और नन्हे नवाब परेड से निबटते ही कलेक्टर के यहाँ पहुँचे । नन्हे नवाब ने बँगले के फिरंगी सिपाही के ज़रिये नौकरानी को बुलवाया । रसूलन नाम था उसका । एक-दो इधर-उधर की गाँव-खेड़े की बातें हुई, फिर नन्हे नवाब ने काम की बात की । पूछा, "मुंशी अज़ीमुल्ला बड़े साहब की लड़की को पढ़ाते हैं, कहाँ रहते हैं ?"

रसूलन ने हँसकर जवाब दिया, "बिठूर में ।"

रसूलन ज़रा हँसोड़ स्वभाव की मनमौजी औरत थी । नन्हे नवाब को लगा कि मज़ाक कर रही है । उन्होंने भी उसी तरह हँसकर कहा, "तो

मुंशीजी बिठूर से अलादीन के चिराग में बैठकर यहाँ रोज पढ़ाने आते होंगे, क्यों ?"

"उन्होंने बेबी सा'ब को पढ़ाना बन्द कर दिया है। चिराग में बैठने का सवाल ही नहीं है।"

टीकासिंह ने पूछा, "तुम्हें उनका घर तो मालूम होगा ?"

"मैंने कहा न, वह बिठूर में रहते हैं।"

"मजाक मत करो, रसूलन बी !" नन्हे नवाब ने गम्भीरतापूर्वक पूछा "ठीक-ठीक बताओ, कहाँ रहते हैं ? हमें काम है।"

"मैं ठीक कह रही हूँ, नवाब साहब। वे बिठूर में ही रहते हैं। क्या काम है उनसे ?"

"बस, मिलना है।" टीकासिंह बोला, "उन्होंने दो रुपये उधार लिए थे, सो लेने हैं।"

"दो रुपये।" रसूलन जोर से हँसी। बोली, "मगर अब आपको मुंशी-जी मिलेंगे भी ? भूल से किसी के सामने यह कहना भी नहीं। कोई नहीं मानेगा कि आपको उनसे पैसे लेने हैं।"

टीकासिंह और नन्हे नवाब ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। साश्चर्य।

रसूलन ने कहा, "अब वे बड़े आदमी हो गए हैं।"

टीकासिंह मुसकराया। "किस होश में हो बीबी ! अभी चार रोज हुए उनकी नौकरी छूटी है।"

"कहीं सुलेमान का खज़ाना मिल गया होगा ?" नन्हे नवाब ने वैसे ही हँसकर कहा।

"हाँ, सुलेमान का खज़ाना ही मिल गया समझो।" रसूलन ने बताया, "अब वे पेशवा बहादुर के खास वज़ीर हो गए हैं। पेशवा की वज़ीरी सुलेमान का खज़ाना नहीं तो और क्या है, नवाब साहब ?"

दोनों ने पूर्ववत् विस्मय में एक-दूसरे के चेहरे देखे। नन्हे नवाब को लगा जैसे रसूलन किसी और के बारे में कह रही है। बोला, "मैं उनके बारे में कह रहा हूँ, वही जी, जो वहा सुन्दर-सा जवान है। मझोला-सा।"

"हाँ-हाँ, मैं समझती हूँ।" प्रौढ़ रसूलन के नवाव को आश्वस्त किया —"वही सजीला-सा, सुन्दर जवान जिसे खान साहव कहते हैं, अव पेशवा वहादुर का वजीर है।"

नन्हे नवाव को अव भी अविश्वास था, पर टीकासिंह ने विश्वास किया, "हो सकता है।"

वे वापस हुए। रास्ते में टीकासिंह ने नन्हे नवाव को समझाया, "विद्वान आदमी है, सव कुछ हो सकता है।" तय हुआ कि दो दिनों की छुट्टी लेकर विठूर चला जाये।

दोनों ने अलग-अलग ढंग से छुट्टी ली। टीकासिंह ने अपनी माँ की तवीयत खराव होने का वहाना कर देश जाने के लिए छुट्टी ली। नन्हे नवाव ने वड़ा ज़वर्दस्त वहाना किया। वोले, "मेरे भाई के साले का इन्त-काल हो गया है।"

छुट्टी स्वीकृत हुई। टीकासिंह ने नन्हे नवाव से एक दिन पूर्व हैड-क्वार्टर छोड़ा। नन्हे नवाव दूसरे दिन रवाना हुए। जिस तरह एक दिन का फर्क देकर वे दोनों चले थे, उसी तरह बिठूर पहुँचने में भी एक दिन का अन्तर पड़ा।

टीकासिंह पहले चला था। पहले पहुँचा।

दरवार के समय वह पहुँच चुका था, किन्तु उसने इस वीच खान से भेंट करना उचित नहीं समझा। मित्रतापूर्ण भेंट से कहीं अधिक उसका स्वार्थ था। अज़ीमुल्ला पेशवा के यहाँ पहुँच गया है। टीकासिंह के धर्म को अंग्रेज़ों की नौकरी में धक्का पहुँच रहा था। उसने सोचा, खान की सिफा-रिश से पेशवा के यहाँ नौकरी मिल सकती है। इस तरह धर्म की रक्षा भी होगी और आराम भी रहेगा।

पेशवा का दरवार समाप्त हुआ। टीकासिंह ग्रामीण वेशभूषा में आया था। चौकीदारों ने वाहर ही रोक दिया। महल के दरवार हॉल से वाहर जो लोग रहते थे, उन्हीं को वह देख पा रहा था। जिन सरदारों का रहना भीतर महल इलाके में था, उनके दर्शन भी न हो सकते थे। दरवार समाप्त

हो गया किन्तु वह अज़ीमुल्ला को न देख सका। मन में सन्देह भी था, कहीं रसूलन ने गलत खबर न दे दी हो। और वह खान की बजाय किसी और से जा मिले। इसीलिए बहुत सोच-समझकर पैर बढ़ाना चाहता था वह। दरबार बरखास्त होने के बाद भी देर तक बाहर ही रुका रहा वह। जब आने-जानेवालों का तांता कम हुआ, तब उसने महल के परकोटे के चौकीदार से पूछा, "सुना है कोई नये सरदार साहब दरबार में आ गए हैं ?"

"हाँ।" उसने बताया, "बड़े रोब-मर्तबे का आदमी है। गोरे-चिट्टे रंग का जवान।"

"उमर कितनी होगी ?"

"यही कोई अट्ठाईस-तीस की।"

"हिन्दू है या..."

"सब लोग 'खान साहब, खान साहब' कहते हैं। मेरे खयाल से मुसलमान है।"

टीकासिंह आश्वस्त हुआ। जरूर यह खान साहब अज़ीमुल्ला ही है। उसने कहा, "मैं उनसे मिलना चाहूँ तो अभी मिल सकता हूँ ?"

"मुझे मालूम नहीं है भाई कि उनसे भेंट-मिलाई का क्या जरिया है ?" चौकीदार ने नम्र स्वर में कहा।

"थोड़ी-सी तकलीफ उठा लो, भाई !" टीकासिंह अपनी गर्ज में उससे भी अधिक नम्र हो गया।

चौकीदार ने साथवाले पहरेदार से कहा, "मैं सूबेदार के पास लिये जाता हूँ इन्हें। तुम जरा खयाल रखना।" फिर बिना उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये, वह टीकासिंह को साथ लेकर महल के परकोटे में प्रवेश कर गया।

परकोटे के अन्दर दायीं ओर दरबार हॉल के पास पेशवा की फौज के सूबेदार ज्वालाप्रसाद की बैठक थी। टीकासिंह को सिपाही के साथ चलते हुए करीब आधा फर्लांग का चक्करदार रास्ता तय करना पड़ा। परकोटा काफी मजबूत बना हुआ था। बीचोंबीच पेशवा का महल। इधर-

उधर, छोटे-बड़े सरदारों, उसके निजी सेवकों और अधिकारियों की स्थिति और पद के अनुरूप छोटे-बड़े मकान थे। टीकासिंह इधर-उधर दृष्टि घुमा-फिराकर सब-कुछ देखता गया। पेशवा की शान अब भी कम न थी। टीकासिंह ने तीन अच्छी तोपें एक ओर रखी देखीं। महल के इर्द-गिर्द खूबसूरत बगीचा भी था जिसमें खुशबूदार फूल और बेलें थीं। बगीचे के बीचवाला रास्ता पार कर, टीकासिंह सूबेदार ज्वालाप्रसाद की बैठक तक पहुँचा। दरवाज़े पर खड़े प्रहरी के जरिये, टीकासिंह के साथ आये सैनिक ने सूचना भिजवायी। थोड़ी देर बाद प्रवेश की आज्ञा मिली। टीकासिंह भीतर पहुँचा।

सूबेदार ज्वालाप्रसाद उसी की तरह लम्बे-चौड़े डीलडौल का आदमी था। वह मराठाई सैनिक वेशभूषा में बड़ी चुस्ती के साथ बैठा हुआ था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं और चेहरे पर दृढ़ता।

टीकासिंह ने उसके सामने पहुँचते ही अभिवादन किया।

"क्या है?" भारी स्वर में ज्वालाप्रसाद ने प्रश्न किया।

"मुझे खान साहब से मिलना है, हुजूर।" टीकासिंह ने अपना असली परिचय नहीं दिया, "कानपुर में मैं उनके पड़ोस में रहता था।"

ज्वालाप्रसाद ने एक बार बड़ी तीखी, कुरेदती हुई दृष्टि से टीकासिंह को नीचे से ऊपर तक देखा, फिर सिपाही को आदेश दिया, "खान साहब के पास पहुँचा दो!"

टीकासिंह ने दुबारा प्रणाम किया और सिपाही के साथ बाहर आ गया। महल के दायीं ओर बंगले के बरामदे में बैठाकर सिपाही चला गया, "यहाँ प्रतीक्षा करो, खान साहब अभी आ जायेंगे।"

टीकासिंह बाहर ही एक कुर्सी पर बैठा रहा। उसे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कम्पनी की अपेक्षा पेशवा के यहाँ कड़ा अनुशासन है। उसने पहचाना कि पेशवाई शान जिन्दा है। लगातार प्रहारों के बावजूद इस उजड़े हुए वैभव में भी उसे बड़ा जीवन दीख रहा था। टीकासिंह को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ देर बाद ही अज़ीमुल्ला खाँ बाहर

आया। टीकासिंह ने देखा तो आश्चर्यपूर्वक देखता ही रह गया। भरोसा नहीं हो रहा था, यह वही अजीमुल्ला है, जो ब्रिगेडियर का मुंशी था और मोटे देशी कपड़े पहने हुए बरामदे में बैठा हुआ तिपाई पर कलम घिसा करता था!

अजीमुल्ला के साथ एक ठिगने कद का गठे बदनवाला आदमी था, जिसके गोल चेहरे पर दृढ़ता थी। उसकी नुकीली मूँछें उठी हुई थीं और सिर पर कासीनी सैनिक टोप था। चूँकि वह मराठा सैनिक वेशभूषा में था, अतः टीकासिंह को यह अनुमान करने देर न लगी कि वह पेशवा के यहाँ ही कोई बड़ा सैनिक अधिकारी है।

आश्चर्य में डूबा हुआ टीकासिंह अपने स्थान से उठकर उन दोनों को सम्मान देना भी भूल गया। उसकी दृष्टि सामने पर टिकी रही, जिसमें वह आश्चर्यजनक परिवर्तन देख रहा था। अजीमुल्ला महीन सफेद कपड़े का लम्बा मराठाई अंगरखा पहने हुए था, जिसके गले और बाँहों पर सोने-चाँदी का बारीक काम था। उसकी अँगुलियों में बेशकीमती हीरे-जवाहिरातों की अँगूठियाँ थीं और गले में कीमती हार। टीकासिंह की इच्छा हुई, एक बार चीखकर कहे, 'यह वह अजीमुल्ला नहीं है, जिसे कम्पनी सरकार के फौजी आफिस पर उसने डाँटना चाहा था।'

मुसकराते हुए अजीमुल्ला ने पूछा, "कहिए टीकासिंहजी, कैसे आना हुआ?" उसने अपनी आदत के अनुसार चुटकी ली, "आज तो मैंने आपका अपमान किया नहीं है।"

जमादार टीकासिंह अचकचाकर अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। उसे अपनी स्थिति का भान हुआ। कम्पनी के जमादार और पेशवा के दीवान में जमीन-आसमान का अन्तर है। कुछ संकोचपूर्वक उसने झुककर अभिवादन किया।

"बैठिए।" अजीमुल्ला ने स्वयं बैठते हुए कहा। साधारण व्यक्ति भी

उसके पास ही बैठा। टीकासिंह कहना चाहकर भी कुछ नहीं कह पा रहा था। खान ने अपने साथवाले व्यक्ति को उसका परिचय दिया, "जमादार टीकासिंह हैं ये। कम्पनी के छप्पनवें देशी रिसाले के जमादार।" फिर उसने टीकासिंह को परिचय दिया, "तात्या साहव। श्रीमंत पेशवा वहादुर के प्रधान सेनापति।"

टीकासिंह को अपने स्थान से दोवारा उठना पड़ा। प्रणाम किया। बैठ गया।

मुसकराकर तात्या ने उसका अभिवादन स्वीकार किया, किन्तु यह मुसकान वड़ी औपचारिक थी। ज़रा उभरी और चेहरे पर वही फौलादीपन फिर आ गया। टीकासिंह ने अनुभव किया कि तात्या को उससे मिलकर कोई विशेष हर्ष नहीं हुआ है।

खान ने पूछा, "अन्य मित्रों के क्या हाल हैं? सूबेदार दलभंजनसिंह, गंगादीन, नन्हे नवाव, सव कुशलपूर्वक हैं न?"

टीकासिंह को तात्या के सामने अपना रहस्य खुलना कुछ अच्छा नहीं लगा था। वड़ी ढीलेपन के साथ वोला, "हाँ, सव ठीक ही हैं।"

"आप जिस लुजलुजेपन से वात कर रहे हैं, उससे तो लगता है कि कुछ भी ठीक नहीं है। ब्रिगेडियर से कैसे सम्वन्ध हैं आप लोगों के?"

"ठीक ही हैं।"

अज़ीमुल्ला तुरन्त ही स्थिति समझ गया। टीकासिंह कुछ कहना चाहता है, पर तात्या की उपस्थिति में उसे संकोच है। हँसकर वोला, "स्पष्ट कहिए, तात्या साहव से छिपाव की आवश्यकता नहीं है। श्रीमन्त पेशवा वहादुर और फिरंगियों की मैत्री का तात्या साहव से कोई सम्वन्ध नहीं है।"

टीकासिंह ने एक तीखी दृष्टि तात्या के चेहरे पर फेंकी। लगा जैसे उसके होंठों के पास मुसकान की एक लकीर खिंच गई है।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "मन की वात तो एक वीमारी होती है। उसे इस तरह मत दवाइये कि भीतर ही आपको घोंट डाले। चुपचाप वीमारी वर्दाश्त

करते रहना मृत्यु को आमन्त्रण देना है।"

टीकासिंह के मन में तात्या के प्रति अब भी संकोच था। पेशवा और अंग्रेज़ों की मैत्री देश-भर की जानी-पहचानी बात थी और पेशवा के सेनापति के सामने अंग्रेज़ों की किसी भी तरह की आलोचना उसके लिए खतरनाक थी।

तात्या चुप था।

अज़ीमुल्ला बोला, "जमादार साहब, मेरे खयाल से सब आपकी ही तरह घुट रहे हैं।" उसने एक बार तात्या को देखा, फिर कहा, "क्या आपका विचार है कि जिन देशी राजाओं, नवाबों या जमींदारों से फिरंगियों की मित्रता है, उनके मन में घुटन नहीं है? यह घुटन और आग उनके मन में भी है, पर सत्ता और सैन्य शक्ति उनके पास नहीं है। लाचार वे चुप हैं, सिर झुकाए हुए हैं। फिरंगियों के मित्र हैं और मित्रता निबाहते रहते हैं।"

टीकासिंह बोला, "देशी राजा दबे हैं तो यह इनके भाग्य की बात है।"

"भाग्य की बात है!" तात्या ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "आप सिपाही होकर ऐसा कहते हैं?"

टीकासिंह को लगा जैसे वह ठिगने कद का भारी बदन वाला आदमी वेशभूषा में ही नहीं, स्वर से भी पूरी तरह सिपाही है।

तात्या कह रहा था, "सिपाही को भाग्यवादी नहीं होना चाहिए।" उसकी आवाज़ में जोश था—"भाग्यवादी वे लोग होते हैं, जमादार साहब, जिनके हाथों में शक्ति और हृदय में धड़कन नहीं होती। भाग्य की दुहाई वे दिया करते हैं, जिनके शरीर में रक्त का दौरा नहीं होता और जो जीवित होते हुए भी मृत होते हैं। एक सिपाही होकर भाग्य की दुहाई देना और अन्याय के सामने सिर झुकाते जाना तथा अपनी मातृभूमि को पराधीन देखकर भी ज़िन्दा रहना, संसार के सबसे बड़े अपराध हैं।" बात पूरी करते-करते उसके स्वर में उत्तेजना आ गई थी।

टीकासिंह को तात्या की सारी बात में स्वयं के प्रति धिक्कार का अनुभव हुआ। उसे लगा जैसे तात्या आवश्यकता से अधिक साहसी है।

और इतने अधिक साहसी व्यक्तियों को वह दम्भी मानता है। चिढ़कर बोला, "मगर तात्या साहब ! साहस और शक्ति के बावजूद भाग्य का अस्तित्व है। हमारे देश की पराधीनता भाग्य ही है। और भी बातें हैं, जहां हमें भाग्य का अस्तित्व मानना पड़ता है। अच्छा वक्ता या वकील हर सच्चाई को झुठला सकता है, क्योंकि साधारण जन की अपेक्षा उसके पास तर्क के तरीके अच्छे होते हैं।"

तात्या उत्तर देना चाहता था,पर बीच में ही अजीमुल्ला बोला,"मेरा खयाल है, टीकासिंह जी! तात्या साहब की बात आपको पसन्द नहीं आयी !" उसने टीकासिंह और तात्या दोनों के स्वरों की उग्रता अनुभव की थी। भय लगा कि कहीं वे सूक्ष्म परिचय में ही एक-दूसरे को गलत न समझ लें। "तात्या साहब शरीर और मन दोनों से ही पूरी तरह सैनिक हैं। वे हर विषय को पराक्रम और शौर्य से तोलने के आदी हैं। आवाज में भी आपने उनका यह स्वभाव-गुण समझा होगा ! विश्वास रखिये, जमादार साहब ! तात्या सच्चे मित्र, श्रेष्ठ सैनिक और पूर्ण आस्तिक हैं। भाग्य में वे भी विश्वास रखते हैं। अन्तर इतना ही है कि उनके साहस और भाग्य की तौल उन्नीस-बीस हो गई है।"

तात्या ने इस बीच स्वयं पर काबू कर लिया था। टीकासिंह का चेहरा देखा तो उसने भी अनुभव किया, जैसे तात्या की बात उसे रुची नहीं थी। आवाज़ में मिठास न होने की अपनी कमज़ोरी का उसे अहसास हुआ। यह पहला अवसर नहीं था, जब ऐसा हुआ। इसके पूर्व भी उसके ऐसे ही अक्खड़ स्वभाव ने अनेक मित्र और शुभचिन्तक खो दिए थे या सम्बन्धों में कटुता पैदा कर दी थी। उसने भूल-सुधार किया। स्वर में मधुरता लाने का असफल-सा प्रयास करते हुए कहा, "मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं था कि आपके स्वाभिमान को कोई ठेस पहुंचे। मैं केवल यही कहना चाहता था कि सैनिक को भाग्यवादी नहीं होना चाहिए। मेरी यह भी निश्चित धारणा है कि हमारे देश की पराधीनता का कारण भाग्य नहीं आपसी फूट, निम्न कोटि की स्वार्थपरता तथा आवश्यकता से अधिक

भाग्यवादी होकर पराक्रम-शक्ति में कमजोर हो जाना ही है।"

टीकासिंह को उसकी बात खली अवश्य थी, किन्तु उस सीमा तक नहीं जितनी गम्भीरता के साथ अजीमुल्ला और तात्या ने अनुभव किया। शिष्टतापूर्वक उसने कहा, "वैचारिक मतभेद कई तरह के हो सकते हैं। मुझे आपकी कोई बात बुरी नहीं लगी।"

अजीमुल्ला ने विषय-परिवर्तन किया, "इस वार्तालाप ने आपके परिचय को बहुत स्पष्टता दी है और शायद दोनों को एक-दूसरे पर विश्वास दिलाना अब शेष नहीं रहा।" उसने टीकासिंह के सामने पुराना प्रश्न रख दिया, "कानपुर के हाल सुनाइए। ब्रिगेडियर और देशी सिपाहियों के बीच क्या स्थिति है?"

"इसीलिए तो आपके पास आया हूँ।" तात्या की ओर से टीकासिंह निश्चिंत हो चुका था, "ब्रिगेडियर का व्यवहार सहनशक्ति से बाहर हो गया है। हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों में गहरा असंतोष है। ब्रिगेडियर धार्मिक मामलों में आड़े आता रहता है। आपको तो मालूम ही है उसने मेरा चन्दन पुछवा लिया था। बाद में भी अनेक हिन्दू सिपाहियों के साथ ऐसा ही हुआ। मैं चाहता हूँ कि फिरंगियों की नौकरी ही छोड़ दूँ। यदि आप सहायता करें तो मैं श्रीमन पेशवा सरकार की सेवा में अपना सारा जीवन दे सकता हूँ।"

तात्या ने अजीमुल्ला की ओर देखा— टीकासिंह के प्रस्ताव पर क्या सोच रहा है वह?

टीकासिंह बोला, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि श्रीमंत पेशवा बहादुर के प्रति पूर्णतः वफादार रहूँगा। मैं फिरंगियों की जमादारी छोड़-कर श्रीमंत की सिपाहीगीरी करने को तैयार हूँ। क्योंकि यहाँ मेरे धर्म का अपमान नहीं होगा।"

तात्या बोला, "आप विश्वास रखें। श्रीमंत पेशवा के यहाँ आपके साथ कभी अन्याय नहीं होगा। आप फिरंगी रिसाले में जमादार हैं, यहाँ भी जमादार ही रहेंगे। हमें आपकी वफादारी पर सन्देह नहीं है। जब

चाहें, श्रीमंत पेशवा बहादुर की सेवा में आ सकते हैं।"

टीकासिंह अभार-प्रदर्शन करना ही चाहता था, तभी अज़ीमुल्ला बोल उठा, "आप श्रीमंत पेशवा के पास आकर सेवा करना चाहते हैं, पर हमारी इच्छा है कि आप वहीं रहकर उनकी सेवा करें।"

टीकासिंह ने आश्चर्यपूर्वक अज़ीमुल्ला का चेहरा देखा—क्या कहना चाहता है वह ?

अज़ीमुल्ला ने कहा, "फिरंगियों के पास रहकर आप श्रीमंत पेशवा बहादुर की अधिक मूल्यवान सेवा कर सकेंगे।" एक रहस्यपूर्ण दृष्टि तात्या के चेहरे पर फेंककर उसने अपनी बात पूरी की, "अपने पद पर रहकर प्रयत्न कीजिए कि अपने साथियों के मन में सोयी हुई देश-प्रेम की भावना जगे, पराधीनता के प्रति घृणा पैदा हो, स्वाभिमान पुनरुज्जीवित हो। यह भी पेशवा बहादुर की ही सेवा होगी।"

टीकासिंह कुछ समझा, कुछ नहीं समझा।

अज़ीमुल्ला ने अपना स्थान छोड़ दिया, "फिलहाल आपके ठहरने की व्यवस्था करवाते हैं, बातें बाद में होंगी।"

दूसरे दिन नन्हे नवाब भी बिठूर आ पहुँचे।

९

कम्पनी सरकार का दूसरा खरीता पेशवा के पास पहुंचा।

कमिश्नर ने पढ़कर सुनाया। पेशवा के उस पत्र का उत्तर था, जिसमें बंद की गई पेंशन जारी करने के लिए कहा गया था। नाना को कलेक्टर हिलर्सडन और अंग्रेज़ों की मित्रता पर बहुत भरोसा था, पर सब व्यर्थ रहा। मन को बड़ी टेस लगी। इस खरीते के द्वारा गवर्नर जनरल ने उसकी अपीलें नामंजूर करके पूर्व-निर्णय को ही उचित ठहराया था और मोहर

के उपयोग पर भी उसने अपना आदेश बहाल रखा था।

बिठूर और कानपुर स्थित नाना के आश्रितो में घबराहट पैदा हो गई। पेशवा की पेंशन से उन सबके जीवन बंधे हुए थे।

बाला साहब और अजीमुल्ला को साथ लेकर नाना कानपुर पहुँचा। हिलर्सडन ने उनसे भेंट की। उसकी सलाह थी कि लन्दन में प्रिवी कौंसिल में अपील की जाय। इस अन्तिम रास्ते को भी पेशवा ने चुपचाप स्वीकार कर लिया और बिठूर लौट आया। अजीमुल्ला और बाला साहब कानपुर में ही रुक गए।

उन दिनों कानपुर के मुस्लिम क्षेत्रों में बड़ी धार्मिक हलचल थी। कुछ दिनों से शहर में कोई मौलवी आया हुआ था और हर मस्जिद में उसके भाषण चल रहे थे। इन भाषणों में हजारों की संख्या में मुस्लिम एकत्र होते। अजीमुल्ला ने बहुत चर्चा सुनी तो बाला साहब को साथ लेकर रुक गया। नन्हे नवाब से उसे मौलवी के बारे में विस्तृत जानकारी मिली थी।

मौलवी का पूरा नाम था, अहमदुल्लाह शाह। वह नवाब अवध का ताल्लुकेदार था। फैजाबाद जिले के पाँच बड़े गाँव उसकी जमींदारी में थे। नवाब की निष्क्रियता के परिणामस्वरूप जब से कम्पनी सरकार का दमनचक्र अवध के जमींदारों पर प्रारम्भ हुआ तब से मौलवी अहमदुल्लाह सारे देश, विशेषकर अवध और उत्तर प्रदेश के छोटे-बड़े नगरों में घूम-घूमकर इस्लाम पर व्याख्यान दे रहा था। उसके व्याख्यान इतने प्रभावशाली होते थे कि जनता हजारों की भीड़ में एकत्र होकर उन्हें सुनती थी और मन पर गहरा प्रभाव लेती थी।

नन्हे नवाब के साथ अजीमुल्ला और बालासाहब ने भी उसका भाषण सुना। सत्तर वर्ष का बूढ़ा मौलवी शरीर से गठीला और चुस्त था। इतनी आयु हो जाने पर भी न तो उसे चश्मे की जरूरत पड़ी थी, न चलने-फिरने में लकड़ी का सहारा लेना पड़ता था। उसके सिर और दाढ़ी के बाल सन-जैसे श्वेत थे। पलकों पर भी सफेदी आने लगी थी। पहली भेंट में ही

अज़ीमुल्ला भाँप गया कि मौलवी अहमदुल्लाह के व्याख्यानों का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार-भर नहीं है।

व्याख्यान के वाद भेंट हुई। अपने परिचय के पश्चात् अज़ीमुल्ला ने वाला साहव का परिचय दिया। वूढ़े मौलवी के चेहरे पर व्यंग्य की गहरी मुस्कान उभर आयी। वोला, "मैं समझ गया। आप लोग उन्हीं पेशवा वहादुर के आदमी हैं न, जिनकी पेंशन, ओहदा, गद्दी, खज़ाना सभी कुछ फिरंगियों ने छीन लिया है और जो अव भी 'फिरंगियों के हुज़ूर में एक शौहरपरस्त औरत की तरह वफादार हैं?"

वाला साहव को वुरा लगा। माथे पर सिलवटें डालकर चुप रह जाना पड़ा। उत्तर क्या दे? मौलवी ने कुछ गलत भी तो नहीं कहा है?

"जी!" अज़ीमुल्ला ने उतनी ही शैतानी के साथ उत्तर दिया, "पर जनाव यह जानते ही होंगे कि नालायक शौहर छोड़ देने का भी हमारे यहाँ दस्तूर है। औरत खुदा ने अजीव चीज़ वनाई है। उसे समझने में कभी-कभी खुद अल्लाह भी नाकामयाव हुआ है। फिर कोई आदमी, भले वह कोई मौलवी ही क्यों न हो, क्या मजाल कि उसे सही समझने का दावा करे!"

मौलवी ने अज़ीमुल्ला को देखा, कुछ पैनी दृष्टि से। उसने अनुभव किया जैसे सामने वाला आदमी व्याख्यान का साधारण श्रोता नहीं, अपितु व्याख्याता ही है।

वाला साहव खुश था। अज़ीमुल्ला ने अच्छा चुभता हुआ उत्तर दिया। कमवख्त मौलवी। पेशवा वहादुर को शौहरपरस्त औरत कहता है?

अज़ीमुल्ला ने कहा, "उस वफादार औरत ने वहुत शौहरपरस्ती की, मगर शौहर की नालाकियों में कोई फर्क नहीं पड़ा। आपका क्या खयाल है, अगर वह उस शौहर को तलाक दे दे?"

मौलवी इस तरह हार माननेवाला नहीं था। उसने फिर चुटकी ली, "यह उस औरत और उसके शौहर के वीच का मामला है। इसमें हम या आप क्या कर सकते हैं? हमारी और आपकी सलाह का क्या मतलव?"

"यू सर्वांप्रिये जनाब, कि मैं इस मामले में कुछ नहीं हूँ, मगर एक मौलवी सब कुछ है, जिसे अल्लाहताला ने निकाह पढ़वाने और तुड़वाने दोनों की ही ताकतें बख्शी हैं।"

इस बार मौलवी चुप हुआ।

अजीमुल्ला ने कहा, "जनाबआला, आपकी तकरीर मैंने सुनी है। वह मजहबी नहीं है, सिर्फ सियासती है। जिस तरह आप उसका इस्तेमाल करना चाहते हैं, वह आप हमसे बेहतर ही समझते हैं।"

मौलवी चुप रहा, पर सशंक।

अजीमुल्ला कहता गया, "हम चाहते हैं कि आपके उस नेक काम में हमारा भी कुछ हिस्सा रहे।"

मौलवी की तीखी दृष्टि क्रमवार नन्हे नवाब और बाला साहब के चेहरों से घूमती हुई अजीमुल्ला के चेहरे पर आ ठहरी।

अजीमुल्ला ने बात स्पष्ट की, 'आप यह जानते ही हैं कि श्रीमन्त पेशवा बहादुर के साथ भी वही अन्याय हुआ है जो बादशाह बहादुरशाह, रानी लक्ष्मीबाई या नागपुर के भोसलों के साथ हुआ है। फिरंगी हमारी धरती और राज ही नहीं छीन रहे हैं बल्कि हमारे मजहब से भी दगा कर रहे हैं। पंजाब, बिहार और दक्षिण के तमाम हिस्सों में ईसाई मदरसे खोले गए हैं, जहाँ हिन्दुस्तानियों को ईसाई मजहब की तालीम दी जाती है। ईसाई हो जाने पर ऊँचे ओहदे और बड़ी तनख्वाहें सरकार बख्शती है। देशी राजाओं को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया गया है और देशी रियासतों में भी ईसाइयत फैलाने की कोशिशें जारी हैं।"

"फिर ?" मौलवी इतनी जल्दी विश्वास करके मन की बातें उगल जानेवाला आदमी नहीं था।

अजीमुल्ला और स्पष्ट हुआ, "श्रीमन्त पेशवा बहादुर को आपकी मदद की आवश्यकता है।"

"कैसी मदद ?"

"सुना है कि अवध में नवाब साहब से लेकर रियाया तक

गहरा असर है। अगर कम्पनी के अवध वाले देशी रिसालों की मदद श्रीमंत पेशवा बहादुर को मिली तो काफी हद तक आपके इरादे कामयाब हो सकते हैं।"

"मेरे इरादे ?" मौलवी अनजान बन गया, "मैं आपकी बात का मतलब नहीं समझा ?"

"वही, जो हमारे इरादे हैं।" अज़ीमुल्ला ने उसे कुरेदा, "यह सही है कि श्रीमंत पेशवा और कम्पनी सरकार की दोस्ती काफी मशहूर है, किन्तु हाल में कम्पनी सरकार ने पेंशन की तमाम दरख्वास्तें नामंजूर कर श्रीमंत पेशवा को माली नुकसान और तकलीफ पहुंचायी है, और अब हमने भी एक जबरदस्त विरोध की ज़रूरत महसूस की है। एतबार कीजिए, मौलवी साहब ! अब पेशवा बहादुर और कम्पनी के बीच पहले-जैसी बात नहीं रही है।"

मौलवी चुप था।

अज़ीमुल्ला ने उसे तरह-तरह से विश्वास दिलाया। काफी देर बाद उसने स्वीकार किया कि वह भी वही सब चाहता है, जो अज़ीमुल्ला चाहता है।

कुछ देर इधर-उधर की चर्चा करने के बाद अज़ीमुल्ला और बाला साहब, मौलवी अहमदुल्लाह शाह को विठूर आने का निमंन्त्रण देकर वहाँ से विदा हुए।

लौटते समय अज़ीमुल्ला ने नन्हे नवाब के जरिये टीकासिंह और कानपुर के देशी रिसालों के चुनिंदा हिन्दुस्तानी अफसरों को भी विठूर आने का संदेशा भिजवा दिया।

तीन दिन से विठूर में दरबार नहीं लगा था। जब से पेंशन की अपीलें अस्वीकृत हुई तब से पेशवा का मन ठीक नहीं था। अंग्रेजों की मैत्री से उसका विश्वास उठ चुका था। अन्याय से असंतोष भी हुआ था, पर यह

असंतोष उस समय तक विद्रोह की सीमा तक नहीं पहुंचा जब तक कि अपीलों की लगातार अस्वीकृति ने उसे बाध्य न कर दिया। पर नाना के मन में संकोच अब भी था। उसे स्वयं की तथा देशी राजाओं की शक्ति का भली-भाँति ज्ञान था।

तात्या और मोरोपंत झाँसी गये हुए थे। तीन दिन बाद तात्या अकेला लौटा। मोरोपंत बेटी के पास ही रह गये।

पेशवा की अपीलों की अस्वीकृति का समाचार तात्या को मार्ग में ही मिल चुका था। बिठूर पहुँचते ही पेशवा से पूर्व अज़ीमुल्ला से उसकी भेंट हुई। अज़ीमुल्ला ने पेशवा की मन स्थिति बतलाते हुए अपना विचार प्रकट किया, "यही मौका है, जब पेशवा बहादुर का मन पूरी तरह बदला जा सकता है।" उसने मौलवी से भेंट की सारी कथा कह सुनाई। यह भी बताया कि मौलवी बिठूर आनेवाला है। उससे पूर्व पेशवा के सामने भूमिका तैयार कर देना आवश्यक है।

मध्याह्न को जब पेशवा आराम से निवृत्त हो चुका तब तात्या और अज़ीमुल्ला भेंट के लिए पहुँचे।

नाना अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक उदास और चिन्तित था। वह एक पलंगनुमा झूले पर बैठा हुआ था। लम्बकी हुक्के की लम्बी निगाली उसके हाथ में थी, और पास ही ठिगने कद का एक वृद्ध अंग्रेज़ बैठा हुआ, उसे अखबार पढ़कर सुना रहा था। टाड नामक यह अंग्रेज़ उसे प्रतिदिन समाचारपत्र पढ़कर सुनाया करता था। चूँकि पेशवा अंग्रेज़ी न जानता था, अतः टाड समाचार पढ़ने के बाद उसका अनुवाद करता था।

तात्या और अज़ीमुल्ला के पहुँचते ही पेशवा ने टाड को जाने का आदेश दिया और उसके जाते ही सबसे पहला सवाल किया, "मनू कैसी है?"

"ठीक है, किन्तु अन्याय के प्रतिकार के लिए वे भी व्यग्र हैं।"

"क्या मतलब?"

तात्या ने बतलाया, "अंग्रेज़ों के विरुद्ध उनके मन में आग।"

हाल में उन्होंने अपने पुत्र दामोदरराव के जनेऊ का विचार किया है। स्वर्गीय महाराजा गंगाधरराव की निजी सम्पत्ति के छह लाख रुपये अंग्रेजों के पास दामोदरराव के अमानत-खाते जमा हैं। अब जनेऊ के लिए जरूरत हुई तो उन्होंने एक लाख की माँग की। झाँसी के अंग्रेज कमिश्नर गोर्डन ने जवाब दिया कि रुपया तो मिल सकता है, मगर बालिग होने पर यदि दामोदरराव ने पूरे रुपये की माँग की तो कम्पनी सरकार को गांठ से देना पड़ेगा इसलिए झाँसी शहर के ही चार प्रतिष्ठित और धनाढ्य नागरिकों की जमानत महारानी दिला दें। इस घटना से महारानी के मन को बहुत ठेस पहुंची है। स्वयं के रुपये के लिए जमानत देना कितनी विचित्र बात है?"

"यह अन्याय है!" नाना ने कहा।

तात्या बोला, "रानी ही नहीं, इस घटना से झाँसी की जनता भी बहुत दुखी है, और स्थिति ऐसी जटिल होती जा रही है कि फिरंगियों को किसी भी दिन झाँसी छोड़नी पड़ेगी। झाँसी की जनता तो रियासत में कम्पनी का अधिकार होते ही बहुत उत्तेजित हो चुकी थी, पर महारानी ने कहा, 'अभी उपयुक्त समय नहीं है।' अब इस जनेऊ वाली घटना ने तो जनसाधारण की उत्तेजना को चरम पर पहुँचा दिया है। रानी स्वयं भी फिरंगियों से झाँसी की स्वतंत्रता के लिए कृत-संकल्प हैं।" कुछ रुककर उसने अजीमुल्ला खाँ पर एक दृष्टि फेंकी, फिर बोला, "रानी से इस बार की भेंट में मुझे अनुभव हुआ है कि किसी भी क्षण फिरंगियों से उनकी ठन सकती है। उनकी बातचीत से मुझे ऐसा लगता था जैसे वे तैयारी कर रही हैं।"

नाना ने कहा, "मनू को फिरंगियों की शक्ति का अनुमान नहीं है। इस तरह शीघ्रता में कोई कदम उठा देना केवल बचपना होगा।" पेशवा को अंग्रेज़ों की शक्ति से भय था और सम्भवतः मैत्री की बुनियादी लाचारी भी यही थी।

नाना की बात सुनकर तात्या और अजीमुल्ला दोनों ने ही विस्मय

और दुख से एक-दूसरे के चेहरे देखे। तात्या कुछ कहे, इसके पूर्व ही अजीमुल्ला बोल उठा, "श्रीमन्त पेशवा बहादुर का विचार सही है। फिरंगियों की शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है। लगभग सभी देशी राजा उनके हाथ की कठपुतली हैं।"

अजीमुल्ला का समर्थन नाना को अच्छा लगा। उत्साहित होकर बोला, "मनू को आपने देखा नहीं है, खान साहब। बड़ी छोटी आयु में उसे वैधव्य का अपार दुख सहना पड़ा है। हमें उससे बहुत स्नेह है। छोटी बहन की तरह मानते हैं हम उसे। बड़ी हठीली है वह। ईश्वर न करे कहीं वह अपनी हठ के कारण फिरंगियों से जूझ पड़े। नासमझी में फिरंगियों की शक्ति का उचित अनुमान न कर सकी तो उसके परिणाम बहुत गलत होंगे।"

"यही तो मैं निवेदन कर रहा हूं, श्रीमन!" अजीमुल्ला ने पुनः समर्थन किया, "फिरंगियों के पास अपार शक्ति है। सिन्धिया और होल्कर जैसे शक्तिशाली देशी राजा उनके साथ हैं। ऐसी स्थिति में फिरंगियों से खुल्लमखुल्ला विरोध करना नासमझी के सिवा और कुछ नहीं है।"

आश्चर्यपूर्वक तात्या ने अजीमुल्ला की ओर देखा, समझ नहीं पा रहा था कि यह कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है।

अजीमुल्ला ने कहा, "महारानी साहिबा को समझाना पड़ेगा, सरकार! शीघ्रता में कोई भी कदम उठा लेना एक गम्भीर खतरा मोल ले लेना है। फिरंगियों से टकराने के पहले उनके बराबर शक्ति पैदा करना आवश्यक है।"

"अवश्य!" पेशवा गम्भीरतापूर्वक बोला।

"जी!" अजीमुल्ला ने कहा, "वैसे महारानीजी युद्ध की शीघ्रता न कर संगठन की ओर बढ़ें तो उचित हो, क्योंकि यह मौका पूरी तरह उनके विचारों के अनुरूप है।" मतलब की बात प्रारम्भ करने से पूर्व अजीमुल्ला ने अपनी दृष्टि नाना के चेहरे पर गड़ा दी, "आज देश में हर तरफ फिरंगियों के विरुद्ध वातावरण है। देशी राजाओं और रानियों के साथ

अन्याय और धोखे हुए हैं, हो रहे हैं, पर संगठन और शक्ति के अभाव में सब दवे हुए हैं, चुप हैं। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों के वीच मुगल संम्राट्•के साथ फिरंगियों ने जो चालें खेली हैं, वे जनता से अप्रकट नहीं हैं, तिस पर फिरंगी चाहते हैं कि वुजुर्ग वादशाह सलामत दिल्ली का अपना पुश्तैनी किला छोड़कर मुंगेर के किले में रहने चले जाएँ। श्रीमंत पेशवा वहादुर के साथ जो कुछ हुआ है, उससे दक्षिण की जनता बहुत क्षुब्ध है, पर जो वात सभी जगह एक साथ लागू है, वह यह कि संगठन का अभाव है। फिरंगियों के विरुद्ध वहुत असन्तोप है, पर फटे दूध के कतरों की तरह इधर-उधर छिटका हुआ है। यदि यह फटा दूध फेंटकर कतरे मिला दिये जायँ तो ऐसी शक्ति बन सकती है जो फिरंगियों को सात समुंदर पार धकेल दे।"

नाना वहुत ध्यानपूर्वक सुनता गया। उसे अजीमुल्ला की वात में दूरदर्शिता और सार लगा।

और उत्तेजना-भरे स्वर में कहा,"फिरंगी अपनी सीमा से आगे जा रहे हैं। हिन्दू हो या मुसलमान, कोई भी यह धार्मिक अपमान बर्दाश्त नहीं करेगा।"

"यही तो, श्रीमन्त !" तात्या ने फौरन कहा। उसे इस तरह पेशवा का घबराकर उत्तेजित हो जाना अच्छा लगा था। लगता था जैसे नाना के मन में जो परिवर्तन वे चाहते हैं, उसका क्षण पास आ गया है। उसने कहा, "इन कारतूसों के कारण जनता तो जनता, कम्पनी सरकार के देशी रिसालों ने भी यह समझ लिया है कि वे पूरी तरह धार्मिक गुलाम बनाये जाएँगे। देशी सिपाहियों में इन कारतूसों को लेकर चीख-चिल्लाहट मची हुई है। वे फिरंगियों की इस हरकत से घबरा गए हैं और किसी भी शर्त पर उन कारतूसों के उपयोग के लिए तैयार नहीं हैं।"

"तात्या साहब !"अजीमुल्ला ने बीच में ही कहा, "कानपुर में तो यह हालत है कि हिन्दू-मुस्लिम सिपाही नौकरियाँ छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। वे मरने-मारने पर आमादा हैं, मगर उन कारतूसों के इस्तेमाल के लिए तैयार नहीं हैं।" अजीमुल्ला सरासर झूठ कह गया, हालांकि कानपुर के सिपाहियों में उन कारतूसों की अब तक केवल चर्चा ही थी, कारतूस वहाँ आये ही न थे।

नाना चुप था, किन्तु बहुत गम्भीर। ऐसे, जैसे उसी के धर्म-परिवर्तन का खतरा आया हो।

अजीमुल्ला बोला, "श्रीमन्त पेशवा से मैं यही निवेदन करूँगा कि वे महारानी लक्ष्मीबाई को फिलहाल युद्ध का इरादा छोड़कर संगठन करने की सलाह दें। फिरंगियों के विरुद्ध जो वातावरण है, उसका लाभ उठाने का यही उपयुक्त अवसर है।"

नाना ने देर की चुप्पी के पश्चात् मौन तोड़ा। बड़े धीमे स्वर में बोला, "खान साहब, फिरंगियों के विरुद्ध बन गये इस वातावरण का लाभ क्या हम नहीं उठा सकते ?"

अजीमुल्ला अपनी सफलता पर प्रसन्न था, किन्तु उसने स्वयं पर काबू किया। नाना के प्रश्न के उत्तर में उसने चेहरे पर गहन गम्भीरता के भाव

प्रकट किये। कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, "सब कुछ सम्भव है श्रीमन्त, कुछ प्रयत्न करना होगा।"

"फिर देर क्या है, प्रयत्न प्रारम्भ कर दीजिए।" तात्या ने कहा।

"किन्तु श्रीमन्त के आदेश हैं कि इंग्लिस्तान जाकर मुझे पेंशन के लिए प्रयत्न करना चाहिए।"

पेशवा बोला, "इससे क्या होता है ? आप इंग्लिस्तान पहुँचकर पेंशन के लिए प्रयत्नशील रहें। तात्या और बाला साहब यहाँ की स्थिति बनाये रखेंगे।"

अज़ीमुल्ला चुप हो गया।

"तात्या !" पेशवा ने आदेश दिया, "मनू के पास सन्देशा भिजवा दो कि शीघ्रता न करे। उससे यह भी कहलवा देना कि हमारी ओर से उसे हर तरह की सहायता मिलेगी।"

"जो आज्ञा।" तात्या रवाना हुआ। अज़ीमुल्ला भी साथ ही उठा। इसके पूर्व नाना के स्वर में इतनी बुलन्दी उन्होंने कभी नहीं पायी थी। लौटते समय उन्हें बाला साहब मिल गया। दोनों ने पेशवा के परिवर्तन का समाचार उसे दिया। सुनकर बाला साहब प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "आज ही तो मौलवी आने वाले हैं। बैठक कहाँ होगी ?"

अज़ीमुल्ला ने उत्तर दिया, "वैसे बैठक की व्यवस्था तो मैंने अपने ही यहाँ रखी थी, किन्तु अब पेशवा बहादुर के यहाँ होगी।"

"श्रीमन्त को समाचार दिया है ?" बाला साहब ने प्रश्न किया।

"नहीं।" तात्या ने कहा, "आप दे दीजिएगा।"

"ठीक है।" बाला साहब ने कहा। फिर पूछा, "बैठक में कौन-कौन आ रहा है ?"

"अवध वाले मौलवी, देशी रिशालों के दो-तीन अफसर और काजी वसीउद्दीन।" अज़ीमुल्ला ने बताया।

"ये काजी कौन हैं ?"

"अवध वाले मौलवी कानपुर में उन्हीं के यहाँ ठहरे हैं।"

"विश्वासपात्र है ?"

"विश्वासपात्र क्यों न होंगे ?" अजीमुल्ला ने कहा, "मौलवी जैसा खतरनाक आदमी जिसके घर पर ठहरकर कम्पनी सरकार के विरुद्ध षड्-यन्त्र कर रहा हो, वह अविश्वसनीय कैसे हो सकता है ?"

बाला साहब चला गया।

सायंकाल ही मौलवी अहमदुल्लाह कानपुर से बिठूर आ गया। उसके साथ काजी सर्फ़उद्दीन भी था। दोनों के ठहरने की व्यवस्था अजीमुल्ला के यहां थी।

रात को बैठक प्रारम्भ हुई। मौलवी को पेशवा के विशेष कक्ष में, जहां वार्तालाप की व्यवस्था रखी गई थी, लाया गया। नाना, तात्या, बाला साहब और अजीमुल्ला के अलावा कानपुर के देशी रिसालों के लगभग सभी प्रमुख हिन्दुस्तानी अफसर जमा थे। वार्तालाप प्रारम्भ होने से पूर्व परिचय हुआ। तब तक पेशवा का विश्वस्त सेवक और सूबेदार, ज्वालाप्रसाद भी आ गया।

अजीमुल्ला ने पहले मौलवी की सराहना की, फिर अंग्रेजों के राज-नैतिक अत्याचार और धार्मिक हरकतों पर एक छोटा-सा व्याख्यान दिया। बोला, "हम अपने ही घर में कैद हैं। न तो हमारी धार्मिक मान्यताओं का ही कोई ख्याल किया जाता है और न हमें राजनैतिक महत्त्व ही मिल पाता है। गोरों के लिए कोई कानून या अदालत भी नहीं है, जबकि काला आदमी निर्दोष होते हुए भी अपराधी होता है। देशी राज लगभग समाप्त हो गए और उनके साथ ही हमारी अपनी प्रभुता-सम्पन्नता समाप्त हो गई। मन्दिरों, मस्जिदों की उपेक्षा हो रही है, और गिरजों का निर्माण किया जा रहा है। हिन्दुस्तानियों को ऊँचे ओहदे नहीं मिलते और यदि मिलते हैं तो ईसाई बनने की शर्त रखी जाती है। देशी फौजों में भी ऐसे कारतूस बाँटे जा रहे हैं, जिनमें गाय और सूअर की चर्बी मिली हुई है, और जिन्हें चलाने

से पहले सिपाहियों को उन्हें मुंह से तोड़ना पड़ता है। इस तरह फिरंगी, हिन्दू और मुसलमान, दोनों को धार्मिक रूप से पतित करना चाहते हैं।" इस छोटे-से भाषण के बाद अन्त में उसने जन-असन्तोष और सैनिक हलचलों का वर्णन किया। बोला, "सभी देशी रिसालों ने अब यह सच पहचान लिया है और सभी एकमत होकर मुल्क से विदेशियों को भगा देना चाहते हैं। ऐसे समय पर यदि संगठित सशस्त्र क्रान्ति हो जाय तो फिरंगी हिन्दुस्तान में एक क्षण भी न ठहर सकेंगे।"

बाला साहब ने कहा, "फिरंगी गए तो यहाँ देशी राजाओं का शासन होगा और देश में फिर खुशहाली आएगी। प्रजा की सामाजिक-धार्मिक उन्नति होगी।"

अज़ीमुल्ला ने बाला साहब को समर्थन तो दिया, पर उसे उसकी बात रुचि नहीं। लगा, जैसे आजादी की लड़ाई के लिए लोग संगठन नहीं कर रहे हैं, बल्कि पेंशन या सत्ता-प्राप्ति का मोह उन्हें संगठित करवा रहा है।

प्रारम्भ में नाना चुपचाप सुनता रहा। जब तात्या ने संगठन-कार्य की जानकारी दी तब वह प्रसन्न हुआ। इतना कुछ हो रहा है, इससे वह अब तक अनभिज्ञ था ? उसे अंग्रेज मित्रों से पेंशन-प्राप्ति की चेष्टाओं और महल के जीवन के अलावा इस स्थिति का जरा भी ज्ञान न था।

इधर-उधर की राजनैतिक स्थितियों पर बातचीत के बाद मौलवी अहमदुल्लाह ने अब तक की जानकारी दी। बोला, "आप लोगों को नवाब अवध और वहाँ के अमीर-उमरों, ताल्लुकेदारों के साथ हुई नाइन्साफी की खूब जानकारी होगी…"

"हाँ।" तात्या ने कहा, "वहाँ के नवाब वाजिदअली शाह भी तो बेहद ऐयाश आदमी हैं, उन्हें प्रजा और हुकूमत की फिक्र ही नहीं है। सुना है कि फिरंगियों ने उन्हें पूरी तरह गुलाम बना रखा है।"

मौलवी गम्भीर हो गया। कहने लगा, "हर जगह मुझे नवाब अवध के बारे में ऐसी ही गलतफ़हमियाँ सुनने को मिली हैं। आश्चर्य है कि तमाम मुल्क में जनाब वाजिदअली शाह की यह बदनामी कैसे फैली ? हाल ही में

मैं पटना, बनारस, आगरा, मेरठ जहाँ भी गया हूँ, यही सब सुनने को मिला है। लोगों के मन में यह बात बड़े पुख्ता तौर पर बिठाई गयी है कि नवाब अवध ऐयाश और लापरवाह आदमी हैं। इसीलिए कम्पनी सरकार अवध के सियासी मामलों में दिलचस्पी लेकर शासन अपने हाथ में लेने को लाचार हुई है।"

आश्चर्यचकित रह गए सभी। नवाब अवध के बारे में मौलवी औरों से बिलकुल अलग कह रहा था···

मौलवी कहे गया, "नवाब साहब और अवध की हालत और लोगों की बनिस्बत हम जैसे अमीर या ताल्लुकेदार अच्छी तरह समझ सकते हैं, क्योंकि हम लोग हमेशा उनके साथ रहे हैं। अभी ग्यारह साल पहले १८४७ में नवाब साहब ने अवध का तख्त रौनक फरमाया है। नौजवान आदमी, जोशीला मिजाज। तख्त पर बैठते ही, उन्होंने राजकाज और सियासी मामलों में पूरी तरह अपना मन लगा दिया था। अलत सुबू ही वे कवायद के मैदान में पहुँच जाते थे और खुद पलटन का मुआयना करते। रियाया को ठीक तरह इन्साफ देते। गरज यह कि तमाम रियाया में नये नवाब के लिए बहुत इज्जत पैदा हो गई। पलटन में चुस्ती आयी। कवायद के लिए नवाब साहब खुद बहुत मुस्तैद थे। किसी पलटन को अगर मैदान पर आने में देर हो जाती तो उससे दो हजार रुपया जुर्माना वसूल किया जाता था। एक बार खुद नवाब साहब ही देर से तशरीफ लाये तो कानून की रूह से उन्होंने खुद को गुनहगार माना और फौरन दो हजार रुपया जुर्माना अदा किया···" बोलते-बोलते बूढ़ा मौलवी एक क्षण साँस लेने को थमा "मगर फिरंगियों को नवाब की मुस्तैदी कैसे बर्दाश्त होती ? ये तो एक जमाने से अवध की रंगीन धरती निगलने का इरादा लिए बैठे हैं। नवाब वाजिदअली शाह के बारे में हर खबर लॉर्ड डलहौजी तक पहुँच रही थी। सन् '५१ में लाट साहब ने हुक्म दिया कि नवाब साहब की इस तरह की हरकतें कम्पनी सरकार को षड्यंत्र लगती हैं, इसलिए नवाब साहब कवायद में जाना बन्द कर दें। इसके अलावा नवाब के इधर-उधर आने-जाने पर भी सख्त पाबंदी

लगा दी गई। किसी नजरबन्द कैदी की तरह नवाब वाजिदअली शाह अपने महल में पड़े रहने लगे। आप ही सोचिए, एक नौजवान आदमी बन्द महल में घुटना कैसे बर्दाश्त कर सकता है? लाचार नवाब को वक्त काटने के लिए शराब और औरत का सहारा लेना पड़ा, पर वह भी इतना नहीं, जितना मैं जगह-जगह पर सुन रहा हूँ। नापाक गटर में धक्का देकर नवाब को गिरा देने के बाद अब फिरंगी उन पर तोहमत लगाते हैं। इस तरह बदनामी करने का मतलब सिर्फ यही है कि नवाब रियाया की नजरों में गिरते जायँ। किसी की हमदर्दी उनके साथ न रहे और फिर एक दिन फिरंगी उन्हें नाक़ाबिल कहकर अवध की हसीन सरजमीं निगल जायँ…"

अज़ीमुल्ला ने पूछा, "क्या अवध की रियाया भी नवाब के बारे में ऐसा ही सोचती है?"

"अवध की रियाया अपने नवाब को फिरंगियों से बेहतर समझती है। उससे फिरंगियों की कोई करतूत नहीं छिपी है। किस तरह फिरंगी आये, नवाब पर अपना चक्कर डाला, उनकी पलटनें तोड़ीं, नवाब साहब के निजी मामलात में पैर अड़ाये और आज नवाब की गद्दी हथिया लेने की फिराक में हैं। सारे मुल्क की तरह अवध के सीने में भी आग सुलग रही है। अभी खान साहब ने कहा कि इस आग को भड़का देने भर की देर है, फिरंगियों को सारे हिन्दुस्तान में कहीं जगह नहीं मिलेगी। मुझे यकीन है कि अवध में भी इस आग को भड़काने भर की देर है। वहाँ के देशी रिसाले पूरी तरह तैयार हैं। अमीर-उमरे और ताल्लुकेदार माकूल वक्त का इंतजार कर रहे हैं, क्योंकि उनके साथ भी फिरंगियों ने अच्छा बर्ताव नहीं किया। मेरी तरह सैकड़ों मौलवी और हिन्दू पंडित मज़हब के बचाव के लिए गाँव-गाँव घूम-फिरकर लोगों से बातचीत कर रहे हैं। उन्हें जबरदस्त कामयाबी के इशारे भी मिले हैं। कुछ जगहों पर तो फौजी तैयारियाँ भी चल पड़ी हैं। अभी हाल में जब मैं बिहार पहुँचा, तो वहाँ जगदीशपुर के एक बूढ़े जमींदार कुँवरसिंह से मेरी मुलाकात हुई। उसके साथ भी फिरंगियों ने नाइंसाफी की है और वह भी पूरी तरह हमारा साथ देने को

तैयार है। बिहार का एक बड़ा जमींदार होने के नाते वहाँ के सभी छुट-पुट जमींदारों, जागीरदारों पर उसका असर है। वह कहता है कि उसके पास इतनी ताकत है कि सारे बिहार से फिरंगियों को खदेड़कर वह आसानी से कब्ज़ा कर लेगा।"

मंत्रमुग्ध पेशवा मौलवी का भाषण सुनता रहा। देश में इतनी बड़ी उथल-पुथल इस गुप्त तरीके पर होने जा रही थी और वह एकदम अनभिज्ञ रहा? उसे आश्चर्य से अधिक अपनी लापरवाही पर दुख हुआ। मौलवी ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, "अवध से भागकर फिरंगी इधर से मध्यप्रान्त की ओर बढ़ना चाहेंगे। यदि श्रीमन्त पेशवा बहादुर और आप लोग···" उसने टीकासिंह आदि की तरफ संकेत किया, "ज़रा भी साथ दे दें तो उन्हें बचाव के लिए कोई जगह नहीं मिलेगी!"

पेशवा इस सारे वार्तालाप से बहुत आशान्वित हो उठा था, बोला, "यह सब ठीक है, किन्तु दिल्ली···"

"दिल्ली की आप फिक्र न करें।" मौलवी ने कहा, "मुगल बादशाह के साथ तो सभी राजाओं की बनिस्बत ज्यादा धोखा हुआ है। वहाँ की रियाया और फौजों की हालत सभी जगह से अधिक जोशदार है। मैं हाल में उधर गया था, काफी उम्मीदें मिली हैं। अब दोबारा जा रहा हूँ।"

"ठीक है।" तात्या ने मौलवी को विश्वास दिलाया, "अवध से दोगुना काम करके बतायेंगे। वक्त आने दीजिए।" फिर उसने टीकासिंह से पूछा, "कानपुर छावनी में फिरंगियों के पास शक्ति है।"

"कुछ नहीं है।" उत्तर टीकासिंह ने नहीं, सूबेदार दलभंजनसिंह ने दिया। उसे लगा जैसे तात्या कानपुर वालों को चुनौती दे रहा है। सन्देह प्रकट कर रहा है। बोला, "कानपुर छावनी में फिरंगियों के पास शक्ति थी अवश्य, किन्तु अब नहीं है।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि छावनी की सारी शक्ति तो देसी सिपाही ही हैं। फिरंगियों की तो केवल डेढ़ पलटन है। बाकी फौजें और एक घुड़सवार

पलटन देशी है। रहा तोपखाना, सो वह नन्हे नवाव के अधिकार में है। सारे तोपची देशी हैं, फिरंगियों को पानी तक नहीं मिलेगा !"

मौलवी और अज़ीमुल्ला एक-दूसरे की ओर देखकर मुसकराये।

"श्रीमंत पेशवा की अपनी शक्ति भी अभी काफी है। कानपुर लेने में अधिक-से-अधिक एक दिन लगेगा।" तात्या ने कहा, "उधर झाँसी और ग्वालियर महारानी लक्ष्मीवाई सँभालेंगी।"

इस वार नाना खुलकर वोला। सभी की उपस्थिति में उसने तात्या को आदेश दिए, "आप ग्वालियर, इन्दौर, नीमच आदि के अतिरिक्त राजस्थान की स्थिति भी मालूम कीजिए।"

तात्या ने सिर स्वीकारात्मक ढंग से हिलाया, "इस वार जव झाँसी जाऊँगा, तव उधर का दौरा भी कर लूँगा।"

"तेज गुप्तचरों का एक संगठन भी होना चाहिए।" नाना ने सुझाव पेश किया,"उससे दुश्मन की स्थिति की जानकारी होती रहेगी।" 'दुश्मन' शब्द का प्रयोग, पेशवा ने अंग्रेजों के लिए किया था। तात्या, वाला साहव और अज़ीमुल्ला वहुत प्रसन्न थे। पहली वार नाना ने सच को स्वीकार जो किया था।

उत्तर भारत में काफी तेजी से तैयारियाँ हुईं। तात्या के दौरे विजली की गति-जैसे होते थे। इलाहावाद, वनारस, लखनऊ आदि के अलावा वह झाँसी, ग्वालियर, इन्दौर, आगरा और राजपूताना भी गया। हर जगह देशी सेनाओं से मिल-जुलकर योजना में सहयोग का आश्वासन लिया। स्थितियाँ अनुकूल थीं। तात्या को कहीं भी न तो अधिक समय देना पड़ा और न ही वहुत प्रयत्न करने पड़े। जहाँ-जहाँ वह गया, जनता और सिपाहियों ने उसे अपने पूर्ण सहयोग का वचन दिया। तात्या के वाद वाला साहव और फिर राव साहव ने भी दौरे किये। ये क्रान्ति की भूमि वुनियादी तौर पर मजवूत कर देना चाहते थे। अनेक छोटी-मोटी रियासतों के देशी

राजाओं ने शक्ति-भर सहायता देने का निश्चय किया था। ऐसे जागीरदार और जमींदारों की कमी न थी, जिन्होंने पेशवा को धन-जन की सहायता का विश्वास न दिलाया हो।

इस अवसर पर अंग्रेज सैनिक-असैनिक अधिकारियों के हिन्दुस्तानी नौकर बहुत काम आये। ऐसे लोग बड़ी सफलता के साथ गुप्तचरी करते और ठीक समय पर जहां-तहां से अंग्रेजों की गतिविधियों के सारे समाचार क्रान्तिकारियों के पास पहुंच जाते। संगठन आश्चर्यजनक रूप में हुआ था। सारे देश में योजना फैल चुकी थी और अब तक अंग्रेजों को उसका संकेत भी न मिला था।

कानपुर छावनी में भी सारा काम पूरा हो गया। यहां भी धर्म के नाम पर सिपाही भड़के। जब-तब देशी रिसालों के हिन्दुस्तानी अफसर गुप्त बैठकें करके आगामी कार्यक्रम पर विचार करते। कानपुर की स्थिति को तब पूरा रंग मिला, जब यह हवा काफी तेजी से छावनी में फैली कि अनेक स्थानों की तरह यहां भी धर्मभ्रष्ट करने वाले कारतूस आ पहुंचे हैं।

एक नई तोप हाल में बरेली से कानपुर लायी गयी थी। नन्हे नवाब उसका मुआयना कर रहा था। उसके साथ तोपखाने के दो अन्य तोपची कालेखां और हरलाल थे। परेड अभी-अभी खत्म हुई थी और सिपाही बैरकों में पहुंचकर वरदियां उतार रहे थे। तभी मैगजीन का पहरेदार जुम्मन बड़ी तेज चाल से नन्हे नवाब के पास पहुंचा। सम्मानपूर्वक सैनिक अभिवादन किया और खबर दी, "हुजूर, वे कारतूस आ पहुंचे।"

नन्हे नवाब पूर्ववत् काम में उलझा रहा। उसने सिपाही की ओर देखा तक नहीं। बोला, "कारतूस आये हैं तो मैं क्या करूं? यह तो कप्तान टर्नर साहब का काम है, जाकर उन्हें खबर दो।"

सिपाही आश्चर्यचकित नन्हे नवाब की ओर देखता ही रह गया।

"खड़े क्यों हो, जाओ! बताओ साहब को।" नन्हे नवाब ने कहा।

"सरकार!" सिपाही बोला, "साहब को तो मालूम है। मैं तो आपको बताने आया हूं। ये वे ही कारतूस हैं, जिनमें सूअर की चर्बी…"

"क्या कहा ?" नन्हे नवाव ने सिपाही को वात पूरी न करने दी, "ये···ये वे ही कारतूस हैं ?"

"जी, सा'व !"

"अच्छा, तो अव हम लोगों पर नम्वर आया है !" नवाव ने काम वहीं छोड़ा। जल्दी से वैरक की ओर जाता हुआ सिपाही से कहता गया, "मेरे पीछे-पीछे आओ।"

वैरक में पहुँचकर नवाव ने टीकासिंह को खवर दी। वात-की-वात में समाचार सभी सिपाहियों में फैल गया, नये कारतूस आ पहुँचे हैं। उनमें गाय और सूअर की चर्वी है। फिरंगी धर्म विगाड़कर ईसाई वनाना चाहते हैं। फुसफुसाहटें फैलीं। किसी ने कहा, "मैं कहीं भाग जाऊँगा !" कोई कह रहा था, "मुझसे अगर उस कारतूस के इस्तेमाल के लिए कहा तो व्रिगेडियर को गोली से उड़ा दूँगा !"

रिसालों के सारे देशी अफसरों से सिपाहियों ने स्पप्ट रूप से कह दिया, "हम उन कारतूसों को हाथ नहीं लगायेंगे। आप हमारे अफसर हो, सो कह दिया। साहव लोगों से अभी निवटारा कर लो, आगे वात विगड़ी तो हमें दोप मत देना। धर्म का सवाल है।"

देशी अफसर यही तो चाहते थे। सिपाही पूरी तरह भड़क गए हैं। उन्होंने सिपाहियों को आश्वासन दिया,"चिन्ता मत करो,हम साहव लोगों को समझते हैं। नहीं माने तो हम भी तुम्हारे साथ रहेंगे। हमारे धर्म का भी सवाल है।"

आज्ञाकारी सिपाहियों ने उनका कहना तो मान लिया, किन्तु काना-फूसी वन्द नहीं हुई।

कानपुर की पहली, तिरेपनवीं और छप्पनवीं देशी सेना और तोपखाने का अंग्रेज़ कमांडर था, सर ह्यू ह्वीलर। ७२ वर्प की आयु हो जाने पर भी सर ह्यू अंग्रेज सैनिक कमान के फुर्तीले और योग्य अफसरों में गिना जाता था। उसने पंजाव और अफगानिस्तान के युद्धों में वहुत नाम कमाया था और भारत की अंग्रेज सैनिक-शक्ति के स्तम्भों में उसका नाम था।

कारतूसों का समाचार और सिपाहियों के असन्तोष की खबर ह्वीलर तक पहुँच चुकी थी। कानपुर के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर भी इन कारतूसों का बहिष्कार हुआ है, यह भी ह्वीलर को मालूम था, किन्तु वह अपनी ओर से सफाई देने में पहल नहीं करना चाहता था, अतः चुप रहा। सैनिक-जीवन के गहन अनुभव के कारण वह सैनिकों के प्रति सदा ही सहानुभूति और स्नेह का प्रदर्शन करता था। उसके स्वर में मिठास थी और वह सहज ही किसी भी आदमी को अपना बना लेने की कला में माहिर था।

उस दिन जैसे ही समाचार फैला वैसे ही टीकासिंह, दलभजनसिंह, नन्हे नवाब आदि ह्वीलर के पास पहुँचे। उसका बंगला बैरकों से अधिक दूर नहीं था। ह्वीलर ने बड़े प्रेम से उनसे बातचीत की, "कहिये, क्या बात है ?"

सब ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। टीकासिंह ने बात प्रारम्भ की, "सा'ब, सिपाहियों में बड़ी हलचल है। सुना है कि ऐसे कारतूस आये हैं, जिनमें सूअर और गाय की चर्बी लगी हुई है। इस खबर से हिन्दू-मुसलमान सिपाही घबरा गये हैं। कहते हैं कि सरकार हमें धर्म से गिराना चाहती है।"

मुसकराहट की इच्छा न होते हुए भी ह्वीलर मुसकराया। बोला, "गलत है। सरकार उनका धर्म क्यों बिगाड़ेगी ? किसी ने वैसे ही हवा छोड़ी है, तुम लोग उन्हें समझाओ।"

"हमने उन्हें बहुत समझाया है, सा'ब।" नम्र स्वर में टीकासिंह ने उत्तर दिया, "वे माने नहीं। इधर-उधर के शहरों से भी उन्हें ऐसी ही खबरें मिली हैं, सो बहुत नाराज हैं।"

"तुम लोग सोचो तो सही, सरकार को उनका धर्म बिगाड़ने से क्या फायदा ? उन कारतूसों में कुछ नहीं है।" कमाण्डर ने अत्यधिक नम्र स्वर में कहा, "वे बेकार ही फिक्र करते हैं। तुम लोग हिन्दुस्तानी हो, उन्हें समझा सकते हो। उनसे कहो कि इन कारतूसों में गौ और सूअर की चर्बी होना तो दूर, परछाईं तक नहीं पड़ी है।"

"वे तो किसी की सुनते ही नहीं, हुजूर।" नन्हे नवाब ने कहा, "जब से खबर मिली है, सारी बैरकों में घबराहट और खौफ समाया हुआ है।"

"क्या कहा ?" नन्हे नवाव ने सिपाही को वात पूरी न करने दी, "ये···ये वे ही कारतूस हैं ?"

"जी, सा'व !"

"अच्छा, तो अव हम लोगों पर नम्वर आया है !" नवाव ने काम वहीं छोड़ा। जल्दी से वैरक की ओर जाता हुआ सिपाही से कहता गया, "मेरे पीछे-पीछे आओ।"

वैरक में पहुँचकर नवाव ने टीकासिंह को खवर दी। वात-की-वात में समाचार सभी सिपाहियों में फैल गया, नये कारतूस आ पहुँचे हैं। उनमें गाय और सूअर की चर्वी है। फिरंगी धर्म विगाड़कर ईसाई वनाना चाहते हैं। फुसफुसाहटें फैलीं। किसी ने कहा, "मैं कहीं भाग जाऊँगा !" कोई कह रहा था, "मुझसे अगर उस कारतूस के इस्तेमाल के लिए कहा तो व्रिगेडियर को गोली से उड़ा दूँगा !"

रिसालों के सारे देशी अफसरों से सिपाहियों ने स्पष्ट रूप से कह दिया, "हम उन कारतूसों को हाथ नहीं लगायेंगे। आप हमारे अफसर हो, सो कह दिया। साहव लोगों से अभी निवटारा कर लो, आगे वात विगड़ी तो हमें दोष मत देना। धर्म का सवाल है।"

देशी अफसर यही तो चाहते थे। सिपाही पूरी तरह भड़क गए हैं। उन्होंने सिपाहियों को आश्वासन दिया,"चिन्ता मत करो,हम साहव लोगों को समझते हैं। नहीं माने तो हम भी तुम्हारे साथ रहेंगे। हमारे धर्म का भी सवाल है।"

आज्ञाकारी सिपाहियों ने उनका कहना तो मान लिया, किन्तु काना-फूसी वन्द नहीं हुई।

कानपुर की पहली, तिरेपनवीं और छप्पनवीं देशी सेना और तोपखाने का अंग्रेज़ कमांडर था, सर ह्यू ह्वीलर। ७२ वर्ष की आयु हो जाने पर भी सर ह्यू अंग्रेज सैनिक कमान के फुर्तीले और योग्य अफसरों में गिना जाता था। उसने पंजाव और अफगानिस्तान के युद्धों में वहुत नाम कमाया था और भारत की अंग्रेज सैनिक-शक्ति के स्तम्भों में उसका नाम था।

कारतूसों का समाचार और सिपाहियों के असन्तोष की खबर ह्वीलर तक पहुँच चुकी थी। कानपुर के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों पर भी इन कारतूसों का बहिष्कार हुआ है, यह भी ह्वीलर को मालूम था, किन्तु वह अपनी ओर से सफाई देने में पहल नहीं करना चाहता था, अतः चुप रहा। सैनिक-जीवन के गहन अनुभव के कारण वह सैनिकों के प्रति सदा ही सहानुभूति और स्नेह का प्रदर्शन करता था। उसके स्वर में मिठास थी और वह सहज ही किसी भी आदमी को अपना बना लेने की कला में माहिर था।

उस दिन जैसे ही समाचार फैला वैसे ही टीकासिंह, दलभजनसिंह, नन्हें नवाब आदि ह्वीलर के पास पहुँचे। उसका बंगला बैरकों से अधिक दूर नहीं था। ह्वीलर ने बड़े प्रेम से उनसे बातचीत की,"कहिये, क्या बात है ?"

सब ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। टीकासिंह ने बात प्रारम्भ की,"सा'ब, सिपाहियों में बड़ी हलचल है। सुना है कि ऐसे कारतूस आये हैं, जिनमें सूअर और गाय की चर्बी लगी हुई है। इस खबर से हिन्दू-मुसलमान सिपाही घबरा गये हैं। कहते हैं कि सरकार हमें धर्म से गिराना चाहती है।"

मुसकराहट की इच्छा न होते हुए भी ह्वीलर मुसकराया। बोला, "गलत है। सरकार उनका धर्म क्यों बिगाड़ेगी ? किसी ने वैसे ही हवा छोड़ी है, तुम लोग उन्हें समझाओ।"

"हमने उन्हें बहुत समझाया है, सा'ब।" नम्र स्वर में टीकासिंह ने उत्तर दिया, "वे माने नहीं। इधर-उधर के शहरों से भी उन्हें ऐसी ही खबरें मिली हैं, सो बहुत नाराज़ हैं।"

"तुम लोग सोचो तो सही, सरकार को उनका धर्म बिगाड़ने से क्या फायदा ? उन कारतूसों में कुछ नहीं है !" कमांडर ने अत्यधिक नम्र स्वर में कहा, "वे बेकार ही फिक्र करते हैं। तुम लोग हिन्दुस्तानी हो, उन्हें समझा सकते हो। उनसे कहो कि इन कारतूसों में गौ और सूअर की चर्बी होना तो दूर, परछाईं तक नहीं पड़ी है।"

"वे तो किसी की सुनते ही नहीं, हुज़ूर।" नन्हें नवाब ने कहा, "जब से खबर मिली है, सारी बैरकों में थरथराहट और शोक समाया हुआ

"हम लोग उन्हें दिन-भर से समझा रहे हैं, पर कोई असर नहीं हुआ।" दलभंजनसिंह बोला।

टीकासिंह ने कहा, "उनके मन में जो भय समा गया है, वह बड़ी मुश्किल से निकलेगा।"

ह्वीलर ने पूछा, "क्या तुम भी ऐसा ही समझते हो कि कम्पनी सरकार धर्म बिगाड़ रही है?"

सभी ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। नन्हे नवाब ने फौरन कहा, "हमें तो कम्पनी सरकार पर भरोसा है मगर ये अपढ़ सिपाही कैसे मानें?"

"धरम-करम के मामलों में ऐसा ही होता है, सरकार। मैं और जातों की बात नहीं करता, पर हिन्दुस्तानी बहुत कट्टर हैं।"

"फिर क्या होना चाहिए?" ह्वीलर चिन्तित हुआ।

नन्हे नवाब ने सुझाया, "अब तो एक यही चारा है हुजूर, कि सिपाहियों को भरोसा दिलाया जाए कि वे कारतूस उनके लिए प्रयोग नहीं किये जायेंगे।"

"इससे क्या होगा?"

"सिपाही चुप रहेंगे।" टीकासिंह ने उत्तर दिया, "थोड़े दिनों बाद जब यह अफवाह ठंडी हो जायेगी, तब कारतूसों का उपयोग किया जा सकेगा।"

कुछ क्षणों तक ह्वीलर विचार करता रहा, फिर उसने स्वीकृति दे दी, "ठीक है। उनसे कह दो कि इन कारतूसों को उनके लिए नहीं, अंग्रेजी फौजों के लिए मँगाया गया है।"

वे सब जाने लगे।

"और सुनो!"

वे रुक गए।

"मगर खयाल रहे, कोई गड़बड़ी न होने पाये। हमें तुम लोगों पर बहुत भरोसा है।"

सभी ने जनरल ह्वीलर को हिन्दुस्तानी फौज की वफादारी का विश्वास

दिलाया और लौट गये। सिपाहियों को सन्देश दिया, "चिन्ता न करें, ये कारतूस उनके लिए नहीं आये हैं।" पर इन लोगों ने यह स्पष्टीकरण नहीं किया कि जनरल ने यह भी कहा है कि इन कारतूसों में सूअर या गाय, किसी की चर्बी नहीं है।

जनरल हीयर ने कलेक्टर को सम्पूर्ण घटना की जानकारी दे दी तथा विश्वास व्यक्त किया कि देशी फौजों के अफसर कम्पनी के प्रति वफादार हैं। वे स्थिति को सम्भाले रखेंगे और सिपाही कुछ न कर सकेंगे।

१०

दिसम्बर, १८५७...

इंग्लैंड से अज़ीमुल्ला की वापसी तक के छोटे-से समय में ही हिन्दुस्तान में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हो चुके थे।

इस बीच इधर-उधर की देशी सेनाओं में नये कारतूसों को लेकर गहरा असंतोष फैल चुका था। सबसे बड़ी घटना फरवरी, १८५६ में घटी जब अवध को कम्पनी के राज्य में मिलाकर नवाब वाजिदअली शाह को कैद कर कलकत्ता भेज दिया गया।

फरवरी में गवर्नर जनरल डलहौजी ने कम्पनी सरकार की ओर से घोषणा कर दी कि वाजिदअली शाह शासन में उचित सुधार नहीं कर पा रहा है तथा राज्य-व्यवस्था ठीक रख सकने में अयोग्य है, अतः अवध को कम्पनी सरकार का सूबा बना दिया गया है। सर जेम्स ऊटरम, जो पहले अवध का रेजिडेंट था, सूबे का चीफ कमिश्नर बनाया गया। अधिकार पाते ही ऊटरम ने रहे-सहे जमींदारों और ताल्लुकेदारों को समाप्त कर गृहविहीन कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण अवध-प्रान्त की जनता उत्तेजित हो गयी।

"हम लोग उन्हें दिन-भर से समझा रहे हैं, पर कोई असर नहीं हुआ।" दलभंजनसिंह बोला।

टीकासिंह ने कहा, "उनके मन में जो भय समा गया है, वह बड़ी मुश्किल से निकलेगा।"

ह्वीलर ने पूछा, "क्या तुम भी ऐसा ही समझते हो कि कम्पनी सरकार धर्म बिगाड़ रही है?"

सभी ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। नन्हे नवाब ने फौरन कहा, "हमें तो कम्पनी सरकार पर भरोसा है मगर ये अपढ़ सिपाही कैसे मानें?"

"धरम-करम के मामलों में ऐसा ही होता है, सरकार। मैं और जातों की बात नहीं करता, पर हिन्दुस्तानी बहुत कट्टर हैं।"

"फिर क्या होना चाहिए?" ह्वीलर चिन्तित हुआ।

नन्हे नवाब ने सुझाया, "अब तो एक यही चारा है हुजूर, कि सिपाहियों को भरोसा दिलाया जाए कि वे कारतूस उनके लिए प्रयोग नहीं किये जायेंगे।"

"इससे क्या होगा?"

"सिपाही चुप रहेंगे।" टीकासिंह ने उत्तर दिया, "थोड़े दिनों बाद जब यह अफवाह ठंडी हो जायेगी, तब कारतूसों का उपयोग किया जा सकेगा।"

कुछ क्षणों तक ह्वीलर विचार करता रहा, फिर उसने स्वीकृति दे दी, "ठीक है। उनसे कह दो कि इन कारतूसों को उनके लिए नहीं, अंग्रेजी फौजों के लिए मँगाया गया है।"

वे सब जाने लगे।

"और सुनो!"

वे रुक गए।

"मगर खयाल रहे, कोई गड़बड़ी न होने पाये। हमें तुम लोगों पर बहुत भरोसा है।"

सभी ने जनरल ह्वीलर को हिन्दुस्तानी फौज की वफादारी का विश्वास

दिलाया और लौट गये। सिपाहियों को सन्देश दिया, "चिन्ता न करें, ये कारतूस उनके लिए नहीं आये हैं।" पर इन लोगों ने यह स्पष्टीकरण नहीं किया कि जनरल ने यह भी कहा है कि उन कारतूसों में सूअर या गाय, किसी की चर्बी नहीं है।

जनरल ह्वीलर ने कलेक्टर को सम्पूर्ण घटना की जानकारी दे दी तथा विश्वास व्यक्त किया कि देशी फौजों के अफसर कम्पनी के प्रति वफादार हैं। वे स्थिति को सम्भाले रखेंगे और सिपाही कुछ न कर सकेंगे।

१०

दिसम्बर, १८५७...

इंग्लैंड से अज़ीमुल्ला की वापसी तक के छोटे-से समय में ही हिन्दुस्तान में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हो चुके थे।

इस बीच इधर-उधर की देशी सेनाओं में नये कारतूसों को लेकर गहरा असंतोष फैल चुका था। सबसे बड़ी घटना फरवरी, १८५६ में घटी जब अवध को कम्पनी के राज्य में मिलाकर नवाब वाजिदअली शाह को कैद कर कलकत्ता भेज दिया गया।

फरवरी में गवर्नर जनरल डलहौजी ने कम्पनी सरकार की ओर से घोषणा कर दी कि वाजिदअली शाह शासन में उचित सुधार नहीं कर पा रहा है तथा राज्य-व्यवस्था ठीक रख सकने में अयोग्य है, अतः अवध को कम्पनी सरकार का सूबा बना दिया गया है। सर जेम्स ऊटरम, जो पहले अवध का रेजिडेंट था, सूबे का चीफ कमिश्नर बनाया गया। अधिकार पाते ही ऊटरम ने रहे-सहे जमींदारों और ताल्लुकेदारों को समाप्त कर गृहविहीन कर दिया। परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण अवध-प्रान्त की जनता उत्तेजित हो गयी।

मौलवी अहमदुल्लाह शाह ने बहुत पहले ही इस भविष्य की घोषणा कर दी थी। जैसे ही उसकी भविष्यवाणी सत्य हुई वैसे ही सर्वत्र उसे भारी जन-समर्थन मिलने लगा। बात की बात में वे लोग जो अब तक अंग्रेज़ों पर विश्वास करते थे, मौलवी के साथ हो गए।

नवाब को कैद किये जाने से जनता में और अधिक क्षोभ फैला। यह क्षोभ उस समय विस्फोट की स्थिति तक आ गया जब नवाब के महल में सहायक सेना ने जबरदस्ती प्रवेश कर लूट-खसोट की। जो लोग नवाब के प्रति वफादार थे, उनकी हत्या कर डाली गई। बेगमों का अपमान किया गया।

बेगम हजरतमहल पहले से ही अवध-क्रान्ति के संगठन के लिए प्रयत्नशील थी। इस घटना ने उसे क्रान्ति के अगुआओं में ला खड़ा किया। अवध में हर कार्य उसके निर्देश पर होता था और ग्राम-ग्राम में क्रान्ति के प्रचारक बेगम और नवाब पर हुए अत्याचारों की घटना सुना-सुनाकर जनता में उत्तेजना पैदा करते थे।

विदेश से लौटकर हिन्दुस्तान की धरती पर पहला कदम रखते ही अज़ीमुल्ला को ये जानकारियाँ मिलीं। वह सारी उदासी छँट गई जो इंग्लैंड में पेशवा की पेंशन-प्राप्ति का प्रयत्न असफल हो जाने से मन में घिर आयी थी।

बिठूर पहुँचने से पूर्व अज़ीमुल्ला कानपुर में एक दिन के लिए कलेक्टर हिलर्संडन के यहाँ रुका। हिलर्संडन उस पर जितना विश्वास करता था, उससे कहीं अधिक उसकी लड़की मेरी को उस पर भरोसा था। इंग्लैंड जाने से पूर्व भी मेरी ने उसे काफी सहायता दी थी। उसने वहाँ के लिए अज़ीमुल्ला को परिचय-पत्रों के रूप में अनेक पत्र दिये थे। इन पत्रों से अज़ीमुल्ला को बहुत लाभ मिला। करीब डेढ़-दो वर्ष तक अंग्रेज़ परिवारों की मित्रता और संगति में अज़ीमुल्ला ने अनुभव किया था कि अंग्रेज़

पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं उसकी ओर जल्द आकृष्ट होती थी। कुछ दिनों मे ही वे अजीमुल्ला के बहुत नजदीक आ जातीं। इतनी नजदीक कि आत्मसमर्पण तक कर डालतीं। मेरी के साथ भी यही हुआ था। वह उसकी ओर बहुत जल्द आकृष्ट हुई और अजीमुल्ला जानता था कि जल्दी ही उसकी भी वही स्थिति होने वाली थी। पहले तो अजीमुल्ला ने स्वयं को संभालने की चेष्टा की, फिर उसने इस ओर से सावधानी बरतनी बन्द कर दी। उसने अपनी विशेषता और महिलाओं की कमजोरी भली-भांति समझी थी और अब वह अपने चेहरे तथा उन गुणों को, जो आकर्षण के कारण थे, राजनीतिक हथियार बनाये हुए था।

कानपुर में एक दिन के निवास के बीच उसने मेरी से अनेक गुप्त रहस्य निकाले। बातचीत के दौरान उसने मेरी के प्रति ही नहीं स्वयं को अंग्रेज जाति के प्रति वफादार प्रमाणित किया और ईसाई धर्म में अपना सम्पूर्ण विश्वास प्रकट किया। उसने मेरी को यह भी बताया कि वह अपनी मां के जीवित होने के कारण ही ईसाई नहीं हो पा रहा है।

उसने कहा कि यदि उसकी मां जीवित न होती तो वह कभी का ईसाई धर्म अंगीकार कर लेता। मेरी ने हिचकिचाहट के साथ अनेक बार उससे प्रेम-प्रस्ताव किए थे, किन्तु वह हर बार किसी-न-किसी तरीके से उसे टालता रहा था। इस बार भी एकान्त पाकर मेरी ने अजीमुल्ला के सामने पुराना प्रस्ताव स्पष्टता से दोहराया, "खान, मैंने तुमसे कई बार कहा है कि मैं तुम्हें प्यार करती हूं, पर तुम हर बार टालते रहे हो। इस बार मुझे साफ उत्तर चाहिए।" उसने यह बात अधिकार के ऐसे वजन के साथ कही जैसे खान पेशवा की नौकरी में नहीं, उसकी अपनी नौकरी में था।

पर अजीमुल्ला चुप रहा। शायद वह कोई नया बहाना तैयार करने लगा था।

"खान ! यदि तुम्हें कोई ऐतराज है, तो मुझसे साफ-साफ कहो, मैं बिलकुल बुरा नहीं मानूंगी। पर मुझे इस तरह झमेले में पड़े रहना बुरा

लगता है।"

अज़ीमुल्ला मुसकराया। उसके चेहरे पर पहले से कई गुना सुन्दरता और चमक आ गई। उसने अपना नीली आँखोंसे टकटकी बाँधकर मेरीको देखा। कभी न शर्माने वाली मेरी को भी एक बार लज्जा ने घेर लिया। मधुर स्वर में अज़ीमुल्ला ने कहा, "मेरी, निश्चय ही मैं तुम्हें टालता रहा हूँ, पर इस टालने का अर्थ तुम्हें गलत नहीं लेना चाहिए। पर अब मैं तुम्हें किसी तरह के झमेले में नहीं रखना चाहता और न ही पिछली बार की तरह कोई टालनेवाली बात करना चाहता हूँ।"

मेरी की झुकी आँखें अज़ीमुल्ला के चेहरे पर गड़ गईं। दिल की धड़कन तेज हो गई। क्या कहनेवाला है वह?

अज़ीमुल्ला ने कहा, "मेरी माँ कट्टर मुसलमान हैं और वे मेरा और तुम्हारा साथ पसन्द नहीं करेंगी। वे अकसर बीमार रहती हैं और मैं नहीं चाहता कि उनके बूढ़े शरीरको किसी तरह का सदमा बर्दाश्त करना पड़े। आशा है, तुम मुझे क्षमा कर दोगी।" एकक्षण रुककर उसने मेरी के चेहरे पर सिमट आयी निराशा को देखा, फिर बोला, "मेरी सलाह है कि तुम्हें मेरी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।"

मेरी पिघल गई, "तुम मुझे प्यार करते हो, यह मेरे लिए काफी है। मैं तुम्हारी लाचारियों के टूटने तक प्रतीक्षा कर सकती हूँ।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। मेरी पास ही लगे गुलाब के पौधे को सूनी आँखों से देखती रही और अज़ीमुल्ला कभी उसे और कभी उस गुलाब को देखता रहा।

थोड़ी देर बाद अज़ीमुल्ला ने पूछा, "सुना है कि और जगहों की तरह कानपुर की फौजों में भी कारतूसों के अंधविश्वास पर काफी हलचल हो गई थी?"

"हाँ।" मेरी ने बताया, पर उसके स्वर में न तो उत्साह था और न उस विषय से कोई रुचि।

"कितने अंधविश्वासी हैं हिन्दुस्तानी! कमबख्त, पशुओं की चरबी से

मदद्द्व तोनने हैं…फिर क्या हुआ ? सिपाहियों को डांट दिया गया होगा, क्यों ?"

"नहीं।" मेरी बोली, "डैंडी के पास जनरल ह्वीलर ने खबर भेजी थी कि अंधविश्वासी सिपाहियों को इस समय यह कहकर टाल दिया गया है कि वे कारतूस उनके लिए नहीं, अंग्रेज सिपाहियों के लिए हैं।"

"फिर क्या होगा ?" अजीमुल्ला ने सशक होकर चारों ओर देखा। पूछा, "वैसे कारतूस तो उन्हीं के लिए हैं न ?"

"हाँ।" मेरी ने निस्संकोच बतलाया. "जब हलचल ठंडी हो जायेगी, तो उन्हें बाँट दिया जायेगा।"

"बहुत अच्छा। वैसे यहाँ के रिसालों के हिन्दुस्तानी अफसरों पर तो तुम लोगों को विश्वास रखना चाहिए। वे गद्दारी नहीं कर सकते।"

"डैंडी और जनरल ह्वीलर का भी यही खयाल है कि देशी अफसर भले हैं। उन्होंने सिपाहियों को काबू में रखने का वचन दिया है।"

"बिलकुल ठीक है।" अजीमुल्ला ने बात में नया मोड़ दिया, "कानपुर के अफसर तो ठीक है, पर सुना है कि अन्य अनेक स्थानों पर देशी रिसाले और वहाँ के अफसर काफी गड़बड़ कर रहे हैं। लाट साहब कुछ क्यों नहीं करते ? उन्हें कम्पनी सरकार के अफसरों को रास्ता सुझाना चाहिए।"

"क्यों नहीं कर रहे ? अभी-अभी डैंडी के पास गवर्नर जनरल का पत्र आया है, जिसमें उन्होंने चिन्ता न करने की सलाह दी है और कहा है कि हर जगह अंग्रेज फौजें बढ़ा दी जायेंगी। जहाँ भी सिपाही गड़बड़ करेंगे, उनके हथियार रखवा लिए जाएँगे।"

"ठीक है। अंग्रेज सेनाएं बढ़ गईं तो देशी फौजें गड़बड़ नहीं कर सकतीं, किन्तु कानपुर में तो बढ़ती की जरूरत है नहीं ?"

"नहीं। डैंडी ने गवर्नर जनरल को लिख दिया है कि कानपुर के लोग और सिपाही दोनों अच्छे हैं। यहाँ अंग्रेज सेनाएं बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। जिन स्थानों पर अधिक खतरा है, वहाँ व्यवस्था करवाइए।"

"हाँ, ठीक है। व्यर्थ ही यहाँ सेनाएं क्यों बुलायी जाएँ ? वैसे ऐसा

मौका तो आयेगा ही नहीं, और अगर आया भी तो पेशवा ही यहाँ के सिपाही संभाल लेंगे।"

"वही तो। डैडी भी यही कह रहे थे। पेशवा बहुत वफादार हैं। हर अन्याय के बावजूद वे हमारी सहायता करेंगे। उन्होंने गवर्नर जनरल बहादुर को यह भी लिख दिया है।"

"पेशवा बहादुर के साथ ठीक बर्ताव नहीं हुआ।" अज़ीमुल्ला ने खेद व्यक्त किया, "कम्पनी सरकार को ऐसे वफादारों का खयाल रखना चाहिए।"

मेरी ने समर्थन किया।

थोड़ी देर तक दोनों पेशवा के साथ हुए अन्याय पर दुख व्यक्त करते रहे। मेरी से बातचीत के दौरान अज़ीमुल्ला ने अच्छी तरह मालूम कर लिया कि कलेक्टर हिलर्सडन और जनरल ह्वीलर को नाना पर बहुत विश्वास है।

दूसरे दिन अज़ीमुल्ला कानपुर से बिठूर पहुँचा।

बिठूर पहुंचकर तात्या, बाला साहब और पेशवा के युवक भतीजे राव साहब को उसने इंग्लैंड की सारी स्थिति समझायी। पेंशन-प्राप्ति के प्रयत्नों तथा कौंसिल के स्पष्ट इनकार की तथा-कथा सुनाकर पेशवा को खूब भड़काया।

जब अज़ीमुल्ला ने यह कहा कि अब तो तमाम रास्ते समाप्त हो चुके हैं, तो पेशवा हँसकर बोला, "यह कहो खान साहब कि अब तमाम रास्ते खुल गये हैं।"

अज़ीमुल्ला समझा। उसके विदेश जाने-रहने के बीच वाले समय में क्रान्ति की योजना को गहरी सफलता मिल चुकी है और पेशवा स्पष्टतः अंग्रेज़ों के विरुद्ध हो गया है।

बाला साहब ने पूछा, "खान साहब, आपको तो जल्द आ जाना चाहिए

था। कौंसिल के इनकार के बाद वहाँ ठहरने के लिए बचा ही क्या था ?"

"मैं इंग्लिस्तान में फिर नहीं ठहरा।" अजीमुल्ला ने उत्तर दिया, "वहां से मैं तुर्की, कुस्तुन्तुनिया, सेवस्तोपोल आदि अनेक जगहों पर घूमता हुआ लौटा हूँ। रूसी बहादुर हैं। हाल में उन्होंने सेवस्तोपोल की लड़ाई में फिरंगियों को सीधी पराजय दी है। जार से भी मैंने भेंट की थी। भारत से फिरंगियों को निकाल देने में सहायता भी चाही, पर उनका कहना है कि अभी वे स्वयं ही लड़ाई में फंसे हैं। इससे सुलझने के बाद कुछ हो सकेगा। इटालिया में मैंने सेनापति गैरीबाल्दी से भेंट की। वे हमारी क्रांति के समय पर अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता देने को तैयार हैं।"

"सुना है कि गैरीबाल्दी बहुत पराक्रमी है ?" तात्या ने पूछा।

"हाँ।" अजीमुल्ला ने बताया, "वह देशभक्त भी हैं, और उन तमाम देशभक्तों के प्रति अपनी सेवाएं देने को तैयार हैं, जो पराधीनता से मुक्ति चाहते हैं। यूरोप में गैरीबाल्दी का नाम बहुत प्रसिद्ध है, और उसके प्रति लोगों में श्रद्धा है। उसकी बहादुरी का वे सम्मान करते हैं।"

नाना बोला, "यहाँ भी बहुत काम हुआ है। तात्या और बाला साहब दोनों ने जगह-जगह दौरे किये हैं। छुटपुट राजाओं और जमींदारों के अलावा जहाँ-तहाँ के देशी रिसालों ने भी हमें सहयोग का वचन दिया है।"

"कहाँ-कहाँ के दौरे किए हैं, तात्या साहब ?" अजीमुल्ला ने प्रश्न किया।

"उत्तर भारत और दक्षिण भारत के अनेक नगरों के। वहाँ मैंने जन-साधारण के मुख्य-मुख्य लोगों से भेंट के अलावा मैनिक छावनियों के देशी अफसरों से बातचीत की है। यहाँ-वहाँ फैली हुई फिरंगियों की शक्ति का अनुमान भी किया है।"

"बुन्देलखण्ड में अनेक छुटपुट राजा लोग हैं। वहाँ भी गये थे क्या ?"

"नहीं। बुन्देलखण्ड का कार्य महारानी लक्ष्मीबाई के सिपुर्द है। उनके पास विश्वस्त अनुचर हैं। उनका गुप्तचर विभाग भी बहुत योग्य और मुस्तैद है। महारानी ने बुन्देलखण्ड के कई राजे-महाराजाओं से सहयोग का

वचन लिया है। कुछ से उनका पत्र-व्यवहार चल रहा है। वानपुर के राजा मर्दनसिंह से भी उन्हें सहायता की बहुत आशा है। सैनिक दृष्टि से वानपुर बुन्देलखण्ड का महत्त्वपूर्ण राज्य है।"

"जबलपुर में फिरंगियों की छावनी है। वहाँ के देशी रिसालों की क्या स्थिति है ?"

"जबलपुर, फिरंगियों की छावनी तो अवश्य है, किन्तु वहाँ भी देशी शक्ति ही है। फिरंगियों की अपनी शक्ति सागर में है। वहाँ साइमन नाम के एक कमांडर के पास अच्छी तोप है। गोरी सेना भी बड़ी मात्रा में है। जबलपुर के पास ही गढ़ापुरवा नामक स्थान पर वहाँ का पुराना गोंड राजा शंकरशाह रहता है। सैनिक दृष्टि से वह अधिक योग्य नहीं है, पर प्रजा पर उसका बहुत प्रभाव है।"

"मध्य भारत में ?"

"मध्यभारत में मैं सिर्फ ग्वालियर गया था। नीमच, इन्दौर आदि स्थानों पर बाला साहब और राव साहब गये थे।" तात्या ने उत्तर दिया।

"ग्वालियर के पास भारी शक्ति है। वहाँ के राजा से तो आपने भेंट की ही होगी ?"

"नहीं।" तात्या ने कहा, "ग्वालियर के पास शक्ति तो बहुत है पर वहाँ का राजा सिन्धिया फिरंगियों का गहरा मित्र है।"

"मगर तात्या साहब ! ग्वालियर के लिए तो कुछ-न-कुछ करना ही होगा।" अजीमुल्ला ने कहा, "आप तो खूब जानते हैं कि ग्वालियर की मदद न भी मिली तो हमें उसे शक्ति से कब्जे में रखना पड़ेगा। वरना सैनिक दृष्टि से सिन्धिया बेहद खतरनाक साबित हो सकता है।"

तात्या ने कहा, "आप चिन्ता न करें। ग्वालियर के सैनिक हमारे साथ के लिए तैयार हैं। वहाँ के कोषाध्यक्ष अमरचन्द से मैंने भेंट की थी। वह देशभक्त है। उसने सेना और धन दोनों से ही क्रान्ति में सहयोग देने का आश्वासन दिया है। वैसे महारानी लक्ष्मीबाई स्वयं ही ग्वालियर की ओर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए हैं।"

"इन्दौर वगैरह ?"

"बाला साहब बतायेंगे।" तात्या चुप हो गया।

नाना साहब को अजीमुल्ला की अधिकारियों की तरह की जा रही पूछताछ बुरी लगी थी, फिर भी संयत स्वर में उसने कहा, "नीमच छावनी बहुत महत्वपूर्ण है। वहां बारहवीं सेना की एक टुकड़ी सातवीं ग्वालियर रेजिमेंट और बंगाल की घुड़सवार सेनाएं हैं। अधिकतर सिपाही मुसलमान हैं। मैं वहां पहुंचा उस समय तक काम पूरा हो चुका था।"

"कैसे ?"

"फिरोजशाह नाम का एक मुसलमान काफी समय से वहां है। स्वयं को शाही खानदान से बताता है। उसने तमाम देशी फौजें अपने काबू में कर रखी हैं। मैंने उसी से मुलाकात की। कहता था कि जब चाहूंगा यहां से फिरंगियों को खदेड़ दूंगा।"

"इन्दौर में ?"

"वहां की देशी सेना पर भी फिरोजशाह का असर है।"

"दक्षिण भारत में मामला गड़बड़ है।" नाना ने आशंका व्यक्त की, "तात्या साहब उधर गये तो थे किन्तु विशेष सफलता नहीं मिली।"

"दक्षिण के लिए आप चिन्तित न हों।" अजीमुल्ला बोला, "इंग्लिस्तान में मेरी भेंट अनायास ही सतारा की विधवा रानी के वकील रंगो बापूजी से हो गई थी। मैं जिस उद्देश्य को लेकर वहां गया था, उसी सिलसिले में बापूजी वहां पहुंचा था। उसने आश्वासन दिया है। अब तक तो वह वापस स्वदेश आ भी गया होगा। उसके पास कोई विश्वस्त आदमी भेज दीजिए, पता मेरे पास है। दक्षिण की सारी स्थिति मालूम हो जायेगी। हां, अवध के मौलवी की कोई खबर है क्या ?"

"वह बरेली में खानबहादुर खां के यहां है। अभी हाल में उनके यहां से खबर मिली है कि जनवरी के प्रथम सप्ताह में कानपुर आएंगे।" तात्या ने बताया।

"ठीक है।" पेशवा ने कहा।

अन्त में अज़ीमुल्ला ने, मेरी से जितनी बातचीत हुई थी, वह सुनाई और सबको सावधान कर दिया। गुप्तचर यहाँ-वहाँ से समाचार ला ही रहे थे। कानपुर की ही एक नामी वेश्या अजीज़न से अकसर इन लोगों को महत्त्वपूर्ण समाचार मिला करते थे। अनेक अंग्रेज़ अधिकारी उसके यहाँ जाते, और अज़ीज़न अपने सुन्दर शरीर और शराबी आँखों में उन्हें उलझा-कर गोपनीय सैनिक गतिविधियों की जानकारी ले लेती। जल्दी ही यह समस्त जानकारी पेशवा के पास पहुँच जाती। योजना-चक्र इतनी साव-धानी के साथ चल रहा था कि अंग्रेजों को उसकी जानकारी तो दूर, कल्पना तक न हुई।

जनवरी, १८५७ के पहले सप्ताह में मौलवी ने कानपुर का दूसरा दौरा किया, पर इस दौरे में उसने भाषण नहीं दिए।

इसी सप्ताह बिठूर में पुनः एक बैठक हुई।

मौलवी के अलावा पेशवा नाना, तात्या साहब, अज़ीमुल्ला, बाला साहब, राव साहब के अतिरिक्त संगठन में आये कुछ नये लोग भी शामिल हुए थे।

मध्य भारत से फिरोजशाह, बरेली का खानबहादुर खाँ, बहादुरशाह की ओर से शाहजादा जवाँबख्त और कुँवरसिंह की ओर से उसके छोटे भाई अमरसिंह ने इस बैठक में भाग लिया। इधर-उधर के देशी रिसालों का कोई अधिकारी उपस्थित न था। हर आदमी ने अपने-अपने क्षेत्र की स्थिति बतलाई। कहाँ कितना काम हुआ या होना है, यह ब्यौरा दिया-लिया।

पेशवा ने सबकी बातें सुनकर कहा, "कार्य तो पूरा हो चुका है, अब तिथि निश्चित होनी चाहिए।"

"हाँ।" तात्या ने कहा, "तिथि का निश्चय महत्त्वपूर्ण है। निश्चित तिथि पर यदि सभी जगह हथियार उठे और देशी रिसाले भड़के तो फिरंगी कहीं भी मुकाबला न कर सकेंगे। उनकी सम्पूर्ण शक्ति जगह-जगह बिखरी रहेगी और वैसे में उन्हें समाप्त करते अधिक समय न लगेगा।"

खानबहादुर खाँ ने भारी स्वर में समर्थन किया, "आपका कहना ठीक

है। सभी जगहों पर एक साथ लौ उठी तो दुश्मन किसी भी जगह की लौ नहीं बुझा सकेगा और अन्त में वह उसकी चौतरफा तपन में झुलस जाएगा। फ़िरंगियों की अपनी शक्ति अधिक नहीं है। देशी रिसाले तो उनके साथ हैं ही नहीं। वे हमसे टकराने की जब भी तैयारी करेंगे, उन्हें पहले देशी सिपाहियों से निबटना पड़ेगा।"

गम्भीर स्वर में अज़ीमुल्ला ने कहा, "यह तो ठीक है, पर योजना अभी अधूरी ही है। जिस तरह देशी सिपाहियों को हमने अपने साथ लिया है, उस तरह जनता की सहानुभूति हम नहीं पा सके हैं। मौलवी साहब को छोड़कर हममें से किसी ने, कहीं भी जनता को अपने साथ नहीं लिया है। केवल सैनिक क्रान्ति पर ही फिरंगियों को मुल्क से बाहर धकेल देने की बात हमें नहीं सोचनी चाहिए। यदि थोड़ा-सा समय जनता की ओर भी दिया जाये, तो अधिक अच्छा रहेगा।" पूर्ववत् गम्भीर स्वर में वह कहे गया, "सैनिक ठिकानों से पिटकर फिरंगी भागे तो वे इधर-उधर के गाँवों में फैल जाएंगे। यदि जनता की सहानुभूति हमने न ली तो मुमकिन है कि फिरंगी फिर से ताकत इकट्ठा करें। यदि हमें जन-सहयोग मिला तो दुश्मन को कहीं, किसी तरह शरण नहीं मिलेगी। वह जहाँ, जिधर जाए, वहीं उसे मार खानी पड़ेगी और अन्त में उसके लिए एक ही जगह बच रहेगी—समन्दर पार, उसका अपना मुल्क!"

अज़ीमुल्ला के कथन से सभी सहमत थे। एक हद तक तात्या की भी सहमति थी, पर उसे कुछ एतराज़ भी थे।

मौलवी ने कहा, "खान साहब का खयाल सही है। वक्त अधिक भले ही लग जायें, मगर काम में कमज़ोरी नहीं रहनी चाहिए। रियाया पूरी तरह हमारे साथ होनी चाहिए। उसे अपने साथ लेने में अधिक देर नहीं लगेगी। वह तो फिरंगियों से पहले ही नाराज़ है। फिर भी जैसे आपने कहा, उस तक हमारा पहुँचना ज़रूरी है।"

तात्या ने संशय प्रकट किया, "अब तक फिरंगियों को बिलकुल सन्देह नहीं है, पर जैसे ही जनता तक ये अंगारे पहुँचाए गए, दुश्मन सावधान हो

जायेगा और सम्भव है कि वह भी तैयारियों में जुट जाए ? मेरे विचार से हम योजना को सैनिक क्रान्ति तक ही रहने दें। जैसे ही फिरंगी उखड़े, वैसे ही हमें जन-समर्थन मिल जाएगा।"

अज़ीमुल्ला बोला, "जन-समर्थन लेने से मेरा मतलब यह है कि लोगों में केवल फिरंगियों के प्रति घृणा ही नहीं, उन्हें देश से निकाल देने की बात समझाई जाए और इसके लिए अपनी योजना या तिथि के जन-प्रचार की आवश्यकता नहीं है।"

"फिर जन-समर्थन किस आधार पर मिलेगा ?" बाला साहब सोच में पड़ गया।

"रियाया तक सिर्फ ऐसा इशारा पहुँचना चाहिए कि फिरंगियों के ख़िलाफ और मुल्क की बेहतरी के लिए जल्द ही कोई जबरदस्त काम होने जा रहा है।" अज़ीमुल्ला ने सुझाया।

"बेशक। यह तरीका बेहतर रहेगा।" मौलवी की भूरी दाढ़ी-मूंछों के बीच एक हल्की-सी मुसकान खिल गई, "इस तरह लोगों में एक लगाव पैदा हो जाएगा और वे उस लमहे का इन्तजार करने लगेंगे, जो मुल्क की बेहतरी में फिरंगियों के ख़िलाफ आने वाला होगा।"

अज़ीमुल्ला ने योजना में एक नया रंग भरा, "लोगों पर यह ज़ाहिर करने की बिलकुल ज़रूरत नहीं कि वह काम क्या है, और कब होने जा रहा है।"

तात्या ने आपत्ति पेश की, "इस तरह तो दुश्मन होशियार हो जाएगा। वह तैयारी करेगा।"

"उसका भी इलाज है।" अज़ीमुल्ला ने कहा, "जनता तक यह खबर पहुँचाने के बाद फिरंगियों को तैयारी का मौका न दिया जाये।"

"तब यह काम निश्चित तिथि से दो-तीन माह से पहले नहीं होना चाहिए।" पेशवा ने कहा, "तिथि निश्चित कर लेने के बाद ही यह कदम उठाया जा सकता है।"

"ठीक है" अज़ीमुल्ला ने कहा, "तिथि का निश्चय श्रीमन्त पेशवा ही

करें।"

सभी की दृष्टियाँ नाना के चेहरे पर जा ठहरी।

पेशवा कुछ क्षण सोचता रहा, फिर बोला, "सभी जगह तैयारियाँ तो हो ही चुकी हैं। निश्चित तिथि यहाँ-वहाँ के नेताओं तक पहुँचाने में भी कुछ समय लगेगा और कुछ समय जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए भी चाहिए। मेरा विचार है कि मार्च के दूसरे सप्ताह में ही कोई तिथि रखनी चाहिए।"

"क्षमा करें, श्रीमन्त पेशवा बहादुर!" तात्या ने नम्रतापूर्वक अपना विचार प्रस्तुत किया, "फिरंगी ठंडे देश के रहनेवाले हैं। हम लोगों को उनकी प्राकृतिक स्थिति भी देखनी होगी। यदि एक बार आप पुनः अपने निर्णय पर विचार करें तो उचित रहे। हिन्दुस्तानियों के लिए गर्मी का मौसम ठीक होता है, जबकि फिरंगी इस मौसम में शक्ति के अनुपात में चौथाई रह जाते हैं।"

खानबहादुर खाँ ने विस्मय से तात्या को देखा। यह समझते देर न लगी कि यह ठिगना व्यक्ति, सैनिक सूझ-बूझवाला योग्य नायक है।

पेशवा तात्या की दूरदर्शिता पर प्रसन्न हुआ, "आपका सुझाव उचित है, तात्या साहब। हमें आप पर गर्व है। अच्छे और विद्वतापूर्ण सुझावों का आदर करना हम जानते हैं। मार्च के बजाय मई माह के अन्तिम सप्ताह में कोई तिथि निश्चित हो तो कैसा रहेगा?

"उचित है, श्रीमान्! मई माह की ३१तारीख ठीक रहेगी। जब आधा हिन्दुस्तान लू और सूरज की तपन में डूबा होगा, तब हमारे सिपाही ठंडे फिरंगियों का लहू बहाकर,इस धरती की प्यास बुझायेंगे। प्लासी के बाद, इस धरती की प्यास नहीं बुझी है, श्रीमन्त! सौ साल बीत चुके हैं, अब इस धरती की प्यास नहीं सही जाती।"

जिस उत्साह के साथ तात्या ने सम्वाद पूरा किया था, उसी उत्साह के साथ उसे सबकी स्वीकृति भी मिल गई।

"महाशान्ति के अनुष्ठान की तिथि ३१ मई, १८५७!" पेशवा ने

हर्षपूर्ण स्वर में कहा, "आप सब एक वार इस पावन तिथि का नामदुहरा-इए और सौगन्ध उठाइये कि इस धर्म युद्ध में कभी पीछे नहीं हटेंगे !"

पहले पेशवा ने और फिर सभी हिन्दू-मुस्लिम नेताओं ने अपने-अपने धार्मिक ढंग से क्रान्ति के प्रति पूर्ण वफादार रहने की शपथ ली।

११

कानपुर का शहर कोतवाल था हुलाससिंह। आयु पेंतीस-चालीस के बीच रही होगी, पर शक्ल-सूरत से पचीस-तीस साल का युवक दीखता था। गोरों की तरह दाढ़ी-मूंछ सफाचट रखता था। उस समय जब देशी लोग दाढ़ी-मूंछ कटवाना पसन्द नहीं करते थे वह अनेक में एक देशी था जिसका चेहरा मैदान नजर आता था। हुलाससिंह देशी कपड़े भी पसन्द नहीं करता था और न ही उसे देशी आदमियों से कोई लगाव था। रंग इत्तिफाकन गोरा था, सो स्वयं को गोरी नस्ल का प्रमाणित करने में हुलाससिंह गौरवान्वित होता। गोरों की तरह उसने भी समय-असमय अनावश्यक रूप से हँसना, उन्हीं की तरह आँखें नचाना और गुलाम काले आदमियों की तरह सिर झुकाकर चलने के बजाय सीना तानकर चलने की आदतें डाली थीं। इंग्लैंड के प्रति श्रद्धा और वफादारी में वह किसी गोरे से पीछे न था और हिन्दुस्तानियों के प्रति घृणा में वह हर गोरे से आगे था। अंग्रेज़ अधिकारियों की खुशामद में वह इतना पटु था कि मनचाहे काम निकाल लिया करता। गरज यह कि पन्द्रह सालों की नौकरी के बीच उसने स्वयं में वाहरी-भीतरी इतने परिवर्तन कर डाले थे कि अगर वह गोरा नहीं बन सका तो काला भ नी रहा।

हुलाससिंह अंग्रेजों के बीच जितना लोकप्रिय था, हिन्दुस्तानियों में उतना ही अलोकप्रिय। देशी लोगों को उससे घृणा थी।

शहर कोतवाली में पुलिस की भारी गारद थी। जहाँ-तहाँ थाने-चौकियाँ थीं, जिनमें दारोगा, नायब दारोगा, मुंशी और सिपाहियों की व्यवस्था थी। नगर की सारी पुलिस-व्यवस्था हुलाससिंह के हाथ में थी। काम बहुत था, पर हुलाससिंह काम करने का कष्ट न उठाता। पहला कारण तो यह था कि कोतवाली में ही नायब कोतवाल और दारोगा, मुंशी आदि बहुत थे, दूसरे हुलाससिंह सारे दिन दूसरे ऐसे कामकाजों में व्यस्त रहता था, जो कोतवाली के न थे। इसके बावजूद वह कोतवाल था और तमाम शहर की जिम्मेदारी उसके नाम के साथ बँधी हुई थी।

हुलाससिंह ने सप्ताह के दिन निश्चित कर रखे थे, जब वह अंग्रेज अधिकारियों के बँगलों पर सुबह से ही सलाम बोलने पहुँच जाता। सुबह इस तरह कटती। दोपहर का एक-आध घंटा वह कोतवाली पर खर्च करता। बाकी समय आराम में गुजारता। शाम के साथ दिन-भर का सब से व्यस्त कार्यक्रम शुरू हो जाता। जैसे ही रोशनी होती, वह चौक के पास वाले एक घर पर पहुँचकर दस्तक देता। कानपुर की सबसे मशहूर तवायफ़ अज़ीजन का घर था वह। शहर के अनेक काले-गोरे शरीफ़ज़ादे वहाँ पहुँचते थे। उसे 'कोठा' कहा जाता था, हालाँकि उसमें कई कमरे थे। मारू-मुंदरे और सजे-सँवरे, पर विशेष रूप से इस घर का एक ही कमरा सबसे ज्यादा सजा हुआ था। यह चौकोर कमरा अन्य कमरों की अपेक्षा काफ़ी बड़ा भी था। देहलीज पड़ते ही पैरदान, और पैरदान उतरते ही फ़र्श पर पाँव पड़ता। कमरे के दाएँ-बाएँ रंग-बिरंगे गलीचे पड़े हुए थे, जिनमें इधर-उधर एक-दो नहीं, सिलसिलेवार अनेक मोटे तकिये लगे हुए थे। दीवारों को रंगा गया था और उनके बीच में अनेक रंगीन तसवीरें बनी हुई थीं, जिनमें नृत्य करती हुई कामुक स्त्रियों के शरीर का उभार दीखता था। सारे कमरे में झाड़फ़ानूस लगे हुए थे।

यह था अज़ीजन का नृत्य-कक्ष।

रोशनी होती और झाड़फ़ानूसों में इन्द्रधनुष के आकर्षक रंग भरते। इस कमरे की हर चीज में एक आकर्षण था।

की पोशाक पहनकर, घुंघरू झननझाती अजीजन इसमें आती तो देखने-वाले को लगता, जैसे कमरे की हर बेजान चीज़ बोलने लगी है। रोशनी में उसके पतले गुलाबी होंठ खुलते, माथे पर लट चमकती, पलकें उठतीं और दर्शक अपलक, बिना हिले-डुले, देखते ही रह जाते। अज़ीज़न की उपस्थिति कमरे की हर वस्तु का सौन्दर्य दो गुना कर देती। शहर के अनेक रईसों की शामें यहीं कटती थीं। अधिकारी अज़ीज़न के हुजूर में खड़े रहते।

पर हुलासिंह के यहाँ आने का उद्देश्य औरों की तरह शामें काटना नहीं था, न ही घुंघरुओं की झंकार उसे खींचकर लाती अपितु वह किसी ऐसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित होकर यहाँ आता था जिसके आगे वह स्वयं को शक्तिहीन अनुभव करता था। उसे अज़ीज़न के घुँघरुओं, कमरे की सत-रंगी रोशनियों, सजावट और अज़ीज़ीन की भाव-भंगिमाओं से, जिन्हें वह रईसों और अफसरों के लिए बेचती थी, कोई लगाव न था। न जाने कौन-सी चीज़ थी, जो उसे अज़ीज़न तक ले आती, आनेके लिए बाध्य कर देती। कई बार हुलासिंह ने स्वयं की इस 'कमज़ोरी' पर काबू पाने की चेष्टा की, पर काबू न पा सका। वह हर शाम घुँघरुओं की झंकार सुनता रहता और नृत्य की समाप्ति के बाद जब दर्शक चले जाते, देर तक अज़ीज़न से गपशप करता रहता और लौट जाता।

और एक दिन ऐसी ही एक रंगीन शाम को हुलासिंह को लगा कि वह अज़ीज़न का तमाशबीन नहीं है और उसे अज़ीज़न को रोक देना चाहिए। जाने क्यों उस दिन उसे अज़ीज़न का घुँघरू झनकाना, कूल्हे मट-काना अच्छा नहीं लगा। दूसरे दिन वह यह निश्चित करके पहुँचा कि आज वह अज़ीज़न को रोक देगा, कहेगा—'इस तरह कूल्हे मटकाकर कूदना मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है।'—पर ऐन वक्त पर वह कुछ न कह सका। होंठों पर आयी बात थूक की तरह वापस निगल गया। अगर अज़ी-ज़न ने कहा कि वह होता कौन है कहनेवाला? अज़ीज़न से उसका रिश्ता ही क्या है? क्योंकर वह अज़ीज़न को यह सब कह सकता है?…तब क्या

कहेगा हुलासिंह ? ···और हुलासिंह ने कुछ नहीं कहा। मन की बात मन में पी गया। हर रोज की तरह दो-चार इधर-उधर की गपशप की और वापस लौट गया।

मगर आज वह फिर वही पुराना निश्चय लेकर चला था। रोज की तरह नृत्य के बाद जब वह खूबसूरत कमरा खाली हो गया और अजीजन थकान अनुभव करती हुई वहीं बैठ गई तो एक लोड़ से टिके कोनवाल हुलासिंह ने जम्हाई ली और पैर फैलाकर लेट गया।

अजीजन की गुलाबी पिंडलियों तक बँधे घुँघरुओं को खोलने के लिए एक बूढ़ी नौकरानी आ गई थी। अजीजन ने दायाँ पैर उसकी ओर बढ़ा दिया।

हुलासिंह ने दूसरी जम्हाई ली। दोनों हाथ कन्धों से ऊँचे किए और बड़े ढीलेपन से नीचे डाल दिए।

एक मुसकान के साथ अजीजन ने पूछा, "आज बहुत आलस आ रहा है, ठाकुर साहब !"

"आज दोपहर आराम नहीं कर पाया।" हुलासिंह ने तीसरी जम्हाई लेकर कहा, "नींद बाकी है।"

अजीजन पहले की ही तरह मुसकराती रही। बोली, "शायद आज कोतवाली में काम ज्यादा था, क्यों ?"

"नहीं। कोतवाली में तो खास काम नहीं था, पर कलेक्टर [illegible] का बुलावा आ गया था। दोपहर भर उनके बँगले पर हाजिरी दी। [illegible] बुरी चीज़ है !"

"आप ठीक कहते हैं।" अजीजन ने दूसरा पैर [illegible] के सामने फैला दिया। पहले पैर से घुँघरुओं का [illegible] कम हुआ। उसने कहा, "कलेक्टर साहब [illegible] काम रहा होगा ?"

"ऐसा खास तो नहीं, पर कलेक्टर [illegible] ही है। इधर-उधर के शहरों से [illegible]

बाँट रहे हैं। कम्पनी सरकार को बड़ी चिन्ता हो गई है कि चपातियाँ क्यों बाँटी जा रही हैं ? मुझे बुलाकर पूछने लगे, 'ये चपातियाँ बाँटने का कोई रिवाज है क्या ?' मैंने कहा कि 'नहीं' तो वह बोले, 'फिर यह क्या गड़बड़ी है ?' मैंने कहा कि मुझे क्या पता।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? मैं चला आया।" कुछ संशय और उलझनभरे स्वर में उसने कहा, "सही बात तो यह है अज़ीज़न कि मेरी खुद ही समझ में नहीं आ रहा, ये चपातियाँ क्यों बँट रही हैं ? हालाँकि मेरे इलाके में अब तक कोई रिपोर्ट नहीं है।"

अज़ीज़न चुप रही।

"सैकड़ों जगह से खबरें मिली हैं कि वहाँ पर बड़ी-बड़ी चपातियाँ पहुँच रही हैं। लोग उनमें से टुकड़े तोड़कर खाते हैं। कुछ लोगों का खयाल है कि यह कोई धार्मिक टोना-टोटका है, मगर मुझे विश्वास नहीं होता। अगर ऐसा होता तो मुसलमान और हिन्दू दोनों उन चपातियों में शरीक कैसे होते ? खबर है कि इन रोटियों को हिन्दू-मुसलमान साथ-साथ तोड़-कर खाते हैं।"

अज़ीज़न के दूसरे पैर से घुंघरू खुल चुके थे। वह कोतवाल की ओर टकटकी बाँधे देखती रही।

हुलाससिंह आश्चर्य में डूबता-उतराता बोला, "मेरी समझ में नहीं आता। इतनी उमर हो गई, मैंने तो रोटियाँ बाँटने का ऐसा टोटका न कभी देखा, न सुना। बूढ़े-पुरानों ने भी इस बारे में कभी कुछ नहीं बताया। गाँव-गाँव रोटियाँ पहुंच रही हैं, अजब तमाशा है !"

अज़ीज़न कुछ नहीं बोली। कोतवाल के चेहरे पर उलझन और चिन्ता के भाव थे। थोड़ी देर वे दोनों चुप रहे। फिर अज़ीज़न ने पूछा, "और क्या कह रहे थे कलेक्टर साहब ?" प्रश्न करने के बाद उसने हुलाससिंह की ओर त्योरी बदलकर यों देखा जैसे एक सपेरा साँप की बन्द पेटी खोलने से पहले उसकी ओर देखता है।

"कहने क्या, परेशान थे ! सभी साहब लोग परेशान हैं। इतना तो पता चलता है कि रोटियाँ बँट रही हैं, एक गाँव से दूसरे गाँव जा रही हैं, मगर यह पता नहीं चलता कि वे क्यों बँट रही हैं और कहाँ से बँटना शुरू हुई हैं ?"

"गाँववाले नहीं बताते ?" अजीजन ने कुरेदा, "उन्हें तो मालूम होगा कि क्यों बँट रही हैं, कहाँ से आयी हैं ?"

"यही तो मुश्किल है।" हुलाससिंह बोला, "उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। वे कहते हैं कि दूसरे गाँव से आयी है। दूसरे गाँववाले बताते हैं कि तीसरे गाँव से आयी है। तीसरे किसी चौथे का नाम लेते हैं ! लोग रोटियों के टुकड़े खाते तो हैं, पर उन्हें यह पता नहीं है कि क्यों खा रहे हैं। बस, डर के मारे खाए जा रहे हैं। ज्यादा डाँट-डपटकर दी, एक-दो जगह पूछताछ हुई तो लोग कहते हैं कि अमुक गाँव से रोटी आयी थी। खबर आयी थी कि एक बड़ा धर्म का काम होनेवाला है, तुम सब उसमें हिस्सा लेना। धर्म का काम क्या है ? यह न उन्हें पता है जो रोटियाँ खा रहे हैं और न उन्हें पता है जो इधर-उधर रोटियाँ पहुँचाते हैं !"

अजीजन के चेहरे पर एक रहस्यपूर्ण मुसकान उभरी। कुछ देर दोनों चुप रहे। एक-दूसरे के विपरीत भाव से।

"है तो चिन्ता की बात !" थोड़ी देर बाद अजीजन बोली, "मगर आपके इलाके में तो अभी ये चपातियाँ आयी नहीं, फिर इतनी परेशानी की क्या जरूरत है ?"

"हाँ, हाँ ! मेरा इलाका तो अभी शान्त है और दूसरे गाँवों से मुझे करना भी क्या है ?"

"कोई और बात करो।" अजीजन ने मुसकान की एक फुलझड़ी कोतवाल पर छोड़ी।

हुलाससिंह थोड़ी देर सोचता रहा, फिर बोला, "मैं बहुत दिनों से एक बात कहना चाहता हूँ। बुरा न मानो तो कहूँ ?"

"कहिए !" अजीजन ने उत्साहपूर्वक कहा, "मैंने आपकी किसी बात

का कभी बुरा माना है, जो आज ही मानूंगी ?"

बात शुरू करने से पहले कोतवाल हुलाससिंह ने अजीज़न को जी भरकर देखा। मन से संकोच किनारे किया। अपने स्वभाव के विपरीत स्वर में मधुरता पैदा की। बोला, "अजीज़न, मुझे तुम्हारा यह नाचना-गाना बिलकुल पसन्द नहीं है। रोटी कमाने के तरीके और भी हो सकते हैं। तुम यह जलील धन्धा छोड़ क्यों नहीं देतीं ?" गले का थूक निगलकर उसने अपनी बात जारी रखी, "नाच-गाने के बीच लोग गंदे-गंदे फिकरे कसते हैं—हा-हा-ही-ही-हू-हू करते हैं, मेरे शरीर में आग लग जाती है। वैसे मैं तुमसे कुछ कहने का अधिकारी नहीं हूँ, फिर भी मन में न जाने ऐसी कौन-सी चीज़ है जो कहने के लिए मजबूर कर रही है।"

अजीज़न के चेहरे पर उदासी छलक आयी।

हुलाससिंह ने एक क्षण रुककर उसके बदले हुए भाव पढ़े। लगा जैसे उसकी बात का गहरा असर हुआ है। सो पहले की ही तरह कहे गया, "मैं कई बार सोचकर आया कि यह सब कहूँगा, पर भय लगता था कि कहीं तुम नाराज़ न हो जाओ, बुरा न मान बैठो। तुम्हारी नाराज़ी मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता, इसीलिए अब तक कुछ कह नहीं पाया। पर अब, जब पचा नहीं पा रहा हूँ और एकदम बेबस हो गया हूँ तो कहना पड़ रहा है। न जाने क्या लगाव हो गया है तुमसे कि बड़े अधिकारपूर्वक सब कुछ कह डालता हूँ।"

अजीज़न हुलाससिंह के चेहरे की ओर नहीं, ज़मीन पर बिछे रंगीन और मुलायम गलीचे की ओर देखती रही। हुलाससिंह जो कुछ कह रहा है, बहुत साफ मन से कह रहा है, वह जानती है। इसके बावजूद उसे हुलास-सिंह का यह सब कहना रुच नहीं रहा है।

हुलाससिंह बोला, "बुरा मत मानना अजीज़न, तुम्हारा आँखें नचाना, शरमाना, कमर में झोंक देना, मुझे कुछ भी पसन्द नहीं है। इस सारे बाज़ार में वेश्याएँ हैं, जो तुम्हारी ही तरह मुसकानें बेचने का धंधा करती हैं, पर मैं उनसे कुछ नहीं कह सकता। तुमसे कुछ अनजाना-सा लगाव है

इसलिए कह रहा हूँ। तुम्हें यह व्यापार बन्द कर देना चाहिए, जो शरीर की गदराहट और मुसकानें बेचने पर चलता है।"

हुलाससिंह चुप हो गया। अजीजन भी चुप थी। कुछ क्षण एक रोनी हुई चुप्पी कमरे में बिखरी रही। अजीजन के शरीर पर कोई घाव नहीं है, पर उसे लगा कि कोई चीज है जो टीस रही है। उसे लग रहा था कि हुलासमिंह कुछ और भी कहेगा पर जब वह नहीं बोला और अजीजन को लगा जैसे उसकी सलाह और नम्रता का कोष चुक गया है, तो बोली, "आप ठीक कहते हैं, साहब! मुझसे आपको लगाव है, जो ये सारी सलाहें आप मुझे दे रहे हैं। मैं आपकी किसी बात का बुरा नहीं मान सकती, क्योंकि अपने-आप पर आपके अधिकार के आगे मैं सिर झुकाती हूँ।"

"मुझे तुमसे यही उम्मीद थी।" हुलाससिंह बीच ही में बोला।

"आप मुझे अपना समझते हैं, जो नेक सलाह दे रहे हैं। मैं यह मानती हूँ कि मुसकराहटें बेचना अच्छा पेशा नहीं है। मुझे खुद भी अच्छा नहीं लगता। मेरे शरीर का हर हिस्सा बिक गया है, बदन का हर कोना कपड़ों में ढका होने के बावजूद नंगा है, फिर भी मुझे शान्ति है क्योंकि मेरी आत्मा नहीं बिकी। मैं हर तरह से बिक जाने के बावजूद अपनी मिट्टी के लिए वफादार हूँ।" बात समाप्त कर अजीजन ने कोतवाल को घूरा।

हुलाससिंह को लगा जैसे अजीजन विषय से अलग दर्शन की बात करने लगी है।

अजीजन ने कहा, "ठाकुर साहब, तवायफ का धन्धा जलील पेशा है, पर ऐसा नहीं कि सबसे अधिक जलील पेशा सिर्फ यही है। उससे भी जलील और गंदा पेशा एक और है।"

कोतवाल आश्चर्यपूर्वक उसकी ओर देखने लगा। अजीजन क्या कह रही है या क्या कहना चाहती है, यह वह अब तक समझ नहीं पाया था।

घृणापूर्वक अजीजन ने कहा, "दुनिया का सबसे जलील पेशा मुसकराहट, जिस्म और उसकी थिरकनें बेचना नहीं, बल्कि अपना वतन बेचना

है। गुलामी करना और अपना मुल्क दूसरों को सौंपकर उनका वफाद रहना, तवायफ के पेशे से भी कहीं ज्यादा जलील पेशे हैं।"

हुलाससिंह समझा। लगा जैसे उसके बदन को नंगा कर कोड़े म गये हों और हर कोड़े से खाल खिंच गयी हो। आत्मपीड़ा से भर ग हुलाससिंह। एक बार उसने बिना कुछ कहे अजीज़न के चेहरे की ओ देखा और फिर नज़र झुका ली, इस अहसास के साथ जैसे अजीज़न नहीं वह खुद तवायफ का पेशा करता रहा है।

अज़ीज़न ने उसकी मनःस्थिति समझी। बोली, "ठाकुर साहब, आपने अपना समझकर मुझे एक सलाह दी और मैंने अपना मानकर आपको एक सलाह दी। मेरी इल्तिजा है, आप बुरा न मानिएगा। आपके कहे मुताबिक मैं यह पेशा छोड़ दूंगी।" उसके स्वर में नम्रता के साथ पीड़ा थी, "पर उम्मीद करती हूं कि आप भी अपना पेशा बन्द कर देंगे। आपके लिए कुछ अपनापन है, इसीलिए ऐसा कहती हूं।"

हुलाससिंह ने कुछ नहीं कहा। अजज़ीन की ओर बिना देखे, फुर्ती से उठा और बाहर चला गया।

१२

फरवरी माह के अन्तिम सप्ताह तक सम्पूर्ण देश मे क्रान्ति का योजनाबद्ध कार्यक्रम पूर्ण हो चुका था। हर सेना के मुख्य और विश्वसनीय देशी अधिकारियों के पास कमल के फूल प्रतीक के रूप मे पहुंचाये जाते थे, जिन्हें हाथ में लेकर वे क्रान्ति में भाग लेने और देश को दासता से मुक्त कर देने में अपना सर्वस्व होम डालने की शपथ उठाते थे। ग्राम-ग्राम में चपातियां घूमती रहीं और सारे देश में विचित्र-सा रहस्यमय और तनावपूर्ण वातावरण बन गया।

पेशवा अनेक राजा-महाराजाओं और महत्त्वपूर्ण लोगों से पत्र-व्यवहार करता रहा। सभी जगह से उसे सम्पूर्ण सहयोग के वचन मिले।

जहाँ-तहाँ क्रान्ति के विश्वासपात्र व्यक्तियों तक निश्चित तिथि पहुँच चुकी थी। विस्फोट शेष था। अंग्रेजों को अब तक इतना संकेत तो मिल चुका था कि जहाँ-तहाँ के देशी सिपाही कारतूसों को लेकर नाराज़ हैं, किन्तु वे यह न सोच पाये थे कि स्थिति बहुत गंभीर हो चुकी है।

नाना पेशवा ने निर्णय किया कि एक बार कुछ विशेष स्थानों का दौरा फिर से कर लिया जाये। बूढ़े सम्राट की स्वीकृति तो मिल चुकी थी, फिर भी एक बार पेशवा उससे भेंट कर मन को धीरज दे लेना चाहता था। मार्च में उसने दिल्ली जाकर सम्राट से साक्षात्कार कर लेना ठीक समझा। वह इस दौरे को पूर्णतः गुप्त रखना चाहता था। उसने कलेक्टर हिलर्सडन के पास सन्देशा पहुँचा दिया कि वह एक माह के लिए तीर्थ-यात्रा पर जानेवाला है।

मार्च के प्रथम सप्ताह में पेशवा 'तीर्थयात्रा' करनेवाला था। पांच मार्च को टीकासिंह शाम के समय बिठूर आया। वह बहुत घबराया हुआ था। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और वह रुक-रुककर बात कर पा रहा था।

अज़ीमुल्ला और पेशवा शतरंज खेल रहे थे। टीकासिंह को साथ लेकर पेशवा का सूबेदार ज्वालाप्रसाद वहाँ पहुँचा। दोनों ने टीकासिंह का चेहरा देखा तो यह समझते देर न लगी कि कोई अप्रत्याशित और गम्भीर घटना घट गयी है। खेलना बन्द कर पेशवा ने उसे पास ही बिठाया और पूछा, "क्या बात है? बहुत परेशान दीखते हो? एकाएक आना कैसे हुआ?"

टीकासिंह ने स्वयं पर काबू रखने का प्रयत्न करते हुए बतलाया, "बहुत बुरा समाचार है, श्रीमन्त! निश्चित तिथि से पूर्व ही बैरकपुर में श्रीगणेश हो गया है और उसे दबा भी दिया गया है।"

"कैसे?" धैर्यपूर्वक पेशवा ने पूछा। वह इतनी जल्दी घबरा जाने-

वाला आदमी नहीं था।

"आज सुबह ही कमांडर ह्वीलर साहब के बावर्ची से खबर मिली है।" टीकासिंह चाहकर भी बेचैनी पर काबू नहीं पा रहा था—"उनके पास लाट साहब का दस्ती सन्देशा आया है कि देशी सिपाहियों पर हर क्षण नज़र रखो। जैसे ही ज़रा-सा सन्देह हो उनके हथियार छीन लो। इसी सन्देश में बैरकपुर की उन्नीसवीं पलटन का हाल है।"

"क्या हुआ है वहाँ ?" अज़ी मुल्ला ने प्रश्न किया।

"बैरकपुरवालों ने सब गुड़-गोबर कर दिया।" खीझ-भरे स्वर में जमादार टीकासिंह ने बताया, "यों तो ज़िन्दगी-भर गुलामी करते रहे थे, मार सहते रहे थे, पर जब बात किनारे तक आ गई थी तो दो मिनट को भी सब्र नहीं कर सके !"

"असली बात कहो !" पेशवा ने उतावलेपन से पूछा। टीकासिंह जिस भाव-भंगिमा और खीझ के साथ घटना सुन रहा था.अब उससे नाना भी प्रभावित होने लगा था।

टीकासिंह ने बताया, "बैरकपुर में उन्नीस नम्बर की देशी पलटन है। २६ फरवरी को वहाँ चरबीवाले कारतूस लाये गये थे। परेड के मैदान पर सिपाहियों को जनरल साहब ने कारतूसों का उपयोग करने का आदेश दिया। पलटन के जमादार ने आगे बढ़कर कारतूसों के उपयोग से इनकार कर दिया, और सिर्फ उसने क्या, सभी सिपाहियों ने इनकार कर दिया।"

"फिर ?"

"फिर क्या ? उस दिन तो फिरंगी अफसर चुप हो गया। उसने सारी खबर लाट साहब को भेज दी। पर बात-की-बात में तीसरे ही दिन लाट साहब ने बर्मा से एक फिरंगी पलटन बुलवाकर पूरी देशी पलटन से हथियार रखवा लिये। सबका कोर्ट मार्शल कर दिया। अब पता चला है कि फिरंगी बाहर के देशों से गोरी फौजें बुलवा रहे हैं।"

"वहाँ निश्चित तिथि की खबर पहुँच चुकी थी या नहीं ?" पेशवा ने

पास ही खड़े सूबेदार ज्वालाप्रसाद से प्रश्न किया। तिथि के सन्देश जहाँ-तहाँ पहुँचाने का कार्य उसके सिपुर्द था।

"जी, श्रीमन्त !" ज्वालाप्रसाद ने तत्परतापूर्वक कहा, "तिथि का समाचार तो सभी जगह पहुँच चुका है।"

पेशवा के चेहरे पर चिन्ता की बदली घिरी, "यह तो बहुत बुरा हुआ !" उखड़े हुए स्वर में वह बोला, "इस तरह की छोटी-छोटी भूलें दुश्मन को सावधान कर देंगी।"

अज़ीमुल्ला ने ढाढ़स बँधाया। बोला, "ख़ैर, श्रीमन्त अधिक चिंतित न हों। बैरकपुरवालों ने भूल तो की है, मगर ऐसी नहीं कि उससे मायूस हो जाया जाये। और अब तो समय भी दूर नहीं है !" फिर उसने टीका-सिंह से कहा, "इस घटना का समाचार अपने अन्य साथियों तक न पहुँचने दीजिएगा। लोगों में अगर जरा भी मायूसी फैली तो काम में ढीलापन आ जायेगा।"

पेशवा चुप रहा। प्रारम्भ में ही ऐसी घटनाएँ हो जायेंगी, उसने सोचा भी न था। फिर भी उसने टीकासिंह को चिन्तित न होने की सलाह दी। यह भी कहा कि निश्चित तिथि तक वह किसी भी घटना से विच-लित न हो और अपने साथियों में भी किसी तरह की कमजोरी या घबराहट न फैलने दे।

टीकासिंह वापस लौट गया।

दूसरे दिन ही पेशवा निश्चित कार्यक्रम के अनुसार तीर्थयात्रा के बहाने बिठूर से निकल पड़ा। उसके साथ कुछ सेवकों के अलावा बाला साहब और अज़ीमुल्ला भी थे। सर्वप्रथम उसने दिल्ली पहुँचकर बूढ़े सम्राट से नेतृत्व का वायदा लिया। सारे आयोजन का विवरण दिया और अम्बाला चला गया। पेशवा की इस ऐतिहासिक यात्रा ने क्रान्ति की योजना को अन्तिम रूप दे दिया। उसने अनेक स्थानों पर गुप्त मन्त्रणाएँ कीं।

वहाँ मुख्य लोगों से भेंट की। हर जगह की सैनिक स्थिति की जानकारी ली।

कई-कई जगहों पर तो इन लोगों ने अंग्रेज़ों से मुकावले की तैयारियाँ भी देखीं। व्यापक समर्थन पाकर पेशवा विठूर वापस हुआ। लौटते में वह लखनऊ भी गया। यहाँ उसके स्वागत में एक भारी जुलूस निकला। नीतिज्ञों ने अपनी ओर से संगठन की मजवूती और योजनावद्ध कार्य चलाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी थी, किन्तु हर तरह के संगठन और योजनाओं के वावजूद वे देश में फैले असंतोष को थाम नहीं सके। निश्चित तिथि से पूर्व ही विस्फोट हो गया। लखनऊ में ही नाना और अज़ीमुल्ला को समाचार मिला कि वरहमपुर में क्रान्ति हो गयी है।

खवर थी कि वरहमपुर की चौंतीसवीं नेटिव इन्फेन्ट्री के सिपाही मंगल पांडे ने अपने एडजूटेंट जनरल वफ और सार्जेंट मेजर पर परेड के मैदान में गोली चला दी। वे वच तो गये, पर वाद में मंगल पांडे को फाँसी दे दी गई। गार्ड ने अंग्रेज़ अफसरों का वचाव भी नहीं किया और खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहा था, अतः उनका भी कोर्ट मार्शल हुआ।

पेशवा और उसके साथियों ने जी थामकर यह समाचार सुना। स्पष्ट दीख रहा था कि योजना मटियामेट हुई जा रही है। फिर भी वे निश्चित तिथि तक धैर्य धारण किये रहना चाहते थे। जल्दी-जल्दी सभी लोग कानपुर लौटे। भय था कि कहीं वैरकपुर की चिनगारी वहाँ भी अपना असर न दिखा दे। नाना सीधा विठूर गया। अज़ीमुल्ला ने कानपुर में रुककर मेरी से भेंट की। इस भेंट में उसे सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण जो समाचार मिला था उसे दूसरे दिन विठूर पहुँचकर उसने पेशवा को सुनाया। अंग्रेज़ पूरी तरह चौकन्ने हो गये हैं और वे भी तैयारियाँ कर रहे हैं। समझ चुके हैं कि सभी जगह सैनिक विद्रोह हो जायेगा।

अज़ीमुल्ला ने यह खवर भी दी कि वर्मा से गवर्नर जनरल ने गोरी फौजें वुलाना आरम्भ कर दिया है।

१३

शाम को कलेक्टर हिलर्संडन ने शहर के सभी सैनिक-असैनिक अंग्रेज अफसरों की बैठक बंगले पर बुलवायी।

मार्च और अप्रैल में एकाएक सभी जगहों पर कुछ-न-कुछ घटनाएँ हुई थीं और अंग्रेजों में खलबली मच गई थी। अप्रैल माह के अन्त में, कानपुर में इस समाचार से कि अम्बाला, लखनऊ और मेरठ में अंग्रेज अधिकारियों के बंगले जला दिये गये हैं, बड़ी घबराहट फैली। अवध में इधर-उधर ड्यूटियों पर तैनात अनेक अंग्रेजों के परिवार कानपुर में थे। कमाण्डर व्हीलर को इनकी बहुत चिन्ता थी। कुछ लोगों ने लखनऊ से कानपुर में अपने परिवारों के पास आ जाने की प्रार्थना भी की, पर अफसरों ने स्वीकृति नहीं दी क्योंकि लखनऊ में भी बहुत तनावपूर्ण वातावरण था।

इस बैठक में विशेष रूप से कलेक्टर ने पेशवा और अजीमुल्ला को आमंत्रित किया था। हिलर्संडन को इस आपत्तिकाल में नाना पर बहुत भरोसा था। नाना की सहृदयता और मित्रता का वह सदा ही कायल रहा था। कमाण्डर व्हीलर ने नाना को अपना विश्वास सौंपने में कुछ आना-कानी की थी पर अधिक नहीं। हिलर्संडन ने जिस ढंग से पेशवा पर अपना विश्वास व्यक्त किया, उसके बाद व्हीलर जिद न कर सका। इसके अति-रिक्त पेशवा पर व्हीलर के अविश्वास का कोई कारण न था। यदि अविश्वास का कारण था तो मात्र यह कि पेशवा हिन्दुस्तानी था।

संध्या समय बंगले के बरामदे में भोजन के साथ बातचीत प्रारम्भ हुई। बंगले के चारों ओर विशेष सैनिक-व्यवस्था की गई थी। हिलर्संडन ने पहले तो पेशवा और अजीमुल्ला को बैठक में उपस्थित होने पर धन्यवाद दिया, फिर अंग्रेजों से उनके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर लम्बा व्याख्यान झाड़ने के बाद बोला, "पेशवा बहादुर खूब अच्छी तरह जानते हैं कि उनके दोस्तों पर क्या मुश्किल आ पड़ी है। सभी देसी रिसालों को यह गलतफहमी हो गई है कि हम लोग उनका धर्म बिगाड़ना चाहते हैं, जबकि श्रीमन्त पेशवा खूब

अच्छी तरह जानते हैं कि उन कारतूसों में कोई मिलावट नहीं है और न ही हम लोग हिन्दुस्तानियों का कोई धार्मिक अपमान करना चाहते हैं। हमने इस ग़लत- फहमी को मिटाने की काफी कोशिश की है, मगर दुख है उनका मन साफ नहीं कर सके।" कहते-कहते वूढ़ा अंग्रेज़ कलेक्टर एक क्षण रुका, फिर टूटे स्वर में वोला, "देशी रिसालों ने कई शहरों में उत्पात किये हैं और भय है कि कहीं कानपुर में भी ऐसा ही न हो, अतः हमें सुरक्षा की तैयारियाँ करनी चाहिए। श्रीमन्त पेशवा वहादुर से मेरी प्रार्थना है कि वेढ़ें एक सच्चे मित्र की तरह आपत्तिकाल में हमें सहायता दें।"

कमांडर ह्वीलर ने भी पेशवा से सहायता की अपील की, "हिन्दुस्तानी सिपाही अन्धविश्वासी हैं। वे नहीं जानते कि हम लोग उनका नुकसान नहीं कर रहे हैं, वल्कि उन्हें पुरानेपन से उवार रहे हैं।"

पास वैठे अज़ीमुल्ला की अँगुलियाँ टेवल की कनातों पर कस गईं।

ह्वीलर कह रहा था, "हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी सारी दुनिया की तरह आगे वढ़ें, हम से भी आगे।"

पेशवा की इच्छा हुई कि चीखकर कहे, 'हम तुमसे किसी भी तरह पीछे नहीं हैं!'

ह्वीलर कहे गया, "श्रीमन्त पेशवा वहादुर विद्वान और योग्य हैं। वे सही हालत अच्छी तरह समझते हैं। हमारा उन पर पूर्ण विश्वास है। आशा है कि वे किसी भी परिस्थिति में हमारा साथ न छोड़ेंगे।" उसके स्वर में निवेदन के साथ घिघियाहट का पुट था।

अज़ीमुल्ला को कमांडर का टूटता आत्मविश्वास अनुभव कर खुशी हुई। किसी अंग्रेज़ को उसने जीवन में पहली वार इतना परेशान और दुखी देखा था, किन्तु उसने अपने चेहरे पर हर्ष के ये भाव प्रकट नहीं होने दिये, इसके विपरीत सहानुभूति के ऐसे भाव प्रकट किये, जिनसे वह उनके मन में विश्वास कायम रखे।

वूढ़े ह्वीलर ने उसी तरह दुखी स्वर में वात जारी रखी, "मेरठ और अम्वाला से खवरें मिली हैं कि वहाँ के लोगों ने अंग्रेज़ों के वंगलों में आग

गया थी और उनका सामान लूट लिया। कानपुर में हालांकि ऐसी कोई बात नहीं हुई है, पर हमें भय है कि कहीं इसी तरह के झगड़े यहाँ भी न उठ खड़े हों। यहाँ सैकड़ों अंग्रेज परिवार बसे हुए हैं। ईश्वर न करे यदि यहाँ ऐसा कुछ हो गया तो अंग्रेज स्त्री-बच्चों के जीवन भारी खतरे में पड़ जायेंगे।" कुछ रुककर उसने कहा, "श्रीमन पेशवा बहादुर पर ही हमें भरोसा है।"

पेशवा की ओर से अजीमुल्ला ने कमांडर को सहायता का आश्वासन दिया तथा इस आपत्तिकाल को मैत्री की परीक्षा का समय बताया। बोला, "आप लोग निश्चिन्त रहें, श्रीमन अपने साथ हुए अन्याय के बावजूद अपना कर्तव्य निबाहने में पीछे नहीं हटेंगे। वैसे कानपुर की जनता और सेना दोनों ही वफादार हैं। यहाँ ऐसी कोई बात नहीं हो सकती। फिर भी खुदा न करे ऐसा कुछ हो गया तो पेशवा बहादुर आपको पूरी मदद देंगे।

अंग्रेज अधिकारियों के उदास चेहरों पर कुछ चमक आयी। उन्हें लगा जैसे सिर पर मनों बोझ था, वह यदि दूर नहीं हुआ है तो कम तो हो ही गया है।

ह्वीलर ने हर्षित होकर कहा, "हमें श्रीमन पेशवा से यही आशा थी।"

पेशवा ने धन्यवाद दिया।

कलेक्टर बोला, "वैसे हमने सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। सभी अंग्रेज परिवारों की रक्षा के लिए एक किला भी बनवा रहे हैं। यदि आवश्यकता हुई तो उसमें प्राणरक्षा करने में सुविधा होगी।"

कुछ अर्थपूर्ण दृष्टि से पेशवा ने अजीमुल्ला की ओर देखा, फिर पूछा, "कहाँ?"

"आपको बतायेंगे।" कमांडर ह्वीलर ने उत्तर दिया, "सुरक्षात्मक दृष्टि से एक भारी किले का निर्माण गंगा के दक्षिण में चल रहा है। खाइयाँ खुदना ही शेष है।"

"बेहतर है।" अजीमुल्ला भारी स्वर में बोला, "बचाव तो होना ही

चाहिए। किले में खाने-पीने का इन्तजाम पहले से ही कर लीजिएगा।"

"वह भी कर लेंगे, खान साहब !" कमांडर ह्वीलर ने निस्संकोच उत्तर दिया।

अज़ीमुल्ला की इच्छा हुई थी, कह दे, "अच्छा बन्दोवस्त कर लीजिएगा।"

कलेक्टर द्वारा बैठक बुलाने का एकमात्र उद्देश्य पेशवा की सहायता प्राप्त कर लेना ही था। बैठक समाप्त हुई। हिलर्सडन और ह्वीलर ने पेशवा और अज़ीमुल्ला को 'सुरक्षा का किला' दिखाने के लिए रोक लिया था।

ह्वीलर ने पेशवा को बताया कि उसने शहर तथा सेना में अपने गुप्तचर छोड़ रखे हैं। उसने यह भी कहा कि सिपाहियों में असन्तोष तो है पर बगावत (उसके शब्दों में) की सम्भावना नहीं है। बड़ी लापरवाही से बोला, "और अगर ऐसा हुआ भी तो देशी सिपाही यहाँ के ईसाई या अंग्रेज़ों को कोई क्षति न पहुँचाकर दिल्ली चले जायेंगे। अतः किले को अधिक मजबूत नहीं बनाया गया है। वह अस्थायी है।"

पेशवा ने पूछा, "शस्त्रागार की रक्षा का क्या प्रबन्ध है ?"

"देशी सैनिक हटाकर अंग्रेज़ सिपाही तैनात कर दिए गये हैं, पर अधिक नहीं। उन्हें वहाँ दिन-रात रहने के आदेश दिये गये हैं।" उसने यह भी कहा कि वह देशी सिपाहियों पर अपनी कमज़ोरी प्रकट नहीं होने देना चाहता, जबकि सही स्थिति यह है कि अंग्रेज़ सैनिक बहुत डरे हुए हैं।

'सुरक्षा का किला' तैयार था। कुछ स्थानों पर ही काम शेष रहा था।

बातचीत में ह्वीलर बार-बार सुरक्षा के नाम पर बने ऋषियों जैसे आश्रम को किला कहता। इसमें दो बैरकें थीं, जिनकी दीवारें एक-एक ईंट की थीं। छतों को पुख्ता न बनाकर उन पर फूस बिछाया गया था।

चाहिए। किले में खाने-पीने का इन्तज़ाम पहले से ही कर लीजिएगा।"

"वह भी कर लेंगे, खान साहब !" कमांडर ह्वीलर ने निस्संकोच उत्तर दिया।

अज़ीमुल्ला की इच्छा हुई थी, कह दे, "अच्छा बन्दोबस्त कर लीजिएगा।"

कलेक्टर द्वारा बैठक बुलाने का एकमात्र उद्देश्य पेशवा की सहायता प्राप्त कर लेना ही था। बैठक समाप्त हुई। हिलर्सडन और ह्वीलर ने पेशवा और अजीमुल्ला को 'सुरक्षा का किला' दिखाने के लिए रोक लिया था।

ह्वीलर ने पेशवा को बताया कि उसने शहर तथा सेना में अपने गुप्तचर छोड़ रखे हैं। उसने यह भी कहा कि सिपाहियों में असन्तोष तो है पर बगावत (उसके शब्दों में) की सम्भावना नहीं है। बड़ी लापरवाही से बोला, "और अगर ऐसा हुआ भी तो देशी सिपाही यहाँ के ईसाई या अंग्रेज़ों को कोई क्षति न पहुँचाकर दिल्ली चले जायेंगे। अतः किले को अधिक मजबूत नहीं बनाया गया है। वह अस्थायी है।"

पेशवा ने पूछा, "शस्त्रागार की रक्षा का क्या प्रबन्ध है ?"

"देशी सैनिक हटाकर अंग्रेज़ सिपाही तैनात कर दिए गये हैं, पर अधिक नहीं। उन्हें वहाँ दिन-रात रहने के आदेश दिये गये हैं।" उसने यह भी कहा कि वह देशी सिपाहियों पर अपनी कमजोरी प्रकट नहीं होने देना चाहता, जबकि सही स्थिति यह है कि अंग्रेज़ सैनिक बहुत डरे हुए हैं।

'सुरक्षा का किला' तैयार था। कुछ स्थानों पर ही काम शेष रहा था।

बातचीत में ह्वीलर बार-बार सुरक्षा के नाम पर बने ऋषियों जैसे आश्रम को किला कहता। इसमें दो बैरकें थीं, जिनकी दीवारें एक-एक ईंट की थीं। छतों को पुख्ता न बनाकर उन पर फूस बिछाया गया था।

अज़ीमुल्ला की इच्छा हुई कि ह्वीलर से कहे, 'इस किले में अच्छी तो पुरानी बैरकें ही हैं,' पर वह कुछ नहीं बोला। ह्वीलर ने जैसा, जो कुछ बताया, देखता गया। ह्वीलर ने सारा 'आश्रम' पेशवा को दिखा दिया। इन दोनों बैरकों के चारों ओर खाई खोदी गई थी, जो विशेष गहरी नहीं थी। एक कुआँ भी खोद दिया गया था, ताकि आपत्तिकाल में किले में घिरनेवालों को जलकष्ट न हो।

पूरा किला देखने के बाद जब वे बाहर निकले तो ह्वीलर ने बड़े उदास स्वर में कहा, "अब तो हमारी 'उम्मीदों का किला' यही है।"

अज़ीमुल्ला मुसकराया, "'नाउम्मीदी का किला' भी कह सकते हैं। वक्त भी कितना धोखेबाज होता है!"

ह्वीलर ने उसके कथन पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

बैरकपुर और बरहमपुर की घटनाओं ने क्रान्ति की योजना को धक्का पहुँचाया। कानपुर के सिपाहियों ने जब अंग्रेज़ों की हलचलें देखीं, तो वे अत्यधिक उग्र हो गये। इतने उग्र कि टीकासिंह, नन्हे नवाब तथा अन्य लोगों को निश्चित तिथि तक उन्हें रोके रखना मुश्किल लगने लगा। छावनी के सिपाहियों में रोज नई-नई बातें होतीं, "फिरंगियों ने सुरक्षा के लिए किला बना लिया है, इधर-उधर से गोरी फौजें भी बुलायी जा रही हैं।" खबर उड़ी कि जैसे ही गोरी फौजें कानपुर आयीं, देसी सिपाहियों के हथियार रखवा लिये जायेंगे और सिपाही जेल में ठूँस दिये जायेंगे। सुबह-शाम की अफवाहों और बातों को दबाकर क्रान्ति के नेता और देसी फौजों के जमादार, सूबेदार, जैसे-तैसे सिपाहियों को काबू किये रहे। टीकासिंह के सामने तो एक-दो बार यह स्थिति आयी कि सिपाहियों ने उसे कोसा और कहा, "तुम लोग हमें मरवा देना चाहते हो। हर जगह फिरंगी ताकत बढ़ा रहे हैं। उनकी पलटनें आ रही हैं और तुम हमें रोक रहे हो?" सिपाहियों ने उस पर आरोप लगाया कि वह अंग्रेज़ों से मिला हुआ है, किन्तु टीकासिंह

संतुलित रहा । सिपाहियों को समझा-बुझाकर कुछ दिन ठहरने की सलाह दी ।

स्थिति क्रमशः जटिल होती जा रही थी और पेशवा ने इन नेताओं से स्पष्ट कह रखा था, "जैसे भी हो निश्चित तिथि तक सिपाहियों को सँभाले रखो, अन्यथा सब चौपट हो जायेगा ।"

चौदह मई को जैसे ही मेरठ और दिल्ली की क्रान्ति का समाचार कानपुर पहुँचा, सिपाही उतावले हो उठे, "अब देर क्या है ?" योजना को यह तीसरा और सबसे जबरदस्त धक्का था। ऐसा धक्का, जिसने इतिहास की बढ़ती गति को पुनः जहाँ-की-तहाँ कर दिया। बड़ी मुश्किल से सिपाहियों को इस बार भी थामा गया ।

अठारह मई । जब सिपाहियों को परेड मैदान पर चाँदमारी के लिए कारतूस दिये गये तो न जाने कैसे यह अफवाह फैल गई कि ये वही कारतूस हैं, जिनमें चरबी का उपयोग हुआ है । एक साथ कई सिपाही आगे बढ़े और सामने खड़े ब्रिगेडियर अंशवर्नहम और कैप्टन टर्नर से कारतूसों का उपयोग न करने के लिये कह दिया ।

स्वभाव के अनुसार अंशवर्नहम ने कुछ आँखें दिखाई तो भरी रायफल लिए एक जोशीला सिपाही पंक्ति से दो कदम आगे बढ़ आया ।

अंशवर्नहम और टर्नर के दिमाग में बरहमपुरवाली घटना ताजी हो गई । उल्टे पैरों लैया-पैंया भागते हुए दोनों अफसर कमांडर जनरल सर ह्वीलर के पास पहुँचे । सारा हाल कह सुनाया ।

ह्वीलर बहुत आंतकित हुआ, फिर भी वह निराश हो जानेवाला आदमी नहीं था । जब कप्तान टर्नर और ब्रिगेडियर ने एकमत होकर देशी सिपाहियों के हथियार डलवा लेने की सलाह दी और आगे बढ़ आनेवाले सिपाहियों के कोर्टमार्शल के आदेश चाहे तो ह्वीलर ने साफ इनकार कर दिया । बोला, "बेवकूफ हो । उनके हथियार ले लेने और कोर्टमार्शल कर देने पर, जो न होनेवाला होगा, वह आज ही हो जायेगा । यह विचार ही मूर्खतापूर्ण है ।"

दोनों अफसरों को कमांडर की हठधर्मी बुरी लगी। पर क्या करते, चुप हो गये। उस दिन परेड भी नहीं हुई। ह्वीलर अपने कार्यालय की खिड़की से परेड मैदान की ओर देखता रहा। सिपाही कुछ देर तक अनुशासनहीन हुए, लापरवाही-से घूमते-टहलते रहे, फिर अपने-अपने स्थानों पर चले गये। इस दिन ह्वीलर ने समझ लिया कि कानपुर में भी वही होगा, जो अनेक जगहों पर हुआ है। उसने लखनऊ के कमिश्नर को पत्र भेजा। लिखा कि 'कानपुर असुरक्षित है। जल्दी ही मदद भेजिये।' एक पत्र पेशवा के नाम रवाना किया, जिसमें इन्हीं शब्दों में मित्रता और वायदे का हवाला देते हुए मदद माँगी गई थी और उन्नीस तारीख होते-न-होते शहर के अंग्रेज स्त्री-बच्चों के लिए नव-निर्मित सुरक्षा के किले का रास्ता खोल दिया गया। यहाँ अंग्रेज फौजी दस्ता तैनात हुआ। कानपुर में कुल इकसठ अंग्रेज तोपची थे और छह तोपें। इनमें से चार तोपें सुरक्षा के किले पर पहुँचाई गईं जिनके साथ चालीस यूरोपीय तोपची रखे गये और दो तोपें छावनी में ही शस्त्रागार पर। शेष इक्कीस यूरोपियन तोपचियों के अधीन रहीं। इतनी व्यवस्था करवाने के बावजूद ह्वीलर की घबराहट कम न हुई थी। वह बेचैनी के साथ सहायता की प्रतीक्षा कर रहा था। इसी बीच अनेक अंग्रेज अधिकारियों ने उससे देशी सिपाहियों के प्रति कुछ कठोर होने के लिए कहा, पर वह अपने पूर्व-विचार पर अड़ा रहा और उसने सिपाहियों के प्रति नम्रता अपनाये रखी।

उन्नीस मई की प्रातःकाल कमांडर के कार्यालय में कमिश्नर मोरलैण्ड पहुँचा। उसने भी अन्य सभी अधिकारियों की तरह एक ही बात कही: "यदि सिपाहियों पर काबू न किया गया तो [illegible] हो जायेगा।"

ह्वीलर ने उत्तर दिया, 'इस स्थिति में कोई खतरा नहीं होगा। हाँ, यदि जरा भी कठोरता की तो खतरा हो जायेगा।'

मोरलैण्ड जिद्दी था। उसने कहा, "[illegible] हम डरपोक हैं?"

ह्वीलर को मोरलैण्ड की जिद बुरी लगी। स्थिति की [illegible]

उसका मानसिक संतुलन विगड़ने लगा था। जितने ऊँचे स्वर में कमिश्नर ने प्रश्न किया था, उतने ही ऊँचे स्वर में उसने उत्तर दिया, "यदि इस समय डरपोक वनकर ही जान वचाई जा सकती है, तो सौदा महँगा नहीं।"

मोरलैण्ड गुर्राया, "मेरी समझ में नहीं आता, आप अपनी ज़िद पर क्यों अड़े हुए हैं ? सिपाहियों ने अशिष्टता की सीमा तोड़ दी। वे आपके अफसरों पर वंदूकें तानने लगे और एक आप हैं कि उन्हें दण्ड देना तो दूर रहा, रोकने तक के लिए तैयार नहीं हैं। यह तो सरासर व्रिटिश साम्राज्य का अपमान है। मैं गवर्नर जनरल को इस दव्वूपन की रिपोर्ट दूँगा।"

"आप जो चाहें कर सकते हैं। ज़िद पर आप अड़े हुए हैं, या मैं ?" चिढ़कर ह्वीलर ने उत्तर दिया। उसे धमकियाँ सुनने और उन्हें वर्दाश्त करने की आदत नहीं थी। चीखकर वोला, "मैं आपसे व्यर्थ की वहस नहीं करना चाहता। ऐसे मौके पर, जव हमारे पास शक्ति नहीं है, हम उन लोगों को रोकें-डाँटे, जो शक्ति में हमसे कई सौ गुना वढ़े-चढ़े हैं ? वड़ी छोटी-सी वात आपकी समझ में नहीं आती, इसका मुझे वेहद अफसोस है !"

एकाएक ही मोरलैण्ड को लगा कि कमांडर सही है। फिर भी मोरलैण्ड स्वयं को गलत मानने को तैयार नहीं था—"फिर आप कव तक ये दव्वू तरीका अपनायेंगे ?"

"जव तक हमारा जीवन खतरे में है।" ह्वीलर ने जवाव दिया, "मैंने सर हेनरी के पास संदेशा भेजकर लखनऊ से सहायता माँगी है। पेशवा को भी लिखा है। जव तक शक्ति नहीं जुट जाती, हम सिर नहीं उठा सकते और यदि हम भूल से भी ऐसा कर वैठें तो परिणाम वहुत भयंकर होंगे।'

मोरलैण्ड पेशवा का नाम सुनकर भड़का, "आपको पेशवा पर विश्वास है ?"

"वेशक ! यदि पेशवा ने हमारी सहायता न भी की, तव भी हमें इतना अवश्य विश्वास है कि वह अंग्रेज़ स्त्री-वच्चों की जान वचा लेगा। यदि वह अंग्रेज़ों का सहायक नहीं तो सहृदय मनुष्य ज़रूर सावित होगा।"

वे सोचने लगे कि अंग्रेज उन्हें घेरकर या तो मरवा देना चाहते हैं, या फिर उन्हें लूट लेना उनका उद्देश्य है।

इक्कीस मई की सुबह पेशवा स्वयं भी अपने साथ सौ आदमी लेकर बिठूर से कानपुर आ गया। उसके साथ अज़ीमुल्ला, बाला साहब, तात्या और राव साहब भी थे।

जनरल ह्वीलर ने उनका स्वागत किया।

बूढ़े कलेक्टर को भी पेशवा के आगमन से राहत मिली। वह बहुत घबराया हुआ था। नाना और अज़ीमुल्ला ने सभी को साहस दिलाया। हिलर्संडन बोला, "श्रीमंत, यहाँ के सिपाहियों की वफादारी पर विश्वास कर मैंने जबरदस्त भूल की। यदि मैं जीवित बच भी गया तो गवर्नर जनरल बहादुर को क्या मुँह दिखाऊँगा ? उन्होंने अनेक बार पत्र भेजकर मुझसे सहायता के लिए पूछा था। मैं उन्हें हर पत्र के उत्तर में कानपुर वालों की ओर से आश्वस्त करता गया। माई गॉड !" उसका गला भर्राने लगा, जैसे गई रात कोई तेल की चीज़ खाकर सो गया था, "कितने विश्वासघाती हैं यहाँ के लोग ?"

अज़ीमुल्ला ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। कानपुरवालों ने जो कुछ किया है, वह आप-जैसे लोगों के लिए ठीक नहीं था। आप जैसे मित्रों के लिए तो कुछ और ही योग्य है। और उन्हें वही सब करना चाहिए था।"

हिलर्संडन अज़ीमुल्ला का मतलब नहीं समझा, "मुझे जीवन की चिंता नहीं है। अब तक तो मामला थमा हुआ है, किन्तु ईश्वर न करे यदि कहीं कोई अप्रिय घटना घट गयी तो उस सरकारी खजाने का क्या होगा, जिस की पूरी जिम्मेवारी मेरे ऊपर है।"

"कैसा खजाना ?" अज़ीमुल्ला ने प्रश्न किया।

"कम्पनी सरकार का खजाना।" बूढ़े कलेक्टर ने कहा, "उसमें करीब एक लाख पौंड से भी अधिक हैं और दुर्भाग्य से अब तक वहाँ की सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं हो सका है।"

"ओह ! यह तो सचमुच बड़ी चिन्ताजनक बात है।" अज़ीमुल्ला

बोला। फिर उसने पास बैठे कमांडर को देखा, जो दोनों हथेलियाँ कनपटियों के दाएँ-बाएँ टिकाये हुए सोच-विचार में निमग्न था, "अब तक ह्वीलर साहब ने वहाँ कोई व्यवस्था करवायी है?"

ह्वीलर का मौन टूटा, "आप नहीं जानते, खान साहब कि मैं किस बड़ी उलझन में पड़ गया हूँ? मिस्टर हिलर्संडन की तरह मैंने भी सिपाहियों पर भरोसा कर गोरी फौजों की सहायता नहीं माँगी। आज मेरे पास विश्वसनीय सैनिक नहीं है। खजाने के लिए मैं कोई भी प्रबन्ध नहीं कर सकता। जितने आदमी थे, सब शस्त्रागार और किले पर लगा दिये गये हैं।"

अज़ीमुल्ला ने उसे टटोला, "बाहर से अब भी सहायता माँगी जा सकती है?"

"माँग तो रहा हूँ।" ह्वीलर बोला, "दो खत लिखे थे। एक श्रीमत पेशवा को, जिनकी सहायता मिल गई है। दूसरा लखनऊ को—सर हेनरी लारेंस के नाम। वहाँ से अब तक कोई उत्तर नहीं मिला है।"

अज़ीमुल्ला और नाना ने एक-दूसरे को देखा। किसी भी क्षण ह्वीलर को सहायता मिल सकती है।

हिलर्संडन का चेहरा लटका हुआ था।

पेशवा बोला, "आप चिन्ता न कीजिए, मिस्टर हिलर्संडन! आपके खजाने की सुरक्षा का जिम्मा हम लेते हैं। सौ सैनिक हमारे साथ और आये हैं। उन्हें लेकर हम स्वयं कम्पनी के खजाने की रक्षा करेंगे।"

अज़ीमुल्ला मुसकराया, "बस, अब मिस्टर हिलर्संडन का बोझ हल्का हो गया है।"

"आप हमारे सच्चे मित्र हैं, पेशवाबहादुर।" हिलर्संडन आभार प्रकट करते हुए बोला, "कानपुर की रक्षा आपके सिपुर्द है।"

"निश्चिंत रहिए।" पेशवा उठा। सम्मान में हिलर्संडन और कमांडर दोनों उठे।

नाना ने बड़ी कूटनीति और सावधानी से तीनों मोर्चों पर अंग्रेज़ों को

वे सोचने लगे कि अंग्रेज उन्हें घेरकर या तो मरवा देना चाहते हैं, या फिर उन्हें लूट लेना उनका उद्देश्य है।

इक्कीस मई की सुवह पेशवा स्वयं भी अपने साथ सौ आदमी लेकर विठूर से कानपुर आ गया। उसके साथ अज़ीमुल्ला, वाला साहव, तात्या और राव साहव भी थे।

जनरल ह्वीलर ने उनका स्वागत किया।

वूढ़े कलेक्टर को भी पेशवा के आगमन से राहत मिली। वह वहुत घवराया हुआ था। नाना और अज़ीमुल्ला ने सभी को साहस दिलाया। हिलर्सडन वोला, "श्रीमंत, यहाँ के सिपाहियों की वफादारी पर विश्वास कर मैंने जवरदस्त भूल की। यदि मैं जीवित वच भी गया तो गवर्नर जनरल वहादुर को क्या मुँह दिखाऊँगा? उन्होंने अनेक वार पत्र भेजकर मुझसे सहायता के लिए पूछा था। मैं उन्हें हर पत्र के उत्तर में कानपुर वालों की ओर से आश्वस्त करता गया। माई गॉड!" उसका गला भर्राने लगा, जैसे गई रात कोई तेल की चीज़ खाकर सो गया था, "कितने विश्वासघाती हैं यहाँ के लोग?"

अज़ीमुल्ला ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। कानपुरवालों ने जो कुछ किया है, वह आप-जैसे लोगों के लिए ठीक नहीं था। आप जैसे मित्रों के लिए तो कुछ और ही योग्य है। और उन्हें वही सव करना चाहिए था।"

हिलर्सडन अज़ीमुल्ला का मतलव नहीं समझा, "मुझे जीवन की चिंता नहीं है। अव तक तो मामला थमा हुआ है, किन्तु ईश्वर न करे यदि कहीं कोई अप्रिय घटना घट गयी तो उस सरकारी खजाने का क्या होगा, जिस की पूरी जिम्मेवारी मेरे ऊपर है।"

"कैसा खजाना?" अज़ीमुल्ला ने प्रश्न किया।

"कम्पनी सरकार का खजाना।" वूढ़े कलेक्टर ने कहा, "उसमें करीव एक लाख पौंड से भी अधिक हैं और दुर्भाग्य से अव तक वहाँ की सुरक्षा का कोई प्रवन्ध नहीं हो सका है।"

"ओह! यह तो सचमुच वड़ी चिन्ताजनक वात है।" अज़ीमुल्ला

बोला। फिर उसने पास बैठे कमांडर को देखा, जो दोनों हथेलियाँ कनपटियों के दाएँ-बाएँ टिकाये हुए सोच-विचार में निमग्न था, "अब तक व्हीलर साहब ने वहाँ कोई व्यवस्था करवायी है ?"

व्हीलर का मौन टूटा, "आप नहीं जानते, खान साहब कि मैं किस बड़ी उलझन में पड़ गया हूँ ? मिस्टर हिलर्सडन की तरह मैंने भी सिपाहियों पर भरोसा कर गोरी फौजों की सहायता नहीं माँगी। आज मेरे पास विश्वसनीय सैनिक नहीं है। खजाने के लिए मैं कोई भी प्रबन्ध नहीं कर सकता। जितने आदमी थे, सब शस्त्रागार और किले पर लगा दिये गये हैं।"

अजीमुल्ला ने उसे टटोला, "बाहर से अब भी सहायता माँगी जा सकती है ?"

"माँग तो रहा हूँ।" व्हीलर बोला, "दो खत लिखे थे। एक श्रीमंत पेशवा को, जिनकी सहायता मिल गई है। दूसरा लखनऊ को—सर हेनरी लारेंस के नाम। वहाँ से अब तक कोई उत्तर नहीं मिला है।"

अजीमुल्ला और नाना ने एक-दूसरे को देखा। किसी भी क्षण व्हीलर को सहायता मिल सकती है।

हिलर्सडन का चेहरा लटका हुआ था।

पेशवा बोला, "आप चिन्ता न कीजिए, मिस्टर हिलर्सडन ! आपके खजाने की सुरक्षा का जिम्मा हम लेते हैं। सौ सैनिक हमारे साथ और आये हैं। उन्हें लेकर हम स्वयं कम्पनी के खजाने की रक्षा करेंगे।"

अजीमुल्ला मुसकराया, "बस, अब मिस्टर हिलर्सडन का बोझ हल्का हो गया है।"

"आप हमारे सच्चे मित्र हैं, पेशवाबहादुर।" हिलर्सडन आभार प्रकट करते हुए बोला, "कानपुर की रक्षा आपके सिपुर्द है।"

"निश्चिंत रहिए।" पेशवा उठा। सम्मान में हिलर्सडन और कमांडर दोनों उठे।

नाना ने बड़ी कूटनीति और सावधानी से तीनों मोर्चों पर अंग्रेजों को

घेर लिया था। सुरक्षा किले पर उसका विश्वासपात्र सूबेदार मोहम्मदअली तैनात था। शस्त्रागार पर ज्वालाप्रसाद और खजाने पर स्वयं पेशवा। तात्या को मुख्य सेनानायक बनाया गया था। हर क्षण की छोटी-से-छोटी घटना का समाचार भी उस तक पहुँच जाता।

बीस मई को बड़ी रात तक सिविल लाइंस स्थित बंगले पर पेशवा अंग्रेज अफसरों और मित्रों के बीच घिरा रहा। वे तरह-तरह से उसे धन्यवाद देते रहे और पेशवा तथा अज़ीमुल्ला उन्हें बार-बार ढाढ़स बँधाते हुए आश्वस्त करते रहे। अंग्रेज़ निश्चित थे कि पेशवा सच्चा मित्र है।

रात के ग्यारह बजे पेशवा को फुरसत मिली। जब पूर्णतः शान्ति हो गई तब टीकासिंह औरगंगादीन को साथ लेकर तात्या, पेशवा के पास पहुंचा।

"क्या हाल है ?" पेशवा ने उत्साहपूर्ण, पर रौबदार ढंग से प्रश्न किया।

"सब ठीक है, श्रीमंत !" अभिवादन करते हुए गंगादीन ने उत्तर दिया, "हमारी ओर से देर नहीं है।"

"हूँ। कल-परसों तक फिरंगियों को लखनऊ से मदद मिलने वाली है।"

वे चौंक गये। टीकासिंह ने कहा, "तब देर करना उचित नहीं है, अन्नदाता। कानपुर समाप्त करने में बहुत हुआ तो पाँच-छः घंटे लगेंगे। और फिर लखनऊ वाली मदद से भी निबट लिया जायेगा।"

"पर निश्चित तिथि को तो अभी पूरे दस रोज हैं।" पास खड़े बाला साहब ने कहा।

"निश्चित तिथि आते-आते तक कानपुर में फिरंगी अपनी ताकत बढ़ा लेंगे। अच्छा तो यही होगा कि इससे पूर्व ही हम उन्हें बाहर निकाल दें।" टीकासिंह ने सुझाव पेश किया।

पेशवा और तात्या गम्भीर थे—किसी निष्कर्ष की तलाश में।

गंगादीन ने कहा, "सिपाही उतावले हो रहे हैं। यदि जरा भी प्रतीक्षा की गई तो वे हमारे काबू में भी न रहेंगेऔर हमारे प्रति अनुशासन विगड़ने पर सब किया-दिया बराबर हो जायेगा।"

तात्या का भी यही विचार था। उसने गंगादीन का समर्थन किया, "श्रीमंत! मेरा निवेदन भी यही है।"

टीकासिंह कह रहा था, "हुजूर, लखनऊ से कुमुक आ गई तो दुश्मन की ताकत और हिम्मत बढ़ जायेगी। और हमारे आदमियों का जीवट गिरने लगेगा। उनमें हमारे प्रति अविश्वास भी पैदा हो जायेगा। वे सोचने लगेंगे कि शायद हम उन्हें धोखा दे रहे हैं। उचित तो यही होगा कि हम इस अवसर से लाभ उठायें और कानपुर फिरंगियों से खाली करवा लें।"

अब तक की चुप्पी और सोच-विचार के बाद पेशवा निर्णय ले चुका था। उसने कहा, "आप सिपाहियों को किसी भी तरह थामे रहिये। निश्चित तिथि से पूर्व हमने कोई भी कदम उठाया तो खतरे और बढ़ जायेंगे। लखनऊ और कानपुर के बीच फासला ही कितना है? अब तक लखनऊ बिलकुल शान्त है और वहाँ फिरंगियों के पास बड़ी ताकत है। जल्दी में यदि हमने कानपुर ले भी लिया तो फिरंगियों की भारी शक्ति से हमें टकराना होगा। और यदि निश्चित तिथि तक रुके रहे तो फिरंगी कुछ न कर सकेंगे। उधर लखनऊ सँभालने में ही उन्हें भारी ताकत लगानी पड़ेगी, तब हम कानपुर आसानी से ले सकेंगे। विजय के बाद भी किसी तरह का कोई खतरा नहीं रहेगा, बल्कि जरूरत पड़ने पर लखनऊवालों की मदद भी की जा सकेगी।"

सभी को पेशवा का विचार पसन्द आया। लखनऊ वहाँ से केवल चालीस मील है। जल्दी में कानपुर हथिया लेने पर निश्चय ही फिरंगियों को वहाँ से मदद मिलती। टीकासिंह ने बहस नहीं की, "जैसी श्रीमंत की आज्ञा।"

"हाँ! उन्हें हर तरह सम्हालिये।" नाना ने भारी स्वर में कहा, "छोटी-सी भूल के परिणाम भी बहुत बड़े हो सकते हैं। मेरठ और

पुरवालों की जरा-सी भूल ने तूफान ला दिया, अन्यथा स्थिति ऐसी न बनती।"

गंगादीन और टीकासिंह वापस जाने लगे।

"सुनो!"

"जी, सरकार!" दोनों रुक गये।

"पुलिस का क्या हाल है? कोतवाल ठीक हुआ, या नहीं?"

"जी हाँ, हो गया है।" टीकासिंह ने बताया, "आज दोपहर अजीजन बी ने खबर दी है कि हुलाससिंह ने अपने साथ का वायदा किया है।"

"हूँ।" पेशवा संतुष्ट हो गया पर तात्या ने कहा, "फिर भी, ठाकुर साहब! उस पर कड़ी नजर रखियेगा। वे आदमी विश्वसनीय नहीं होते, जिन्हें समय मोड़ता है। कोतवाल के बारे में ऐसा ही है। वह समय बदलने वालों में से नहीं है, बल्कि समय के साथ बदलने वालों में से है। जरूरी है कि उस पर ध्यान रखा जाये।"

"जो आज्ञा।" वे दोनों बाहर चले गये।

१४

इक्कीस मई शान्तिपूर्वक बीती।

बँगले के बरामदे में कमांडर ह्वीलर अंग्रेजी तोपखाने के इन्चार्ज जॉर्ज मैकिलप, यूरेशियन सेनाधिकारी कर्नल शेफर्ड, सेना में कमीशन-प्राप्त अफसर मोब्रे थामसन तथा कलेक्टर हिलसंडन के साथ स्थिति पर चिन्तापूर्ण बातें कर रहा था। पेशवा और अजीमुल्ला भी मौजूद थे। कलेक्टर की लड़की मिस मेरी किसी अंग्रेजी पुस्तक में सिर खपाये हुए थी और कमांडर ह्वीलर का युवा पुत्र जो अंग्रेजी फौज में ही लेफ्टिनेंट था, उसके पास बैठा कभी पुस्तक और कभी मेरी के चेहरे की ओर घूर रहा था।

ठीक तभी कप्तान मूर वहाँ पहुँचा। आते ही उसने सैनिक अनुशासन के साथ अभिवादन किया और लारेंस का पत्र बूढ़े कमांडर को सौंप दिया।

पत्र पढ़ते-पढ़ते ह्वीलर के चेहरे पर मुसकान उग आयी। सभी ने समझ लिया, कोई खुशी का समाचार मिला है।

ह्वीलर ने सीना ताने खड़े युवा कप्तान की ओर देखा, फिर एक कुर्सी की ओर संकेत किया, "बैठो।"

मूर बैठ गया। सभी लोग कमांडर का चेहरा देख रहे थे। यह जानने के लिए वे उत्सुक थे कि पत्र में ऐसा क्या है, जिसने कमांडर के फीके चेहरे पर चमक पैदा कर दी है और जिस कारण एकाएक ही उसकी बूढ़ी आवाज़ में बुलन्दी आ गई है।

ह्वीलर ने हर्षपूर्वक कहा "मित्रो, लखनऊ से सर हेनरी ने सहायता भेजी है।"

सभी के चेहरे प्रसन्नता से भर गये। अज़ीमुल्ला ने कहा, "बड़ा अच्छा समाचार है। क्या अब हम पूरी तरह निश्चित हो सकते हैं?"

"नहीं।" ह्वीलर बोला, "इतनी महत्त्वपूर्ण मदद नहीं है। सिर्फ धैर्य रखने का सहारा है।"

"जितना है, बहुत है।" नाना मुसकराया। इसी तरह सभी ने कुछ-न-कुछ कहकर हर्ष प्रकट किया।

ह्वीलर ने कप्तान मूर की पलटन किसी विशेष स्थान पर तैनात न कर सुरक्षा के किले पर ही रखी।

बाईस मई को आयी इस सेना के कारण देशी सिपाहियों में अधिक घबराहट फैल गई। वे स्वयं को असुरक्षित महसूस करने लगे, और बैरकों में चर्चा व्याप्त हो गई कि अंग्रेज अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाकर उन सबको फाँसी पर लटकवा देंगे। टीकासिंह, शमादीन, नन्हे नवाब आदि जैसे-तैसे कर उन लोगों को रोक रहे थे। कुछ सिपाही तो इतने उग्र हुए कि गालियाँ

वकने लगे। बड़ी कठिनाई से उन्हें रोका गया। किन्तु निराशा और घवराहट के वातावरण में कमी नहीं हुई। यहाँ तक कि नेता स्वयं भी निराश होने लगे। ऐसे आतंक के समय उन लोगों के सामने तव एक बड़ी विकट समस्या उठ खड़ी हुई, जव एक सिपाही ने वैरकों में हवाई पुड़िया छोड़ दी—'सव खवरदार हो जाओ! फिरंगी साहव लोग कुछ-न-कुछ खतरा लानेवाले हैं। अभी हाल ही में मुझे पता लगा है कि पहली कम्पनी की छठी वटालियन और तोपखाने की तोपें तैयार हो चुकी हैं और देशी सेना, पैदल और घुड़सवार दोनों पर ही गोलियाँ वरसानेवाली है।' सिपाही का यह आतंकपूर्ण संवाद विजली की तरह सैकड़ों पैदल और घुड़सवार सैनिकों में फैल गया। फुसफुसाहटों ने जोर पकड़ा। अनेक सिपाही इस पक्ष में थे कि वैरकों से वाहर निकलकर फैसला कर लिया जाए।

टीकासिंह ने अनियंत्रित स्थिति का समाचार तात्या के पास पहुँचाया। रात्रि के समय जव स्वयं तात्या ने सभी वैरकों का दौरा किया और उन्हें स्पष्ट योजना समझाकर रोका, तव कहीं वे रुके, पर तूफान तो था ही।

१५

तात्या ने ठीक ही कहा था। हुलाससिंह न तो देश-भक्ति की भावना से क्रान्ति के साथ के लिये प्रेरित हुआ था और न ही अजीज़न की खरी-खोटी या उसके प्यार ने उसे प्रेरित किया था। वल्कि वह समय के साथ वदला। जव उसने यह देखा कि कानपुर में अंग्रेज़ी शक्ति लगभग समाप्त है और क्रान्तिकारियों का पल्ला भारी है तो उसने अजीज़न के पास पहुँचकर आत्मसमर्पण कर दिया, "मैं अव तक अन्धा था। तुमने मेरी आँखें खोल दीं। मैं हर तरह से फिरंगियों के विरुद्ध लड़ने को तैयार हूँ..."

उसके सफल अभिनय पर अजीज़न को जरा भी अविश्वास न हुआ

और उसने हुलाससिंह की वफादारी का समाचार पेशवा तक पहुँचा दिया। वह हुलाससिंह से प्यार करती थी। पर एकाएक ही हुलाससिंह फिर करवट बदल गया। जब तक हेनरी लारेंस की ओर से कानपुर को मदद न मिली, तब तक कोतवाल पूरी तरह पेशवा की वफादारी जताता रहा। हर समाचार अजीजन के पास पहुँचाकर अपने सहयोग का विश्वास दिलाता गया, पर जैसे ही उसे लगा कि अंग्रेजों का पलड़ा भारी हो रहा है, उसकी सारी वफादारी पुनः अंग्रेजों के लिए समर्पित हो गयी। उसे भय था कि कहीं ऐसा न हो, क्रान्ति दबा दी जाये और धोखेबाजी के आरोप में उसे अंग्रेज मालिकों का क्रूर दण्ड भुगतना पड़े!

इस बार हुलाससिंह ने दोहरा रास्ता अपनाया। इधर वह क्रान्तिकारियों के साथ मिला रहा, और उधर क्रान्तिकारियों के गुप्त समाचार अंग्रेजों तक पहुँचाने लगा।

उसने पेशवा का वह रग पहचाना, जिसके अनुसार क्रान्ति का नेता वही था और अंग्रेजों का विश्वासपात्र मित्र भी बना हुआ था। हुलाससिंह ने सोचा कि यदि पेशवा की चाल से अंग्रेजों को अवगत करा दिया जाये तो निश्चय ही अंग्रेजों पर उसकी वफादारी का सिक्का जम जायेगा। यही सोचकर वह रात्रि के समय कमांडर से भेंट करने उसके बँगले पर पहुँच गया।

पच्चीस मई की यह रात शान्त थी, किन्तु क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ जारी थीं। कोतवाल ने बँगले के पहरेदार द्वारा भीतर संदेशा पहुँचाया। थोड़ी देर बाद ही भेंट की स्वीकृति मिल गई।

हुलाससिंह कमांडर के कमरे में पहुँचा। उसने देखा कि कमिश्नर मोरलैंड और कलेक्टर दोनों ही मौजूद हैं।

सिल्यूट की औपचारिकता के बाद वह पास ही पड़ी एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। हमेशा की तरह खुशामदी लहजे में बोला, "बड़े आवश्यक कार्य से आया हूँ, हुजूर! हम एक जबरदस्त खतरा पाल रहे हैं।"

"कैसा खतरा?" कलेक्टर ने पूछा।

"यह सुनकर आप लोगों के मन को ठेस लगेगी और आश्चर्य भी होगा···" कोतवाल ने कुछ सकुचाहट के साथ कहा, "मैंने पन्द्रह साल कम्पनी सरकार का नमक खाया है। अब अदा करने वक्त आया।"

"क्या मतलब ?"

मोरलैंड के स्वर से हुलाससिंह को भय लगा। एक बार उसने पुनः सोचा। पेशवा पर अंग्रेज़ों को बहुत विश्वास है। कहीं ऐसा न हो कि उल्टी खरी-खोटी सुनने को मिलें। मुमकिन है कि उसे डाँट भी पड़े, पर जब बात किनारे ही आ गई है तो—"क्षमा कीजिए, हुज़ूर!" उसने कहा, "आपको भरोसा तो नहीं होगा, पर यह सच है कि पेशवा बहादुर हमारे मित्र नहीं हैं!"

मोरलैंड चुप रहा। पर कलेक्टर भड़क गया, "क्या बेतुकी बात करते हो ?"

कोतवाल ने साहस नहीं छोड़ा। पूरी तरह तैयार होकर आया है। जानता है कि यह सब सहना पड़ेगा। बोला, "मैंने तो आपसे पहले ही क्षमा माँग ली थी। जानता था कि आपको सच बुरा लगेगा, पर यह सौ फीसदी सही है कि पेशवा बहादुर अंग्रेज़ों के प्रति वफादार नहीं हैं। वे धोखा कर रहे हैं और यहाँ होने जा रहे विद्रोह के नेता भी वही हैं।"

"शट् अप!" इस बार कमांडर ह्वीलर गुर्राया, "यह एकदम गलत है! पेशवा अंग्रेज़ों का वफादार ही नहीं, सहायक भी है। उसकी तमाम फौजें आज हमारी मदद के लिए आयी हुई हैं और तुम इतनी नासमझी की बातें करते हो ?"

"आप विश्वास तो कीजिए···"

"क्या विश्वास करें ?" हिलर्संडन गरजा, "तुम बेवकूफ हो! क्या तुम्हें नहीं दीखता कि पेशवा हमारी मदद के लिए स्वयं ही बिठूर से यहाँ आया हुआ है!"

हुलाससिंह विचलित होने लगा। एक बार पुनः प्रयत्न किया, "पेशवा हमारी सहायता के लिए नहीं, हमारी बरबादी के लिए आया है, हुज़ूर!

१६

इकतीस मई !

पिछले पाँच दिन दोनों पक्षों ने भयपूर्वक काटे। देशी सेनाओं को अंग्रेजों की ओर से भय था जबकि अंग्रेज, देशी सेनाओं से डरे हुए थे। शहरवालों को इन दोनों से ही भय था। इस तरह अनिश्चितता के वातावरण में हर क्षण एक कष्टपूर्ण लम्बे युग की तरह गुज़रा।

देशी रिसालों के अफसर पेशवा से मिले। निश्चित तिथि की याद दिलाकर क्रान्ति प्रारम्भ कर देने की स्वीकृति चाही। नाना कुछ सकपकाया। अब तक बाहर क्रान्ति हो जाने का कोई समाचार नहीं मिला था। पेशवा ने उन्हें टाल दिया, "जब तक बाहर से समाचार न मिलें तब तक एकाध दिन और रुका जाये।"

अफसर लौट गये। इस बार भी उन्होंने पेशवा की ही आज्ञा मानी। उनका खयाल था कि यह पेशवा की सैनिक सूझ-बूझ है, जबकि सत्य कुछ और ही था। नाना को संगठन और योजना में एकाएकी विस्फोट से क्रान्ति पर अविश्वास-सा होने लगा था। कहीं ऐसा न हो कि वह क्रान्ति प्रारम्भ कर बैठे और अन्य स्थानों पर कुछ भी न हो। फिरंगियों की शक्ति से वह सदा ही डरता रहा।

दो मई को सर ह्वीलर के पास लखनऊ-क्रान्ति का समाचार आया। सर हेनरी लारेंस ने लिखा था, "हम लोग बहुत असुरक्षित हैं। शीघ्र सहायता भेजो !"

कानपुर की स्थिति शान्त थी, पर अनिश्चितता का वातावरण कम नहीं हुआ था। दो मई के सम्पूर्ण दिन लारेंस का पत्र सामने रखे हुए कमांडर ऊहापोह में रहा। एक मन होता था कि कुछ आदमी भेज दिये जाएँ, जबकि दूसरे ही क्षण उसे स्वयं की रक्षा का भय ऐसा न करने के लिए लाचार कर देता।

पेशवा ने जब सुना कि तीस मई से लखनऊ में क्रान्ति हो चुकी है तो उसके उखडे हुए विश्वास को शक्ति मिली और जब उसने ह्वीलर से यह सुना कि हेनरी की सहायता की आवश्यकता है, तो उसने चट से सुझाव पेश किया, "भेज दीजिये। यहां कुछ नहीं हो सकता।" वह चाहता था कि कानपुर मे अंग्रेज-शक्ति अधिकाधिक क्षीण हो जाए ताकि कब्ज़ा करने मे अधिक समय और शक्ति न लगे।

अज़ीमुल्ला ने भी ह्वीलर को यही सुझाव दिया,"यहां वालो मे शक्ति तो है, पर साहस नहीं है। आप निश्चिन्त रहिये, ह्वीलर साहब! कानपुर में कोई खतरा नहीं है। लखनऊवालों को कष्ट है, उन्हें सहायता देना इन्सानियत का तकाज़ा है।"

पेशवा ने स्वय की मित्रता और वफादारी की दुहाई दी, "यहां आपत्ति आयी भी तो एक माह तक हमारी फौजें ही मोरचा सँभाले रहेंगी, और फिर इन सिपाहियों के पास है क्या? तोपें, किला, रसद सभी कुछ तो हमारे हाथ में है।"

हिलर्सडन ने पेशवा की शक्ति पर विश्वास प्रकट किया। उसकी भी यही सलाह थी कि लखनऊ को सहायता मिलनी चाहिए। ह्वीलर तैयार हो गया। तीन जून की प्रातःकाल ही सुरक्षा-किले पर तैनात दो अफसर और पचास घुड़सवार सैनिक लखनऊ रवाना कर दिये गए।

कमांडर ने लॉर्ड कैनिंग को एक पत्र लिखकर सूचित किया, "लखनऊ को सहायता भेजकर मैं बहुत कमज़ोर हो चुका हूं, किन्तु इतना विश्वास है कि जब तक कम्पनी सरकार की ओर से कोई सहायता मुझे नहीं मिलेगी, मैं आपत्तिकाल मे भी यहां का मोरचा सँभाले रहूंगा।"

कमांडर की शक्ति लगभग समाप्त कराके पेशवा और अज़ीमुल्ला सिविल लाइन के अपने बँगले में लौटे। रात को जब देशी रिसालों के अफसर समाचार लेकर उसके पास पहुंचे तो उसने दूसरे दिन की प्रात-काल से ही क्रान्ति आरम्भ कर देने की स्वीकृति दे दी।

रात को पेशवा आराम करने जा ही रहा था कि द्वारपाल ने समा-

चार दिया, "हौला साहव (ह्वीलर) मिलना चाहते हैं।"

पेशवा ने स्वीकृति दी। ह्वीलर और हिलर्सडन, कप्तान मूर के साथ भीतर आए।

"कहिये, कैसे आना हुआ?" पेशवा ने देखा, तीनों वहुत घवराये हुए थे।

"खवर मिली है कि कल विद्रोह हो जायेगा।" काँपते स्वर में ह्वीलर ने कहा, "हम पूरी तरह फँस चुके हैं। दुर्भाग्य देखिए कि आज ही लखनऊ को सहायता भेजी गई है। ऐसी वेवकूफी कर हमने एक तरह से आत्महत्या कर ली है।"

पेशवा ने उन्हें हिम्मत दिलाई, "घवराइये नहीं, महाशय!" उसने तीनों को सामने पड़ी कुर्सियों पर वैठने का संकेत किया।

"हमारे पास शक्ति नाम की कोई चीज़ नहीं वची है।" हिलर्सडन वोला, "विद्रोहियों की शक्ति के आगे हम कुछ नहीं हैं।"

पास के कमरे से तात्या और अज़ीमुल्ला भी आ गये।

पेशवा समझाने लगा, "चिन्ता न कीजिए! हम आखिरी दम तक मुकावला करेंगे।"

ह्वीलर ने डूवे हुए स्वर में, इस तरह जैसे किसी गड्ढे में से वोल रहा हो, कहा, "साहस की भी एक सीमा होती है, एक वुनियाद होती है। जव ये दोनों ही नहीं हैं तो हिम्मत रखना वेकार है।"

अज़ीमुल्ला ने समझाया, "आप सव 'उम्मीदों के किले' में चले जाइए और उम्मीद कीजिए कि जल्दी ही वुरा वक्त टले। जितनी भी शक्ति है उसके सहारे आपकी और श्रीमंत पेशवा की सेनाएँ विद्रोहियों से मुका-वला करेंगी!"

अज़ीमुल्ला का विचार कमांडर को पसन्द आया। वापस वँगले पर पहुँचते ही उसने शहर-भर के अंग्रेज़ परिवारों को 'उम्मीदों के किले' में पहुँचा दिया। एक माह का खाने-पीने का सामान तथा एक लाख रुपये भी पहुँचा दिये गए। सभी अफसरों और सैनिकों को खतरे की सूचना

देकर सावधान कर दिया गया।

चार जून की सुबह शान्तिपूर्वक कटी। दोपहर हर रोज की तरह गर्मी की सुनसानी में तपती हुई गुजरी। शाम को कोई खास बात नहीं हुई। एक अंग्रेज अफसर ने शराब अधिक पीकर, तरेपनवीं देशी फौज के एक हिन्दुस्तानी सिपाही पर गोली चला दी। अफसर का कोर्टमार्शल हुआ। गड़बड़ी हो जाने के भय से उसे पागल कहकर छोड़ दिया गया। पर इस घटना से भी देशी सिपाही विचलित नहीं हुए और शाम भी शान्ति के साथ गुजर गयी। ह्वीलर की रूठी हुई मुसकान फिर से चेहरे पर उभर आयी। अंग्रेजों ने शान्ति की साँस ली। पिछली तमाम अफवाहों की तरह यह दिन भी सिर्फ अफवाह का दिन साबित हुआ।

गर्मी की आधी रात, तिस पर आतंक की छाया। अधिकांश लोग जाग रहे थे। ह्वीलर अपने अन्य साथी अफसरों सहित सुरक्षा के किले के बाहरी हिस्से में बैठा हुआ था। तभी उसने फायर की आवाज सुनी। घबराकर चिल्लाया, "किसने किया है फायर ?"

पहरे पर तैनात यूरेशियन सिपाही दौड़कर उसके पास पहुँचा।

कमांडर ने उसी तरह चीखकर आदेश दिया, "गोली की आवाज कहाँ से आयी है, पता लगाओ !"

इससे पूर्व कि आदेश-पालन में वह सिपाही वहाँ से हटे, लगातार तीन फायर हुए। ह्वीलर घबराकर अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ। कलेक्टर हिलर्सडन के दोनों हाथ कुर्सी के हत्थों पर कस गए। मिसेज ह्वीलर ने पास ही खड़े अपने युवा पुत्र लेफ्टिनेंट ह्वीलर की ओर भयभीत होकर देखा और कप्तान मूर का चमकदार चेहरा क्षणमात्र में उदास और फीका पड़ गया।

"तुम लोग कुछ आवाजें सुन रहे हो?" बूढ़े कमांडर ने परेशानी-भरे स्वर में उन सबसे पूछा।

"हाँ ।" वेचैनी के साथ सूखे होंठों पर गीली जीभ फिराकर हिलर्संडन ने उत्तर दिया, "काफी शोर हो रहा है ।"

"मुझे लगता है···मुझे लगता है···" अभी कमांडर वात उगल भी न सका था कि एक अंग्रेज़ सिपाही पसीने से लथपथ उसके सामने आ खड़ा हुआ। घवराहट में उसने अभिवादन तक नहीं किया : उसकी साँस उखड़ी हुई थी, "विद्रोह हो गया, कमांडर ! पहली, तरेपनवीं और छप्पनवीं देशी वटालियनें मैगज़ीन पर टूट पड़ी हैं !"

"ओह !" वृद्ध कमांडर जनरल ने सिर थाम लिया, "समाचार सही था ।"

युवक कप्तान मूर ने हिम्मत से काम लिया, "मोर्चों पर खबर कर दो, हम मुकावला करेंगे !"

अंग्रेज़ सिपाही जहाँ-तहाँ दौड़ने लगे ।

विद्रोह प्रारम्भ हो गया है। क्षणमात्र में ही यह समाचार विद्युत-गति से तमाम किले में फैल गया। महिलाओं ने अपने वच्चे छाती से चिपटा लिए । पुरुषों ने अपने परिवार की ओर कातर-दृष्टि से देखा। वृद्धों के हृदयों की धड़कनें तेज़ हो गयीं। सभी को अपनी कमज़ोर स्थिति का भान था। वे जानते थे कि वच नहीं सकेंगे।

सव ओर आतंक का विचित्र-सा वातावरण फैल गया। वदहवासी में लोग इधर-उधर भाग रहे थे, पर वातचीत एकदम ठंडी थी। कोई आपस में कुछ कहता भी नहीं, सुनता भी नहीं ।

शोर वढ़ रहा था, वढ़ता ही जा रहा था। गोलियाँ कितनी चलीं, कोई गिनती ही न रही। फायरिंग चलती रही। थोड़ी देर वाद गोलियों की आवाज़ क्रमवद्ध हो गई। वाहर क्या कुछ हो रहा है, किसी को कुछ पता नहीं था।

छप्पनवीं वटालियन के सिपाही पागलों की तरह नाचते-कूदते वैरकों से

बाहर निकल आए। टीकासिंह उनका नेतृत्व कर रहा था। ठीक इसी तरह दलभजनसिंह के नेतृत्व में दूसरी बटालियन के सैकड़ों सिपाही निकले। परेड-मैदान पर लहरा रहा कम्पनी सरकार का झंडा उखाड़ फेंका गया। एक सिपाही दौड़कर ब्रिगेडियर के आफिस की छत पर जा चढ़ा। उसके हाथ में हरा झंडा था, जिसे उसने वहाँ लगा दिया और कम्पनी का झंडा नीचे फेंक दिया।

फिर वे समूह-रूप में शस्त्रागार की ओर बढ़े। शस्त्रागार पर अंग्रेज़ी फौज की एक टुकड़ी के साथ पेशवा की भी एक टुकड़ी थी। जैसे ही क्रान्तिकारी सिपाही उस ओर आते दीखे, अंग्रेज़ टुकड़ी ने मुकाबले की तैयारी में फायरिंग की। यूरेशियन लेफ्टिनेंट शेफर्ड यहाँ तैनात था। वह भागकर पेशवा की टुकड़ी के सूबेदार ज्वालाप्रसाद के पास पहुँचा, पर उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बजाय परेशान होने के, ज्वालाप्रसाद राइफल हाथ में लिए आराम से खड़ा मुसकरा रहा था। शेफर्ड ने कुछ कहना चाहा था, पर ज्वालाप्रसाद ने सुना नहीं। एकाएक बन्दूक उसकी ओर मोड़ी और घोड़ा दबा दिया। धायँ! चीख मारकर शेफर्ड वहीं ढेर हो गया। ज्वालाप्रसाद ने अपने आदमियों को आदेश दिया, "शस्त्रागार पर तैनात फिरंगियों को खत्म कर दो और तोपों तथा रसद पर कब्ज़ा करके क्रान्तिकारियों का साथ दो!"

आदेश-पालन हुआ। थोड़ी ही देर में शस्त्रागार पेशवा की सेना के कब्ज़े में था। क्रान्तिकारी आये तो ज्वालाप्रसाद निहत्था होकर सिपाहियों के सामने जा पहुँचा, 'शस्त्रागार अपना है, फिरंगी खत्म हुए!"

कम्पनी के देसी रिसाले के क्रान्तिकारी सिपाही और पेशवा की टुकड़ी गले मिली। शस्त्रागार पर कब्ज़ा हुआ। शेफर्ड और उसके अंग्रेज़ सिपाहियों की लाशें बूटों तले रौंद डाली गयीं।

खजाने पर भी ऐसा ही हुआ। पेशवा के जो सिपाही और स्वयं पेशवा उसके रक्षक थे, अनायास ही मालिक बन बैठे। गंगादीन की बटालियन वहाँ पहुँची और पेशवा के सैनिकों ने उसका स्वागत किया। थोड़े-से

अंग्रेज़ सैनिक थे, जिन्हें कत्ल कर डाला गया। जहाँ-जहाँ रास्तों में क्रान्तिकारियों को अंग्रेज़ों के बँगले मिले, आग लगा दी गयी। जो अंग्रेज़ 'उम्मीदों के किले' में नहीं पहुँच सके थे, उन्हें सिपाहियों ने मार डाला। मकानों को जला डाला और सामान लूट लिया।

सम्पूर्ण रात्रि कानपुर आग और चीखों में डूबा रहा। इधर-उधर के मकानों से धू-धू कर आग की लपटें उठती रहीं। चीख-पुकारों से वातावरण भर गया। हुलाससिंह ने क्रान्तिकारियों का साथ दिया था।

पाँच जून की प्रातः होते न होते सम्पूर्ण नगर क्रान्तिकारियों के हाथ में था। आग और विध्वंस अब भी था। अज़ीमुल्ला ने पेशवा को सलाह दी, "यदि यही क्रम एक दिन और चला तो हम जन-सहानुभूति खो देंगे!"

पेशवा ने तत्काल क्रान्तिकारी नेताओं को तलब किया। यहाँ-वहाँ उचित व्यवस्था करने और सैनिकों की मनमानी रोकने के आदेश दिये गये।

सिपाही रुक तो गए, पर इन दस घंटों में इतना कुछ घटा था कि उसके आतंक से हर घर के दरवाज़े बन्द थे। उन्हें खुलवा लेना आसान न था। फिर भी पेशवा के आदेशानुसार शान्ति स्थापित करने के समुचित प्रयत्न होने लगे।

क्रान्ति जैसे ही प्रारम्भ हुई, 'उम्मीदों के किले' पर भी पेशवा के तैनात आदमियों ने वैसा ही किया जैसा हर जगह किया था। मोहम्मदअली ने देखते-ही-देखते अपने 'मित्र' अंग्रेज़ सिपाहियों को गोलियों से भुनवा डाला। तोपों के मुंह किले की ओर मोड़ दिए गए और मुहासरा चालू हो गया।

पाँच जून के दिन और रात 'उम्मीदों के किले' पर गोलियों की बरसात होती रही। उत्तर में पेशवा को भी किले के भीतर से वही सब मिला। भीतर भी दो तोपें थीं। दो तोपें बाहर की ओर थीं, जिन्हें क्रान्तिकारियों ने छीन लिया था तथा इनका संचालन पेशवा की ओर से स्वयं नन्हे नवाब

कर रहा था।

इसी दिन क्रान्तिकारियो ने एकमत होकर पेशवा को अपना राजा और वहादुरशाह् को अपना सम्राट् स्वीकार किया। फौज के लिए अफसर तथा नगर के लिये असैनिक प्रशासक चुने गये।

पेशवा ने सिपाहियो को धन्यवाद दिया, तत्पश्चात् अधिकारियो की घोषणा की। टीकासिंह और वाला साहब को सेनापति तथा दलभजनसिंह, गगादीन और ज्वालाप्रसाद को कर्नल बना दिया गया। मुख्य सेनापति तात्या टोपे वनाये गये।

अजीमुल्ला को अपना प्रधानमत्री वनाने की घोषणा करते हुए पेशवा ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया तथा किसी भी कीमत पर अग्रेजों को देश से निकाल देने का निश्चय सुनाया। उसने कहा, "हम तो सम्राट् बहादुरशाह के एक सूबेदार है और हर हिन्दुस्तानी सम्राट् की प्रजा है। अतः अभी हमारा एकमात्र उद्देश्य यही होना चाहिए कि महान् सम्राट् को पुनः दिल्ली के तख्त पर आसीन करें। उनके शासन मे ही हमें और हमारे धर्मों को रक्षा तथा न्याय मिलना सम्भव है।"

सिपाहियो ने जय-जयकार किया।

'उम्मीदो का किला' एकमात्र स्थान बचा था, जहाँ से अग्रेजों को निकाल देना शेष था, अन्यथा सम्पूर्ण नगर मे अग्रेजो का नामोनिशान नही रहा।

आस-पास के गाँवो मे सैनिक टुकड़ियाँ भेजकर घोषणा कर दी गयी, "कम्पनी सरकार का राज्य खत्म हुआ। अब स्वदेशी राज कायम हो गया है।"

१७

'उम्मीदों का किला'। छः जून।

पाँच जून की रात से ही बूढ़ा कमांडर ह्वीलर बीमार हो गया था। उसे गहरा सदमा पहुँचा। पेशवा क्रान्तिकारियों से मिला हुआ है! काश! वह इस अफवाह पर विश्वास कर सका होता। ह्वीलर ने सैनिक संचालन की सारी जिम्मेदारी युवा कप्तान मूर को सौंप दी।

मूर साहसी था। पर इस मोर्चे की स्थितियाँ इतनी विचित्र थीं कि वह विचलित होने लगा। जून की भयानक धूप में अंग्रेज़ों को लड़ाई लड़ना तो दूर, हिन्दुस्तान के मखमली गद्दों पर सोने में भी बहुत कष्ट होता था। और अब उन्हें पेशवा की कई गुना शक्ति से जूझना पड़ रहा था। पर वे लड़ रहे थे, केवल इस आशा पर कि शायद कहीं से मदद मिल जायेगी। मृत्यु को सामने देखते-पहचानते हुए भी वे उम्मीद करते थे कि जीवन बच जायेगा।

इस किले में फँसे हुए स्त्री, बच्चों और पुरुषों की संख्या लगभग चार-सौ थी। इनमें से दो सौ पुरुष थे, जिनमें डेढ़ सौ के करीब सैनिक थे, पचास असैनिक। शेष स्त्रियाँ और बच्चे।

दोपहर के समय एक अंग्रेज महिला एक बच्चे को अपनी छाती से चिपटाये दौड़ती हुई किले में आयी। वह हाँफ रही थी और उसका सारा शरीर तप गया था। बन्द फाटक को उसने देर तक पीटा था और फिर वहीं गिर पड़ी थी। जनरल का लड़का लेफ्टिनेंट ह्वीलर सहारा देकर उसे भीतर कप्तान मूर के पास ले आया था।

स्त्री के चेहरे पर पानी के छींटे देकर उसे होश में लाया गया। वह विक्षिप्त-सी हो गयी थी। संभवतः शहर में क्रान्तिकारियों का इतना आतंक था कि उसके होशोहवास गुम हो गये। जब मोब्रे थामसन ने उसकी गोद से बच्चा लेकर अच्छी तरह लिटा देना चाहा तो वह चीख उठी, "नहीं-

नही ! इसे मत मारो। तुम्हारे सम्राट् और तुम पर अंग्रेजो ने जरूर अत्याचार किया है, पर इस बच्चे ने नही !"...और वह बेहोश हो गयी।

हिलर्सडन की बूढ़ी आँखें नम हो आयी। एक बार उसने आसमान की ओर ताका और दोनो हाथ फैलाकर टूटे-से स्वर मे याचना की, "हे ईसा, तू बड़ा रहमदिल है, हमारी रक्षा कर !"

स्त्री को पुन. होश में लाया गया। थोड़ी देर बाद जब वह सामान्य हुई तो उसने अपनी मुट्ठी में भिंचा हुआ कागज का टुकड़ा कप्तान मूर की ओर बढ़ा दिया।

यह नाना का सन्देशा था, जिसे लेकर उस महिला को सुरक्षा के किले तक भेज दिया गया था। लिखा था—

६ जून, १८५७

जनरल ह्वीला के नाम,
कानपुर और आसपास का सारा क्षेत्र हमारे कब्जे मे है। शाम तक अपना 'उम्मीदों का किला' छोड़कर आत्मसमर्पण कर दो, अन्यथा किले पर हमला कर, गोले बरसाये जायेगे।

बहुक्म
—श्रीमत पतप्रधान नाना धूधूपत
पेशवा बहादुर

मूर के चेहरे की रोशनी बुझ गयी।

"क्या बात है ?" घबराकर हिलर्सडन ने पूछा।

"पेशवा ने आत्मसमर्पण कर देने की खबर दी है।"

"धोखेबाज !" हिलर्सडन ने दाँत भींच लिए।

मोब्रे थामसन निराश होने लगा, "क्या हमे ऐसा ही करना चाहिए ? क्या पेशवा ने अपने पत्र मे हमारे जीवन की सुरक्षा का वायदा किया है ?"

"नही !"

"तव तो हम ऐसा नहीं कर सकते।" थामसन ने कहा, "पेशवा का कोई भरोसा नहीं है।"

एक गहरी साँस खींचकर कलेक्टर हिलर्संडन वोला, "काश ! हमने पहले ही पेशवा पर भरोसा न किया होता।"

"हम मुकावला करेंगे !" मूर ने साहसपूर्वक कहा, "आज तो पहला दिन है। लखनऊ तक समाचार पहुँचते ही सर हेनरी की सहायता हमें अवश्य मिल जायेगी। मैं वहाँ तक समाचार भिजवाने का प्रयत्न करता हूँ।" वात अधूरी छोड़कर उसने सामने ही एक केतली से पानी पी रहे सैनिक से कहा, "व्लेनमेन, क्या तुम लखनऊ तक इस आपत्ति का समाचार भेज सकते हो ? वहाँ से हमें अवश्य सहायता मिल जायेगी।"

व्लेनमेन ने घूँट गटका। केटली का ढक्कन वन्द किया, कुछ वोला नहीं।

"क्या तुम डरते हो ?" मूर ने घृणापूर्वक कहा, "मृत्यु निश्चित सच है। सहायता न मिली, तव भी हमें मरना होगा। फर्क इतना है कि यदि तुम इस काम में मर गये तो हमारी अपेक्षा कुछ जल्द मर जाओगे और सहायता का सन्देश न पहुँचाया तो दस-पाँच दिन और जी लोगे, पर यहाँ रहकर तुम जिन्दा ही रहोगे, यह सन्देहास्पद है।"

व्लेनमेन चुप रहा। जीवित होते हुए भी उसका चेहरा मृतक की भाँति सूखा और वेरौनक हो गया। मूर की वात का उस पर केवल इतना प्रभाव हुआ कि वह अपने स्थान पर खड़ा हो गया।

सव स्तब्ध थे। मूर ने कहा, "यदि तुम सन्देश पहुँचाने में सफल हुए तो शायद अनेक स्त्री-वच्चों का जीवन वचाने का पुण्य तुम्हें मिलेगा और यदि मारे गये तो इंग्लैंड-जैसे अपने देश और देशवासियों के लिये वह तुम्हारा महान वलिदान होगा।"

सैनिक ने कुछ कहा नहीं। दो कदम आगे वढ़ा और मूर के सामने आ खड़ा हुआ। वह तनकर खड़ा हुआ था। यह तनाव और गौरव उसकी स्वीकृति थे।

मूर ने सन्देश लिखा, "हमें सहायता भेजिए। पेशवा धोखा देकर विद्रोहियों से मिल गया है और हम सभी मृत्यु के मुँह में है।"

इस किले में बचाव की विशेष व्यवस्था नहीं थी। गोले गिरते और लोग इधर से उधर भागने लगते। जनरल ह्वीलर जब से बीमार पड़ा, उठा ही नहीं था। गोलों से किले की दीवारों को क्षति भी पहुँचने लगी थी। एक गोला भंडारघर पर आकर गिरा और वह धराशायी हो गया। उस समय एक सैनिक उसमें गया हुआ था, जैसे-तैसे उसका क्षत-विक्षत शव उसमें से निकाला गया।

मोब्रे थामसन को नियमित डायरी लिखने की आदत थी। आठ जून को उसने लिखा, "आज घेरे का चौथा दिन समाप्त हो रहा है और मैं अनिश्चय की दशा में जिन्दा हूँ। मैं यह उम्मीद नहीं कर सकता कि कल का चमकता हुआ सूरज देख सकूँगा या नहीं। और सूरज ही क्या, मुझे तो यह भी भरोसा नहीं कि मेरी डायरी का यह अंश, इसकी पंक्ति का अगला शब्द मैं लिख पाऊँगा या नहीं। क्योंकि हर ओर मौत अपने अत्यन्त भयावने रूप में हमारी ओर बढ़ी आ रही है···

ब्लेनमेन को गये हुए दो दिन हो गये हैं। मुझे लगता है जैसे ब्लेनमेन पेशवा के क्रूर हाथों में पड़कर अपनी चरम गति तक पहुँच गया है और वह एक निश्चित स्थान पर बैठा हम सबकी प्रतीक्षा कर रहा है।

इन चार दिनों का हर क्षण इतना दुखदायी और घृणापूर्ण बीता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। किले के बाहर से पेशवा की फौजें लगातार गोले-गोलियाँ बरसाती रही हैं। उनकी तोपें एक पल को भी ठंडी नहीं पड़ी हैं। कप्तान मूर युवा और शक्तिशाली होते हुए भी ढीला पड़ता जा रहा है। कभी-कभी लगता है, यदि मूर की मृत्यु किसी गोले से न हुई तो हाँफ-हाँफकर मर जायेगा। यहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ मृत्यु ने अपनी घिनौनी परछाईं न छोड़ रखी हो! ऐसा कोई बूढ़ा,

जवान और बच्चा नहीं है, जिसके चेहरे पर उसका अपना अन्तिम निर्णय न लिखा हुआ हो।

"हर कोना, हर जीवन और हर क्षण असुरक्षित है। इन चार दिनों में हमने मुकाबले किये हैं। हमारे जवानों ने मृत्यु का मुँह रौंदकर गोलियाँ उगली हैं, पर चिन्ता तथा घबराहट ने उनके निशाने इतने गलत कर दिये हैं, आँखों में इतना अँधेरा भर दिया है कि शायद ही कभी उनका कोई वार सही रहा हो। इसके विपरीत पेशवा की सेना तक-तककर निशाने छोड़ रही है। मेरे विचार से उनके हर निशाने ने हमारी मृत्यु के आसार निश्चत कर दिये हैं। हमारी धड़कनें हिला दी हैं। मैं नहीं सोच पाता कि यहाँ जो कुछ हो रहा है उसका बयान शब्दों में किया जा सकता है। मैं यह लिख भी नहीं सकता और न ही अच्छी तरह वर्णन कर सकता हूँ कि यहाँ मौत किस तरह मँडरा रही है। मेरी साँस से भी तेज रफ्तार पेशवा की गोलियों की है। और उससे भी कई गुनी तेज रफ्तार यहाँ व्याप्त अशांति और चीख-चिल्लाहट की है।

"लेडी हेवर्डसन का गोद का बच्चा किसी गोले या गोली से नहीं मरा, अपितु लगातार होती रही उनकी आवाजों से डरकर मर गया। वह कई घंटों तक आश्चर्यपूर्वक आवाजें सुनता रहा और फिर जैसे ही एक गोले की वज्र आवाज कौंधी वैसे ही उसके हृदय की धड़कन डूब गयी।

"असैनिक लोगों को कप्तान ने आदेश दिया है कि वे मुकाबले में साथ दें। अनेक लोग बन्दूक चलाना सीख रहे हैं। कुछ ने सीख भी लिया है। जीवन के इन निराश क्षणों में आशा का जीवट किसी के पास शेष नहीं है। फिर भी वे एक-दूसरे को चलता-फिरता पाकर जिन्दा हैं। जब कोई आदमी मरता है, तो सैकड़ों चेहरे स्याह हो जाते हैं। सभी इस भय से परेशान हो जाते हैं कि उनका भी निश्चित भविष्य वही है।

"आज रसद बाँटते समय बड़ा अजीब दृश्य उपस्थित हो गया। सैनिक-असैनिक सभी व्यक्ति रसद बाँटनेवालों पर टूट पड़े और सामान की छीना-झपटी करने लगे। कोई आदमी शैम्पेन की बोतल, हैरिंग मछली का डिब्बा

और मुरब्बा लिये हुए मुख्य रक्षा-पंक्ति से अलग एक ओर चला गया तो किसी दूसरे सैनिक ने अपने हिस्से का सामान पाकर तैनात ड्यूटी त्याग दी और कहीं एकान्त में खाने लगा। इस तरह सामाजिक जीवन में भी अस्तव्यस्तता फैल गयी है। अनुशासन टूट गए है और स्वजीवन के मोह ने माता, पुत्र, पिता, भाई, पत्नी-पति किसी का कोई रिश्ता कायम नहीं रहने दिया है। सब केवल अपने बारे में सोचने है, अपनी और अपने भोजन की चिन्ता करते हैं।

"चावल और आटा केवल स्त्रियों के लिये है, जिसमें बच्चे भी शामिल है। वे जैसे-तैसे अपनी भूख मिटाते है। भय ने जीवन की हर आशा समाप्त कर दी है। हर तृष्णा से मन खाली कर दिया है। केवल एक ऐसी तृष्णा और आशा शेष है, जिस पर रत्तीमात्र प्रभाव नहीं पड़ा है और वह है भूख। भूख, जो समाप्त नहीं हो पाती, जो मृत्यु के द्वार पर भी नहीं मिट सकी है।

"कल से भयानक लू चलने लगी है। इस लू के कारण अनेक लोग या तो बीमार हो गए है या फिर मर रहे हैं। इलाज की भी व्यवस्था की गई है। बैरक के फूस-ढके एक हिस्से में अस्पताल बनाया गया है। कुछ दवाएँ भी हैं, पर डॉक्टर हेवर्डसन को बेहद तकलीफ उठानी पड़ रही है। उसे कभी लू के मरीज का इलाज करना होता है, कभी किसी पेचिश के मरीज को दवा देनी पड़ती है। सिपाही घायल होकर अस्पताल में पहुंचने है और डॉक्टर पहला काम अधूरा छोड़कर उसका इलाज प्रारम्भ करता है। दुर्भाग्य से इस डॉक्टर की मदद के लिए कोई पुरुष नहीं है। कलेक्टर हिलसंडन की पुत्री मेरी उसे सहयोग दे रही है, किन्तु दो लोगों के लिये ढेर से, कभी कम न होने वाले मरीजों को संतुष्ट रख पाना बहुत कठिन है। ये दोनों गये दिन-रातों में कभी सोने नहीं देखे गये। लगता है, यदि यही स्थिति रही तो वे मृत्यु से पूर्व ही मर जायेंगे और अस्पताल समाप्त हो जायेगा।

"न जाने कितना समय निकालना शेष है। एक अनिश्चित समय, जो

यहां से मीलों दूर की सहायता और शक्ति पर निर्भर है। सचमुच यह एक व्यंग्यपूर्ण हास्य है कि हम लोग मीलों दूर बैठे लोगों के सहारे यहां जिन्दा हैं। लगता है, जैसे सांसें मीलों दूर ली जा रही हैं और धड़कनें यहां कायम हैं।"

दस जून को थामसन ने लिखा…

"ब्लेनमेन मारा गया होगा…"

"गयी रात एक बड़ी दुर्घटना हुई। गोविन्दराम नाम के एक हिन्दुस्तानी को, जो कमिश्नर मोरलैंड का निजी नौकर था, क्रोध में कमिश्नर ने चांटा मार दिया। उसने कमिश्नर का भोजन चुराकर खा लिया था। मोरलैंड क्रोधित हो गया। इस भयानक आपत्तिकाल में मानसिक संतुलन खो देना स्वाभाविक है। पर घटना का सर्वाधिक दुखद दृश्य तो तब घटा, जब गोविन्दराम ने चांटे के जवाब में मॉरलैंड को गोली मार दी। कमिश्नर घायल हो गया है, और अब डॉक्टर हैवलॉक के अस्पताल में पड़ा अन्तिम सांसें गिन रहा है। गोविन्दराम को कोई दंड नहीं दिया जा सका, क्योंकि उसने हमें मौका ही नहीं दिया। कमिश्नर को गोली मारने के तत्काल बाद ही उसने स्वयं को गोली मार ली। कितनी विचित्र प्रतिक्रिया है! जो नौकर अनेक वर्षों से मालिक का बहुत वफादार था, उसने उत्तेजना की चरम स्थिति पर पहुँचकर मालिक को गोली मार दी। आश्चर्यजनक लगता है ये सब। पर कई बार सत्य कल्पना से कई गुना अधिक आश्चर्यजनक होता है।

"जनरल मरफी मन का साफ आदमी था। आज प्रातः जब वह दांत मांज रहा था तब एक गोली सनसनाती हुई आयी और उसका सीना चीर कर निकल गयी। उसे भी दफना दिया गया है। इसके बाद लगातार कई लोग मरे हैं, पर किसी को कफन नहीं मिल सका। एकमात्र मरफी ही ऐसा भाग्यशाली था, जो मरते समय कफन ओढ़कर सोया। विधि का कितना

विचित्र विधान है कि जो अंग्रेज कपड़े के भी बड़े व्यापारी हैं, उन्हें अन्तिम समय कफ़न नहीं मिल पा रहा। अनेक लोग दफ़नाये नही जाते, उनकी लाशें ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ पड़ी रहती हैं। उनकी सफाई करने वाले भी नही है, क्योंकि एक-दो व्यक्ति मरते तो दफ़नाना भी सम्भव होता, किन्तु अब जब हर गोली कुछ-न-कुछ करिश्मा दिखा रही है, तब कहाँ तक गड्ढे खोदे जायें, कहाँ तक लाशें उठायी जायें! ···इन्हें यों ही पड़ी रहने दो। यह भाग्य ही है कि यहाँ प्रकृति हमारी रक्षक सिद्ध हो रही है, जिसने इन लाशों में कमी करने के लिए गिद्ध-जैसे पक्षी भेज दिये हैं। वे लाशो को अपनी पैनी चोंचो से कुरेदते हैं और लोथड़े निकालकर ऊपर उड़ जाते हैं, या आसमान में मँडराते रहते हैं। भूख ने उन्हें भी लोभ मे डाल दिया है और अनेक ऐसे मौके आये हैं, जब कोई गोली किसी मँडराते हुए पक्षी को जा लगी है और वह भी किसी लाश के आस-पास ही रक्त से सनकर आ गिरा है।

"पिछले तीन दिनों से एक नया कष्ट अनुभव कर रहे है—पानी का कष्ट। और मुझे तो आज सुबह से ही पानी नसीब नही हुआ है, हालाँकि कुआँ मेरे सामने ही है। मेरी तरह अनेक लोग हैं, जो देख रहे हैं कि कुआँ उनके पास, बहुत पास, एकदम सामने है। उसमें पानी भी अधिक गहराई पर नही है। इसके बावजूद हम प्यासे हैं। मेरे पास ही एक महिला बैठी है, जिसकी गोद का बच्चा पिछले तीन घंटों से चुप नही हुआ है। हालाँकि रोते-रोते उसका गला ँध चुका है, पर उसके माता-पिता उसकी पानी की माँग पूरी नहीं कर सकते, क्योंकि उन्हें बच्चे के जीवन से अधिक स्वयं के जीवन का भय है। माता, जो ससार की सबसे त्यागमयी नारी मानी जाती है, आज त्याग करते हुए कतराती है। वह अपने बच्चे को पानी नही पिला सकती, क्योंकि सामने वाले कुएँ पर किसी आदमी के न होने के बावजूद गोलियाँ बरस रही हैं। दिन-रात मे कोई क्षण ऐसा नही होता जब वहा गोलियाँ न बरसती रहती हों। दुश्मन कितना समझदार है! वह हमे अधिक से अधिक कष्ट देकर मारना चाहता है। उसने जल-प्राप्ति के रास्ते बन्द

कर दिये हैं।

"जॉर्ज नाम के एक अंग्रेज़ वेटर ने तो धृष्टता और दुस्साहस की सीमा ही तोड़ दी। उसकी व्यापारी वृत्ति देखिए। पिछली रात को जब कुछ समय के लिए उस कुएँ पर गोलियों का बरसना बन्द हो गया था तब जॉर्ज लपककर वहाँ पहुँचा और उसने बाल्टियों से पानी खींचना प्रारम्भ कर दिया। एक बाल्टी पानी उसने दस से पन्द्रह शिलिंग तक में बेचा। थोड़ी ही देर में उसने काफी पैसा कमा लिया था, पर उसका लोभ उतने पर ही नहीं रुका। उस असंतोषी आदमी ने मरते हुए लोगों से पैसा निकालने का अपना नीच प्रयत्न जारी रखा। एक बार जब वह बाल्टी खींचने में लगा हुआ था कि गोलियाँ बरसनी प्रारम्भ हो गईं। चरखी की घरघराहट से दुश्मन पता लगा लेता है कि कोई कुएँ पर पानी खींचने की धृष्टता कर रहा है। जॉर्ज ने बाल्टी छोड़कर बचने-भागने का बहुत प्रयत्न किया, पर आसपास कोई ओट नहीं थी। उसके सब प्रयत्न व्यर्थ रहे। गोलियाँ इतनी थीं कि वह हर कदम के साथ बिंधता चला गया। बचाव न कर सका। सुबह से उसकी लाश भी गिद्धों और जंगली पक्षियों का भोजन बनी हुई है।

"हाल में मेरे मित्र मेजर लिंडसे का तीन साल का बच्चा पानी के अभाव में घिसट-घिसटकर मर गया। वह अपने सुन्दर शरीर को घसीटता हुआ, कभी ज़मीन चाटता, कभी अँगूठा, कभी कैनवास का कोई टुकड़ा, कभी चमड़े की पट्टियाँ और कभी जूते। वह अपने होंठों पर जीभ फिराता और अपनी छोटी-छोटी और गोल आँखों से हैरानी के साथ इधर-उधर ताकता। निश्चय ही उसे पानी की तलाश थी। यदि एक बूंद पानी उसके सूखे तालू पर जा गिरता, तो उसका जीवन बच सकता था। ऐसा लगता है जैसे पानी की एक बूंद तमाम दुनिया की कीमत से भी अधिक है। आज पानी की एक बूंद इतनी महँगी है, इतनी कीमती कि हमारे देश की रानी के क्राउन से भी उसकी कीमत पूरी नहीं हो सकती !

"एक सिपाही पागल हो गया है। वह कभी हँसता है, कभी रोता है।

कारण यह है कि रात को उसकी केतली का थोडा-सा पानी किसी ने चुराकर पी लिया। उसे इसका वही सदमा पहुँचा जो किसी बूढे आदमी को जवान बेटे की मृत्यु पर पहुँचता है।

"प्यास और भूख हमारे लिए पेशवा की गोलियों से भी अधिक खतरनाक साबित हो रहे हैं।

"कैप्टेन मूर ने नये आदेश दिए हैं, जिनके अनुसार हमे एक वक्त का भोजन मिलने लगा है। इस दैनिक राशन मे भी प्रति व्यक्ति मुट्ठी भर मटर, एक मुट्ठी आटा (कुल मिलाकर इतना, जो एक पिंट से अधिक नही होता।)हम पा रहे हैं। यह जिन्दा रहने का तो नही; हाँ, साँस चलाते रहने का साधन है। रसद बढाने के हर सम्भव प्रयत्न जारी हैं। अभी, आज की ही बात है। दुश्मन के दो घुडसवार हमारे बहुत नज़दीक तक आ गए थे। हमने उन्हे मार गिराया और उनके घोडो को भी मार डाला। हम कई लोग मिलकर मृत घोडे भीतर खीच लाए और उन्हे काटकर शोरवा तैयार किया तथा उसे खाकर अनेक स्त्री-पुरुष और बच्चो ने अपनी क्षुधा शान्त की। कैप्टेन हार्टिडे तीन दिन से भूखा था। मोर्चे पर खडे-खडे उसके पैर भी दुखने लगे थे। जैसे ही उसे घोडो के शोरबे का समाचार मिला, वह अपना स्थान छोडकर भागता आया। थोडा-सा शोरवा बचा था। उसने उसे एक प्लेट मे रख लिया। और जब वापस जा रहा था तभी उसे एक गोली लगी और वह वही ढेर हो गया। कल कुछ भूखे सैनिको ने एक ब्राह्मणी साड मार डाला। जैसे-तैसे उसे गोलियो के बीच से खीचकर भीतर खाई तक लाए। वहाँ उसकी पवित्रता का ध्यान रखे बिना उसे काटकर शोरवा बनाया गया। अनेक लोगो की भूख कुछ समय के लिए इस पवित्र साड ने मिटा दी, फिर भी बाहर चौकियो पर तैनात सैनिक तथा असैनिक, जो इस जगह से कुछ दूर थे, शोरवा-प्राप्ति से वंचित रह गए।

"अभी-अभी मेरा एक मेहरबान मित्र अधभुने मास का एक टुकडा रकाबी में रखकर मेरे पास लाया था। मैं भूखा हूँ। बहुत भूखा। मैंने तत्काल उसे खा जाना चाहा, पर जब मेरे मित्र ने यह बताया कि वह मास

का टुकड़ा एक बाज़ारू कुत्ते का है, जिसे उन्होंने लोभ देकर अपने पास बुला लिया था और मारकर भून डाला; तब मुझे बड़ी घृणा हुई और मैंने रकाबी वापस करते हुए उसे खाने से स्पष्ट इनकार कर दिया। भूख, जिसने हमें वहशियों की-सी हालत में ला दिया है, बेहद दर्दनाक दृश्य उपस्थित कर रही है।

"स्थिति क्रमशः बिगड़ती जा रही है और सहायता का कोई संकेत हमें नहीं मिला है। कल से जनरल ह्वीलर कुछ स्वस्थ हुए हैं। ब्लेनमेन से मिली निराशा के बावजूद कप्तान मूर ने सन्देश भेजने के प्रयत्न किए हैं, पर दुर्भाग्य! ईश्वर और देश के नाम पर मूर कल से किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश कर रहा है, जो सन्देश भेजने की ज़िम्मेदारी उठाए, पर अब तक कोई भी व्यक्ति तैयार नहीं हुआ है। इसके विपरीत लोग तरह-तरह से अधिकारियों की आलोचनाएँ करते हैं; और जिससे भी यह काम करने के लिए कहा जाता है, वह खड़े-खड़े नकारात्मक उत्तर देता है।

"लेफ्टिनेंट ब्रिजिज के तीन हिन्दुस्तानी नौकर उसके प्रति वफादार थे। गई रात जब तीनों बैठे गपशप कर रहे थे, तभी एक गोला गिरा और उन तीनों के चिथड़े उड़ गए।

"ऐसे समय में जब चारों ओर मृत्यु का तांडव चल रहा है, ईश्वर और प्रकृति अपने रचनात्मक कार्य में व्यस्त है। भयंकर गर्मी के इन दिनों में भी कुछ स्त्रियों ने बच्चे जने हैं। प्रसव की अपार वेदना सही है, पर सही उपचार और स्थितियों के अभाव में इन महिलाओं को मातृ-सुख प्राप्त नहीं हो सका, क्योंकि सभी बच्चे या तो जनमते ही मर गए या फिर थोड़ी देर के बाद उपचार के अभाव में समाप्त हो गए। बच्चे कई बार मृत्यु के कारण बन जाते हैं—स्वयं की भी और अपने माता-पिता और स्वजनों की भी। गई रात एक बच्चा खेलता-खेलता बाहर निकल गया। उसकी माता जब उसे वापस लाने गई तो फिर कभी न लौट सकी, जबकि वह बच्चा थोड़ी देर बाद ही खेलता हुआ वापस लौट आया। मृत्यु और जीवन के विचित्र खेल हैं..."

१८

घरों के बन्द दरवाजे थोड़े-बहुत खुले।

पेशवा ने नगर का बहुविध प्रबन्ध किया। दीवानी अदालतें कायम की गईं। अपराधियों के दण्ड की व्यवस्था हुई। क्रांति के सिलसिले में जिन लोगों को थोड़ी-बहुत क्षति हुई थी, उन्हें हर्जाना देने का आश्वासन दिया गया। शहर-कोतवाली और पुलिस-चौकियों का कार्य ज्यों-का-त्यों चलता रहा और कोतवाल के स्थान पर हुलाससिंह बहाल रखा गया।

इस मुहासरे में पेशवा की सेना को नगर की हिन्दुस्तानी औरतों ने काफी मदद दी। सैनिकों को यथास्थान खाना पहुँचाना, उन्हें ढाढ़स देना, नगर की गतिविधि पेशवा तक पहुँचाना और तोपचियों को मदद देने का काम भी वे ही सँभालती थीं।

हुलाससिंह से किए वायदे के अनुसार अजीजन ने पेशा छोड़ दिया था। अब वह हथियार बाँधे, घोड़े पर सवार, नगर की गलियों में दौड़ती रहती। छावनी पर सन्देश देती, सिपाहियों के भोजन की व्यवस्था करवाती और अंग्रेज़ी किले पर जूझ रहे लोगों का हौसला बढ़ाती।

पेशवा के सिपाही उत्साह से लड़ रहे थे। उनके मन में स्वतन्त्रता की लगन और लगातार विजयों का उत्साह था।

तात्या ने बड़ी खूबी और सावधानी से सैन्य-संचालन किया। ग्यारह जून को प्रातः सैनिक कैम्प में तात्या, अज़ीमुल्ला और बाला साहब बैठे अगली योजना की रूपरेखा तैयार कर रहे थे। उनके कानों में बाहर चल रहे युद्ध की तीव्र ध्वनियाँ आ रही थीं। इसी बीच कर्नल गंगादीन, जिसका तमाम शरीर पसीने से भरा हुआ था, सैनिक वेशभूषा में उनके सामने उपस्थित हुआ। उसके साथ एक वृद्ध अंग्रेज और युवती थे।

विस्मयपूर्वक अज़ीमुल्ला ने देखा। "पैटन महाशय ? आप···?"

पैटन ने उत्तर नहीं दिया। फीकी-सी हँसी उसके चेहरे की झुर्रियों में

झाँकी और फिर विजली की तरह गुम हो गई। वृद्ध अंग्रेज़ के कपड़े गन्दे थे। वाल अस्त-व्यस्त और गोरे शरीर पर अनेक स्थानों से रक्त वह रहा था। पास ही खड़ी थी जूलिया, उसकी लड़की। पिता-जैसी ही वदहवास। अज़ीमुल्ला एक क्षण के लिए विचलित हो उठा। तात्या और वाला साहव ने समझ लिया, अवश्य ही खान उनसे पूर्व-परिचित है।

गंगादीन ने आरोप किया, "हुजूर, यह वुड्ढा और लड़की शहर से वाहर निकलने की कोशिश कर रहे थे। लड़की तो वहुत ही ढीठ है, साहव। इसे पकड़ने में हमें वहुत तकलीफ हुई।"

अज़ीमुल्ला सुन रहा था, पर उन दोनों की ओर देख न पाता था।

तात्या वोला, "वैठिए!"

वे नहीं वैठे। ज्यों के त्यों खड़े रहे। जूलिया पैटन की अपेक्षा अधिक गम्भीर थी।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "वैठिए, महाशय!" फिर वह तात्या की ओर मुड़ा, "तात्या साहव! ये मेरे गुरु हैं, और मिस जूलिया इनकी वेटी हैं।"

वाला साहव मुसकराया, "कितनी अजीव वात है! आज एक गुरु अपने शिष्य के सामने अपराधी के रूप में खड़ा है। वैठिए!"

पैटन ने उत्तर नहीं दिया। जूलिया ने तीखे स्वर में कहा, "हम लोग ठीक हैं, आप दण्ड दीजिए।"

तात्या हँसा—"श्रीमन्त पेशवा वहादुर ने अपराधियों को दण्ड देने के अधिकार सिर्फ खान साहव को दिए हैं। हम तो मात्र आपका स्वागत ही कर सकते हैं। वैठिए!"

वृद्ध पैटन ने उत्तर दिया, "आपके सम्मान के लिए धन्यवाद! प[illegible] हम खान साहव के सामने अपराधी हैं, और अपराधी न्यायाधिकारी के सामने वैठा नहीं करते!" फिर वह अज़ीमुल्ला की ओर मुड़ा—"आप दण[illegible] दीजिए! हम तैयार हैं।"

अज़ीमुल्ला चुप रहा। जूलिया वोली, "खान साहव! हमारे अपरा[illegible] वताइए और हमें दण्डित कीजिए।"

अज़ीमुल्ला ने सिर ऊँचा किया। तात्या और बाला साहब उत्सुक भाव से उसे देख रहे थे, आज न्याय और सम्बन्धों पर बात आ पड़ी है।

अज़ीमुल्ला ने पूछा, "सैनिकों के अनुसार तुम लोग भाग रहे थे। क्या यह आरोप सही है?"

"हाँ, सही है," उत्तर पैटन ने नहीं, जूलिया ने दिया, "एक शहर से दूसरे शहर में जाना अपराध नहीं है।"

लड़की तेज-तर्रार है, तात्या ने सोचा।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "कम्पनी सरकार से यह राज्य पेशवा बहादुर ने जीता है, और अब यहाँ कम्पनी सरकार का नहीं, पेशवा बहादुर का कानून चलता है। पेशवा बहादुर का हुक्म है कि कोई आदमी यहाँ से मनचाहे तरीके पर भाग नहीं सकता।"

जूलिया निरुत्तर हुई। पैटन ने एक बार उदास भाव से अज़ीमुल्ला को देखा। बाला साहब की इच्छा हुई कि खान का माथा चूम लें। दुनिया के सारे तर्क उसी में समाए हुए हैं।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "तुम लोग यहाँ से भाग रहे थे, यह आरोप सत्य है। तुम लोगों ने स्वीकार भी किया है। आज जब हमारे देश में स्वतन्त्रता की लड़ाई छिड़ी हुई है, तब तुम लोगों का इस तरह भागना हमारे मन में सन्देह पैदा करता है।"

जूलिया बोली, "केवल सन्देह के आधार पर ही हमें दण्ड दे देंगे क्या?"

वृद्ध पैटन को स्वयं से अधिक जूलिया की चिन्ता थी। कुछ विचलित होकर उसने सफाई दी, "आप विश्वास कीजिए। हमारे भागने का प्रयत्न केवल जीवन-रक्षा के उद्देश्य को लेकर था।"

"हम कैसे मान लें?" बाला साहब ने पूछा, "आपके पास कोई प्रमाण है?"

पैटन ने सिर झुका दिया। सफाई के अलावा उनके पास कोई प्रमाण नहीं है।

अज़ीमुल्ला ने आरोप दोहराया, "हमारा सन्देह सही है। प्रमाण के

अभाव और मौजूदा हालात में हम तुम्हारी मौखिक सफाई पर विश्वास नहीं कर सकते।"

पैटन घबराया, "आप विश्वास कीजिए..."

तात्या हँसा— "आप पर विश्वास करें?" उसने ज़ोरदार ठहाका लगाया, "आपने हमें भी सिराजुद्दौला या बहादुरशाह समझ रखा है क्या?" कठोर स्वर में उसने कहा, "आपने विश्वास की कोई गुंजाइश ही नहीं रखी है, फिरंगी दोस्तो! हम अब आपकी किसी बात पर विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि अब कोई हिन्दुस्तानी अमीचंद या नंदकुमार नहीं रहा है।"

जूलिया और पैटन के सिर झुक गए। अनचाहे-अनजाने ही उन्हें लगा जैसे भारत में अंग्रेज़ी राज की हर नीति उनकी गरदनों पर वजन की शक्ल में रखी हुई है।

अज़ीमुल्ला के मन में पैटन के प्रति अविश्वास न था, किन्तु जिस स्थान पर पेशवा ने उसकी नियुक्ति की थी, जिम्मेदारियाँ सौंपी थीं, उन्होंने उसे लाचार किया था कि वह अंग्रेज़ जाति के प्रति कठोर रुख अपनाए। भारी स्वर में बोला, "हमें दुःख है कि तुम लोगों ने विश्वास का कोई रास्ता नहीं छोड़ा है।"

जूलिया ने स्मरण दिलाया, "एक बार आपने व्यक्तिगत तौर पर मुझ पर विश्वास होने की बात कही थी। लगता है, आपकी राय बदल गई है। हालाँकि मुझे याद नहीं है कि आपके विश्वास को मैंने कभी ठेस पहुँचाई है।"

"तुम ठीक कहती हो," अज़ीमुल्ला कठोर हुआ—"व्यक्तिगत रूप से मेरी राय अब भी कायम है। किन्तु पेशवा बहादुर का न्यायाधिकारी होने के नाते मेरी राय है कि तुम लोग विश्वास के योग्य नहीं हो। पिछली अनेक घटनाओं पर विचार करते हुए मेरा विचार है कि तुम्हारा यहाँ से भागने का प्रयत्न कोई षड्यंत्र था। मैं तुम्हें मृत्युदण्ड देता, पर प्रमाण के अभाव में बरी करता हूँ।"

बाला साहब और तात्या अवाक् रह गए। अज़ीमुल्ला न्याय में बेई-

मानी करेगा, यह उन्होंने नहीं सोचा था।

पैंटन खुश हुआ—"मैं जानता था, आपको मुझ पर विश्वास है।"

इस बीच वाला साहब निर्णय ले चुका था। इस धांधली की शिकायत पेशवा तक अवश्य पहुँचाएगा। ऐसे आड़े वक्त पर किसी भी अंग्रेज को रियायत देना खतरनाक साबित हो सकता था।

तात्या टोपे की इच्छा थी कि खान को निर्णय पर पुनर्विचार करने की सलाह दे, पर मन मसोसकर रह गया। न्याय के बीच किसी तरह की दखलन्दाजी ठीक नही थी। पेशवा किसी भी शर्त पर न्याय मे दखल बर्दाश्त न करता। भले वह दखल किसी हद तक कितना भी सही क्यों न होता।

पैंटन और जूलिया धन्यवाद व्यक्त करते हुए जाने लगे। अजीमुल्ला ने उन्हें टोका, "ठहरिए!"

वे रुक गए। सभी की नजरें खान के चेहरे पर अटक गईं।

'अभी निर्णय पूरा नही हुआ। प्रमाण के अभाव मे आपको बरी तो कर दिया गया है, परआपका विद्यार्थी और श्रीमन्त पेशवा बहादुर का विश्वासपात्र सेवक होने के नाते आपके प्रति मेरा कुछ कर्तव्य शेष है।"

तात्या विचलित हुआ। खान साँप पालेगा क्या?

अजीमुल्ला कह रहा था, "विद्यार्थी होने के नाते मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप लोग सुरक्षित रहें और श्रीमन्त पेशवा बहादुर का न्यायाधिकारी होने के नाते, यह भी आवश्यकहै कि आपको, जिन पर विश्वास नही किया जा सकता, इस तरह आजाद न घूमने दिया जाए। अतः मैंने सोचा है कि आप लोगों को आपके अपने साथियो के पास पहुँचा दिया जाए। कहिए, कैसा रहेगा?"

जूलिया और पैंटन के चेहरे भय से सफेद हो गए। उस किले मे पहुँचाकर अजीमुल्ला उन्हें अपरोक्ष रूप से मृत्युदण्ड दे रहा है। घबराकर पैंटन बोला, "आप हमे वहाँ न भेजिए!"

जूलिया ने घृणापूर्वक कहा, "खान साहब! आप सीधे-सीधे मृत्युदण्ड क्यो नही देते? इतिहास मे यह कलंक बड़े-बड़े अक्षरों मे लिखा जाएगा

कि एक विद्यार्थी ने अपने आदरणीय शिक्षक को निरपराध मृत्युदण्ड दिया था।"

"वेशक ! इतिहासकार सच्चाई और न्याय-अन्याय का विश्लेषण करते हैं, पर कई बार घटना की पृष्ठभूमि पूरी न मिल पाने के कारण न्याय, अन्याय में वदल जाता है। हो सकता है ऐसा ही हो, पर उसी स्थिति में होगा जव वह इस घटना के आदि-अन्त की पृष्ठभूमि से गैर-जानकार हुआ। यदि ऐसा न हुआ तव यही घटना इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ वन जाएगी। क्योंकि यहाँ किसी विद्यार्थी ने अपने शिक्षक को मृत्युदण्ड नहीं दिया। उल्टे एक विद्यार्थी होने के नाते अपने आदरणीय शिक्षक की सुरक्षा का ध्यान रखा है। न्यायाधिकारी होते हुए भी अपने व्यक्तिगत विश्वास के आधार पर अपराधियों को छोड़ दिया है; जवकि आज की परिस्थिति में आप लोगों को छोड़ देने का कोई कारण नहीं हो सकता। न्याय तो तव होता जव आप लोगों को तोप के मुंह से लगाकर उड़ा दिया जाता !"

तात्या और वाला साहव आश्चर्यपूर्वक वार्तालाप सुने गए। खान सूझ-वूझ की दौड़ें कितनी तेजी से दौड़ता है और राजनीति के कैसे-कैसे मोहरे रखता है, उनके लिए समझना कठिन था और समझ में आने पर आश्चर्य-जनक।

पैटन गिड़गिड़ाया, "हो सकता है, खान साहव कि आपने हमारे साथ रियायत वरती हो, पर उस किले में हमें पहुँचा देना, मृत्युदण्ड देना ही है। हमें वहाँ मत भेजिए !"

जूलिया पहले की तरह ही अविचलित खड़े हुए फुफकारी, "यह मृत्यु-दण्ड का सभ्य तरीका है !"

थोड़ी देर वाद सैनिकों को वुलाकर पैटन तथा जूलिया को अंग्रेज़ी किले तक छोड़ देने केआदेश हुए। उन दोनों के साथ एक चेतावनी भी थी, जिसमें किले के अंग्रेज़ों को आत्मसमर्पण कर देने के लिए कहा गया था।

१९

कप्तान मूर ने घेरे के इन दिनों में यों तो अनेक आदमी खो दिए, पर उसे सर्वाधिक दुख इस बात का था कि पेशवा की सुदृढ़ सैन्य-व्यवस्था के कारण उसके खेमे या मोर्चे का कोई हाल नहीं मिल पाता था। इस बीच मूर ने दो जासूस भेजे, पर न तो वे लौट ही सके और न ही कोई खबर मिल सकी। निश्चय ही वे पेशवा की सजग व्यवस्था में बलि हो गए होंगे। यदि कोई ऐसा समाचार मिल जाता कि पेशवा की फौजों की अन्दरूनी हालत क्या है और किस ओर से उसका मोर्चा कमज़ोर है तो इस आधार पर थोड़े दिनों तक और मुकाबला जारी रखा जा सकता था। अंग्रेज़ों की स्थिति इतनी दयनीय थी कि अनेक लोग बिना शर्त ही आत्मसमर्पण पर तैयार थे। ग्यारह तारीख की रात पैटन और जूलिया भी किले में आ गए। वे पेशवा का सन्देश लाए थे। स्पष्ट रूप से बिना किसी शर्त आत्मसमर्पण कर देने के लिए कहा गया था। मूर ने जब पैटन और जूलिया के दुश्मन के खेमे की जानकारी चाही तो पता चला कि पेशवा मजबूत है। फौजें तो हैं ही, नगरवासी भी उसका साथ दे रहे हैं। वहाँ जासूसी करना बहुत कठिन काम है। जो व्यक्ति सन्देह में पकड़ा जाता है, उसे मृत्युदण्ड मिलता है। बंदियों के साथ भी रहम नहीं किया जाता!

"हम भी बन्दियों के साथ रहम नहीं करते!" मूर ने कहा और सोच में पड़ गया। ऐसे 'मौसम' में जासूसी के लिए भी कोई तैयार नहीं होता था। फिर भी मूर ने प्रयत्न जारी रखे। चौदह जून की रात उसने मूतकराम नाम के एक ऐसे हिन्दुस्तानी को पेशवा के यहाँ जासूसी करने के लिए तैयार कर लिया, जो ग्रीनवे नामक एक अंग्रेज व्यापारी के यहाँ कई वर्षों से नौकर था। मूतकराम बहुत लालची और डरपोक था, पर मूर और ग्रीनवे ने मिलकर उसे इतना लालच दिया कि डरपोक होने के बावजूद उसने यह जानलेवा धंधा करना तय कर लिया। रात को ही वह अंग्रेज शिविर से नाना के शिविर की ओर निकल गया। जाते समय उसे

कुछ विश्वासपात्रों के नाम गिना दिए थे—नन्हे नवाब, कोतवाल हुलास-सिंह और सदर बाज़ार के एक पानवाले से मिलने की सलाह दी थी।

रात के गहन अन्धकार से लड़ता हुआ सूतकराम अंग्रेज़ शिविर का एक क्षेत्र लाँघकर पेशवा के फौजी क्षेत्र में पहुँच गया। सारे रास्ते वह अपने डरपोक मन को हजारों पौंडों के वजन में दबाये रहा। जरा-सी आहट होती और वह धरती पर लेट जाता। दिल जोर-जोर से धड़कने लगता।

एकाएक घने अन्धकार में एक दर्दनाक चीख उभर पड़ी।

सूतकराम सीना थामकर वहीं बैठ गया। थोड़ी देर बाद जब वह चीख दब गई और उसकी जगह सिर्फ कराहें आने लगीं तब सूतकराम अपने स्थान से उठा। यह किसी घायल की कराह थी, जो मृत्यु के अन्तिम क्षणों में भी जीवन की आशा सँजोये जी रहा था। साहस बटोरकर उसने दो कदम आगे बढ़ाए। घायल व्यक्ति के नाम मन-ही-मन कोई गाली विचारी। कितना डरा दिया था कमबख्त ने! पेशवा के क्षेत्र में पहुँचते ही उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। पर पौंडों की खींच ताकतवर थी, जैसे कोई अज्ञात शक्ति सूतकराम को खींचे जा रही हो। बढ़ते-बढ़ते ठिठक गया सूतकराम। ठीक सामने कुछ मशालें, इधर-उधर चलती-सी नज़र आ रही थीं। शायद पेशवा का कैम्प है! और मशालची पहरेदार वहाँ सतर्कता से पहरा दे रहे हैं। एक क्षण वहीं रुककर सूतकराम ने पुनर्विचार किया और फिर तेज चाल में उसी ओर बढ़ने लगा। कुछ आगे बढ़ने पर उसे तोपें दीखने लगीं। इसका मतलब है कि वह तोपखाने की ओर पहुँच गया है। थोड़ी ही देर बाद उसे कड़े स्वर में आवाज सुनाई दी, "कौन है? ···वहीं रुक जाओ!"

सूतकराम जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। चेहरे पर उसने दृढ़ता पैदा की। हालाँकि दिल की हालत यह थी कि लगता था, जैसे सीने में धड़क रही कोई चीज़ अभी उछलकर बाहर आ गिरेगी। मशालची घेरा बनाकर उसकी ओर बढ़े आ रहे थे—"हथियार फेंक दो!"

घबराकर सूतकराम चिल्लाया, "मेरे पास हथियार नहीं है! गोली

मत चलाना। मैं हिन्दुस्तानी हूँ।"

अब उस पर मशालों का प्रकाश पड़ने लगा था, इतना कि वह अपने कपड़ों का रंग भी भली-भाँति देख सकता था। वह नीचे धरती की ओर देख रहा था, जो रक्त से भीगकर सूख चुकी थी। जब उसकी दृष्टि अपने पैरों की ओर गई तो एक चीख मुँह के बाहर आते-आते रह गई। अँधेरे में वह जाने कितना मार्ग, रक्त और माँस के बीच से पार करता आया था। उसके पैर पिंडलियों तक रक्त से सने हुए थे और कहीं-कहीं पर माँस के लोथड़े भी चिपक गए थे।

मशालें ऊँची हुईं। सूतकराम ने घबराहट थामी।

पहरेदार ने पास पहुँचकर उसे घेर लिया।

"कहाँ से आ रहा था?"

"फिरंगी छावनी से।" सूतकराम ने पैरों को बहुत सँभाला, पर भय से वे काँपने ही लगे—"मैं ग्रीनवे साहब का नौकर हूँ। किले में फँस गया था, सो जान बचाकर निकल भागा हूँ।"

सिपाहियों ने पहले सूतकराम को और फिर एक-दूसरे को देखा, जैसे कोई निर्णय किया हो। एक बोला, "हिन्दुस्तानी है, छोड़ दो। साला जान बचाकर भागा होगा!"

दूसरे ने राय दी, "इसे कप्तान साहब के पास ले चलो! दुश्मन की छावनी से आया है, काम की बातें बताएगा!"

फिर उन्होंने अधिक वाद-विवाद नहीं किया। सूतकराम को पीछे से एक सैनिक ने धक्का दिया और दो ने उसे आगे से खींचा। सूतकराम चुपचाप उनके साथ-साथ चलने लगा। मोर्चे का इलाका प्रारम्भ हो गया था। सूतकराम सावधानी से इधर-उधर देखता-सुनता गया। तीन तोपें थीं, जो छितराई-सी एक-दूसरे से अलग रखी हुई थीं। दक्षिण दिशा की ओर सिपाहियों की कतारें थीं। जब वह और आगे बढ़ा तो क्रमबद्ध तम्बू दीखने लगे। यहाँ शायद सैनिकों और अधिकारियों के रहने की व्यवस्था थी। बीचोंबीच आकर सिपाही कम हो गए। अब सूतकराम केवल दो सैनिकों

की देख-रेख में ले जाया जा रहा था।

एक सैनिक ने दूसरे से कहा, "गंगादीन साहब के पास चलो !"

"नहीं, उतनी दूर ले जाने की क्या जरूरत है ? नन्हे नवाब के हजूर में पेश करो ! यहाँ पास ही तम्बू है !"

पहले ने सिर हिलाकर स्वीकार किया, "हाँ, ठीक है।"

सूतकराम चौंका। नन्हे नवाब भी पेशवा के साथ हैं ? यह तो बड़ी गड़बड़ हुई। हौला (ह्वीलर) साहब तो कहते थे कि 'अपना आदमी' हैं। पर दूसरे ही क्षण उसे स्वयं की नासमझी पर तरस आया। नन्हे नवाब फिरंगियों का ही आदमी होगा, पर जान बचाने के लिए पेशवा के साथ हो लिया। यह सोचकर उसे हर्ष हुआ कि वह बिना किसी परेशानी के ठीक जगह पहुँचाया जा रहा है।

एक चौकोर और बड़े तम्बू के पास पहुंचकर सिपाही रुक गए। दरवाज़े पर परदा लटका हुआ था और दो सिपाही बाहर तैनात थे। एक मशाल कोने में लगी रोशनी दे रही थी। सूतकराम के साथ वाले दो सिपाहियों में से एक उन दोनों पहरेदारों के सामने जा खड़ा हुआ, "नवाब साहब को खबर करो कि दक्खिन मोरचे की एक टुकड़ी ने अंग्रेज़ छावनी का एक आदमी पकड़ा है।"

पहरेदारों ने घूरकर सूतकराम को देखा, फिर उनमें से एक भीतर चला गया। कुछ देर बाद वह लौटा—"तुम जा सकते हो !"

सूतकराम को साथ लिए हुए दोनों सिपाही तम्बू में चले गए।

सूतकराम को नन्हे नवाब के सामने पेश कर सिपाहियों ने निवेदन के स्वर में आरोपित किया, "हुजूर, यह आदमी फिरंगी छावनी से बचता-छिपता इधर आ रहा था।"

"क्यों रे ?"

"जी, हुजूर, मैं अपनी जान बचाकर आ रहा था।"

"कौन है तू ?"

"मैं ग्रीनवे साहब का नौकर हूँ, हुजूर !" सूतकराम को प्रश्न की

कठोरता से लगा, जैसे अभी ही वह घवराकर गिर पड़ेगा, पर पौंड···? उनमें बहुत वजन था। सूतकराम डटा रहा।

"क्या हाल हैं फिरंगियो के ?"

सूतकराम ने मुड़कर दाएँ-बाएँ सिपाहियों को देखा, चुप रहा।

नन्हे नवाव ने दोनो सिपाहियो को वाहर जाने की आज्ञा दी, फिर बोला, "अब वताओ !"

सवाल पूछने का तरीका अब कुछ ऐसा था कि सूतकराम को लगा, जैसे नन्हे नवाव उसी की तरह फिरंगियों के प्रति वफादार है। हौला साहब कहते थे कि नन्हे नवाव कम्पनी सरकार का वफादार है, फिर भी एकाएक कुछ भी कह डालना अहितकर था। सो बोला, "साहब लोग वड़ी तकलीफ में हैं, हुजूर !"

"क्यो ?"

सवाल-जवाव साधारण ढंग से हो रहे थे। सूतकराम का विश्वास दृढ होता गया। नन्हे नवाब कम्पनी सरकार का हो आदमी है। उसने कहा, "उनकी 'हालियत' अब इतनी खराब है कि वे हाजिरी कर देंगे।"

"क्यों?" नन्हे नवाबने व्यग्य किया, "उन्हे मुकावला करना चाहिए।"

सूतकराम को विश्वास हो गया, नन्हे नवाव आत्मसमर्पण करने की नही, लड़ने की सलाह देता है। जरूर साहब लोगों को कुछ न कुछ मदद मिलने वाली है। इस बार उत्तर देने से पहले उसने चारो ओर देखा, फिर बोला, "हुजूर ! जनरल हौला साहव कहते थे कि वे लडना चाहते हैं, पर कम्पनी के पुराने दोस्त कुछ मदद करें तो लड़ सकेंगे !"

नन्हे नवाव चौंका। माथे पर सिकुड़नें पडी। यह आदमी जान वचाने नही आया है ! एकाएक ही नन्हे नवाव ने वात का रुख वदल दिया—"यह तो ठीक है, पर दोस्त लोग क्या करें ? अंग्रेजी छावनी से कोई खवर ही नही मिलती।"

"वही तो, हुजूर !" सूतकराम का मन गर्म दूध पर पड़ी मलाई की तरह ऊपर आ गया—"हौला साहव ने कहा है कि यदि आप पक्की मदद

करें तो कम्पनी सरकार हमेशा के लिए आपकी हो जाएगी।"

नन्हे नवाब के नथुने फूल गए। फिरंगी साहब का हिन्दुस्तानी नौकर नमक बजा रहा है।

सूतकराम कह रहा था, "मुझसे पहले तीन-चार साहब लोग सन्देशा लेकर आप सरीखे दोस्तों तक भेजे गये थे, पर वे सब मारे गये। उनका गोरा रंग पहचान में आ जाता था। इसीलिए हौला साहब ने मुझे भेजा है।"

"ठीक किया," नन्हे नवाब ने मुट्ठियाँ भींच लीं, पर मुंह से चाशनी-लिपटे शब्द बहाये।

"तो मैं सरकार की तरफ से साहबों को भरोसा दिला दूं ?"

"बिलकुल !"

"जी, हुजूर !" सूतकराम खुश हुआ। उसे लगा जैसे जेब में पौंडों का वजन बढ़ गया है। उसे उन हतभाग्यों के बारे में सोचकर दुःख हुआ, जो इस काम में पहला कदम रखते ही जान से हाथ धो बैठे थे।

"फिर हुजूर, मुझे छावनी से बाहर आने-जाने की सुविधा कर दीजिए। हौला साहब तक पहुँचकर खबर दूंगा, खबर जाऊँगा।"

नन्हे नवाब की इच्छा हुई, सूतकराम को फौरन तोप के मुँह से उड़वा दे। उसने कहा, "तुम्हें कोई नहीं टोकेगा, पर अभी सीधे साहबों के पास ही लौटोगे क्या ? या इधर शहर-वहर जाना है ?"

सूतकराम के मन में नवाब के प्रति किसी तरह का सन्देह शेष नहीं था—"अभी तो ज़रा शहर की तरफ जाऊँगा। हौला साहब ने आपका और कोतवाल साहब का नाम लिया था। आपसे तो भेंट हो ही गई, अब कोतवाल साहब से और मिलना है।"

नन्हे नवाब का माथा ठनका—"कोतवाल साहब भी 'अपने' ही हैं क्या ?"

"जी, हुजूर ! वह तो बहुत भरोसे के आदमी हैं। जब बगावत होने वाली थी और पेशवा बहादुर साहबों के दोस्त बनकर धोखा कर रहे थे,

तभी कोतवाल साहब ने कलेक्टर को बताया था, पर उन्होंने नहीं माना। उसी का किया भुगत रहे हैं। एक दिन कह रहे थे कि उस दिन कोतवाल की बात पर भरोसा किया होता तो जरा भी तकलीफ न होती और पेशवा बहादुर की पोल भी खुल जाती।"

"अच्छी बात है!" नन्हे नवाब ने कहा, "मैं तुम्हारे शहर पहुंचने की व्यवस्था करवाता हूँ, ताकि आज ही हमारी बातचीत साहबों तक पहुँच जाए।" सूतकराम को बात करने का मौका दिये बिना, दरवाजे का पर्दा हटाकर नवाब बाहर निकल गया। थोड़ी देर बाद लौटा—"अब तुम्हें कोई नहीं टोकेगा। बेखटके शहर चले जाओ!"

सूतकराम चला गया। उसके जाते ही नवाब ने सैनिक को बुलाया। आदेश दिया, "अज़ीज़न बी को खबर करो, नन्हे नवाब याद करते हैं।"

नन्हे नवाब के आदेशानुसार अज़ीज़न बरामदे के एक अँधेरे हिस्से में छिपी हुई सारी बातचीत सुन रही थी। बीच-बीच में खिड़की की राह वह झांकती भी रही।

हुलाससिंह पलँग पर अधलेटा पड़ा था और सूतकराम जमीन पर बैठा हुआ अपने अंग्रेज मालिकों का सन्देश दे रहा था। अज़ीज़न सूतकराम को अच्छी तरह जानती थी। उसका मालिक ग्रीनवे, अज़ीज़न की महफिल में रोजमर्रा आने वालों में से था। कभी-कभी सूतकराम महफिल में पहुंचकर ग्रीनवे को समाचार भी दिया करता था।

सूतकराम फुसफुसा रहा था, "हुज़ूर, नन्हे नवाब ने तो भरोसा दे दिया है कि हौला साहब के खास आदमियों में से हैं वह।"

अज़ीज़न ने देखा, हुलाससिंह चुप था। शायद वह कुछ सोच रहा था।

सूतकराम बोला, "इन देशी राजाओं से क्या मिलने-जुलने वाला है? यह तो अपने ही भाइयों के गले काटते हैं। अब आप ही को देखिए न?

पेशवाई आ गई, मगर क्या मिला ? जैसे-के-तैसे कोतवाल हैं।"

हुलाससिंह चुप था। अज़ीज़न को यह सोचकर तसल्ली हुई कि अब तक हुलाससिंह के मुंह से एक भी ऐसी बात नहीं निकली है,जिसके आधार पर उसे गद्दार मान लिया जाए।

सूतकराम ने कहा, "हीला साहब ने कहा है कि लाट साहब को कलकत्ता सन्देशा भेजा गया है,जल्दी ही मदद मिलेगी। अपन को तो अपने बारे में ही सोचना चाहिए, हजूर ! फिरंगी साहब लोग बड़े लड़ाकू हैं और वे पेशवा बहादुर से जल्दी ही कानपुर छीन लेंगे, फिर अपना क्या होगा ?"

हुलाससिंह सुन रहा था। सोच भी रहा था। सूतकराम गलत नहीं कह रहा है। अंग्रेज़ आज विपत्ति में हैं, पर जैसे ही उन्हें सहायता मिली, वे पेशवा के हाथों से कानपुर छीन लेंगे। जो लोग कम्पनी सरकार के वफादार होंगे वे आनन्द करेंगे, बाकी जान से हाथ धोएंगे।

सूतकराम लगातार कहे गया, "अगर आपने साहबों को मदद दी तो हीला साहब कहते थे कि दोस्ती का पूरा खयाल रखेंगे। बस, इतना करवा दीजिए कि इलाहाबाद और लखनऊ तक खबर पहुंच जाए।"

"अच्छा !" काफी देर बाद हुलाससिंह का मुंह खुला। अज़ीज़न सतर्क हो गयी। डूबते-से स्वर में हुलाससिंह कह रहा था, "हीला साहब से कहना कि खबर पहुंच जाएगी। उन्हें भरोसा दिलाना कि कोतवाल साहब हरदम कम्पनी सरकार के वफादार हैं।"

अजीज़न को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। हुलाससिंह गद्दारी कर रहा है ! पर उसने तो अजीज़न को देश के प्रति वफादारी का विश्वास दिलाया था···? पर, जल्दी ही अजीज़न को विश्वास करना पड़ा।

सूतकराम ने अभिवादन किया और चला गया। उसके जाने के बाद हुलाससिंह लेटा और एकाएक चौंक गया। उसने देखा कि अज़ीज़न के साथ एक के बाद एक सैनिक धड़धड़ाते हुए भीतर आ गए हैं।

"क्या बात है ?" घबराकर उसने पूछा।

"कुछ नहीं !" कठोर स्वर में अजीजन ने उत्तर दिया। फिर साथ

वाले सैनिकों को आज्ञा दी, "इसे ले चलो !"

"अज़ीज़न! ...तुम - ?" हुलाससिंह का वाक्य पूरा भी न हुआ था कि सैनिक बन्दूकें सम्हाले हुए उसके पलंग के इर्द-गिर्द आ खड़े हुए।

दूसरे दिन हुलाससिंह को दरबार में पेश किया गया। अज़ीज़न एक कोने में खड़ी थी। बाहर शान्ति थी पर भीतर अन्तर्द्वन्द्व की बेचैनी।

दो सैनिकों के बीच मुश्कों में कसा हुआ हुलाससिंह सिर झुकाए खड़ा था। पेशवा मसी से ऊँचे स्थान पर बैठा था और उसके आसपास उसके विश्वासपात्र सैनिक-असैनिक अधिकारी उपस्थित थे। हुलाससिंह पर लगाये गए आरोप पढ़े गए।

"तुम्हें कुछ कहना है ?" कठोर स्वर में पेशवा ने पूछा।

"कुछ नहीं !" हुलाससिंह ने कहा।

"तुम पर लगाये गए आरोप सही हैं ?" अज़ीमुल्ला ने प्रश्न किया, "तुमने विदेशी फिरंगियों के साथ मिलकर अपनी धरती का सौदा करना चाहा ?"

हुलाससिंह ने उत्तर में एक ओर खड़ी अज़ीज़न की ओर भीगी-भीगी नज़रों से देखा और स्वीकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया।

अज़ीज़न की गवाही की आवश्यकता नहीं हुई। स्वयं पेशवा ने निर्णय किया, "इसकी जिस ज़बान ने हमें विश्वास दिलाकर धोखा दिया, वह काट डाली जाए। इसकी व्यापारी आँखें हिन्दुस्तान की पवित्र धरती देखने योग्य नहीं रहीं अतः उन्हें निकाल लिया जाए और इनके जिन हाथों में हमने दण्ड-शक्ति सौंपी थी, वे अविश्वासी साबित हुए हैं, उन्हें काट डाला जाए !"

"क्षमा, श्रीमंत !" हुलाससिंह चिल्लाया, "मैंने भूल की थी। मुझे गोली से उड़ा दीजिये, पर यह दण्ड..."

पेशवा ने आसन छोड़ दिया। दरबार समाप्त हो चुका था।

दूसरे दिन सूर्य की पहली किरण के साथ ही देशघाती को दण्ड देने के लिये मैदान में लाया गया।

अपराधी सिर झुकाये हुए सिपाहियों के बीच घिरा खड़ा था। कुछ देर बाद सैनिकों ने उसे पेड़ से बाँध दिया। दण्ड-व्यवस्था के समय स्वयं प्रधान सेनापति तात्या टोपे, अज़ीमुल्ला और बाला साहब उपस्थित थे। पहले दिन की तरह अज़ीज़न इस दिन भी एक ओर खड़ी थी।

आग में सलाखें गरम की जा रही थीं। लम्बा-तगड़ा एक सैनिक तीखी धार वाला छुरा लिए तैयार था।

तात्या ने आज्ञा दी, "दण्ड दिया जाए!"

वह लम्बा-तगड़ा सैनिक छुरा हाथ में लिये हुए आगे बढ़ा।

अज़ीज़न तात्या के सामने जा खड़ी हुई—"हुज़ूर, इस गद्दार को दण्ड देने का सुनहरी मौका कनीज़ को बख्शा जाए!" उसने घृणापूर्वक कुछ दूर पर पेड़ से बँधे हुए हुलाससिंह को देखा—"इस आदमी ने वतन और मेरे साथ गद्दारी की। जिस ज़बान से इसने मुल्क की वफादारी की झूठी कसम खायी थी, उसी से मुझे प्यार के झूठे वायदे दिए! जिस नापाक आँख से इसने मादरे-वतन को देखा, उसी से मेरा शरीर भी देखा। इसके जिन हाथों में पेशवा बहादुर ने दण्ड-शक्ति सौंपी थी, उन्हीं हाथों में मैंने अपनी जिन्दगी सौंपी थी, पर इसने एक साथ एकबारगी सभी को धोखा दिया। मेरी इल्तिजा है, सरकार! इस नामुराद को सज़ा मेरे हाथों दिलायी जाए!"

तात्या ने अज़ीमुल्ला की ओर देखा।

अज़ीमुल्ला ने कहा, "बुरा नहीं रहेगा!"

छुरे वाला सैनिक हुलाससिंह के नज़दीक पहुँच गया था और पेड़ से बँधा हुआ हुलाससिंह भयातुर हाथ-पैर फेंकता हुआ, बचाव के असफल प्रयत्न कर रहा था। तात्या ने चिल्लाकर सिपाही को रोका, "ठहरो!"

वह ठहर गया।

"अब दण्ड का कार्य अज़ीज़न बी पूरा करेंगी।"

सिपाही ने छुरा अज़ीज़न के हाथों में सौंप दिया। छुरा लेकर वह

आगे बढ़ी।

हुलाससिंह पूर्ववत् छटपटा रहा था।

जब अज़ीज़न दृढ़ता से छुरा पकड़े हुए उसके पास पहुँची, तो हुलास-सिंह ने मुंह बन्द कर लिया। सिपाहियों ने फौरन आगे बढ़कर अज़ीज़न की मदद की। एक ने हुलाससिंह के बाल ज़ोर से खींचने प्रारम्भ किये, दूसरा उसका गला दबाने लगा। बड़ी देर तक हुलाससिंह मुंह बन्द किये छटपटाता रहा, पर जब बहुत लाचार हो गया तो उसने मुंह खोल दिया। सैनिक ने फौरन उसके मुंह मे हाथ डाला, पर मृत्यु के इन क्षणों हुलाससिंह बचाव का हर सम्भव प्रयत्न कर रहा था। उसने सैनिक का हाथ काट लिया। एक चीख मारकर सैनिक पीछे हट गया।

तात्या के दिमाग में एक नयी सूझ आयी—"पहले इसके हाथ काट डालो! फिर आँखें और फिर···"

वैसा ही हुआ। अज़ीज़न ने छुरा सँभाला। भयातुर हुलासिंह ने बन्धन-मुक्ति के अन्तिम प्रयत्न किये। अज़ीज़न के हाथ का छुरा ऊपर की ओर उठा···फिर नीचे आया। वातावरण मे एक भयानक चीख उभरी। दायाँ हाथ छिटककर,दूर जा गिरा, और कटे हुए स्थान से रक्त का फव्वारा फूट पड़ा। छुरा बायीं तरफ उठा,ऊपर गया, नीचे आया। पहला दृश्य एक बार फिर।

अज़ीज़न रक्त-रंगा छुरा लिए हुए दूसरा दण्ड क्रियान्वित करने के लिये आगे बढ़ी। उसके चेहरे पर दृढ़ता थी, अपूर्व दृढ़ता। तात्या ने इससे पूर्व ऐसी कठोर स्त्री नही देखी थी, जो अपने प्रेमी को ऐसा भयानक दण्ड दे सकती।

हुलाससिंह की चीखें सिलसिलेवार हो गयी थीं।

अज़ीज़न लौट रही थी। उसके हाथों में जलती हुई लोहे की दो तेज सलाखें थीं। अज़ीमुल्ला के पास से जब वह निकली, तो सलाखों की गर्मी का अन्दाजा लगाकर अज़ीमुल्ला ने आने वाली भयानक स्थिति की भली-भाँति कल्पना कर ली।

वह हुलाससिंह के पास जा पहुँची।

असह्य वेदना से चीख रहा था हुलाससिंह। सलाखों की गर्मी का अनुभव कर वह भयानक रूप से चीत्कार कर उठा। सलाखें सीधी हुईं और अज़ीज़न के हाथ आगे बढ़े। क्षणमात्र में हुलाससिंह की चमकती हुई आँखों की जगह दो काले डरावने गड्ढे नज़र आने लगे। सलाखों को अन्दर प्रविष्ट कराने की आवश्यकता ही नहीं हुई। उनकी गर्मी से ही हुलाससिंह दृष्टि खो बैठा। उसकी आँखों के आसपास का माँस झुलस गया।

अज़ीज़न लौटी। सलाखें यथास्थान रखने के बाद वह तीसरे दण्ड के लिए छुरा लेकर तैयार हुई पर···हुलाससिंह की चीखें नहीं आ रही थीं। वह ज्यों का त्यों बँधा हुआ था, पर उसका सिर एक ओर लुढ़क गया था।

तात्या ने कहा, "अब कोई आवश्यकता नहीं है, अज़ीज़न बी ! हुलास-सिंह ने देश ही नहीं, मौत के साथ भी गद्दारी की ! उसने पेशवा बहादुर को मरते दम तक धोखा दिया। अब देखिए न ? दो दण्ड भुगतकर ही मर गया कमबख्त ! पेशवा बहादुर का तीसरा दण्ड अभी बाकी है।"

अज़ीज़न सूनी आँखों से हुलाससिंह की लाश देखे जा रही थी—एक-टक। बाला साहब ने उसे कई बार पुकारा। और जब वह उसके पास पहुँचा, उसे यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि अज़ीज़न की आँखें हुलास-सिंह की ओर अब भी बिना पलकें गिराये टिकी हुई हैं। एकाएक ही वह लड़खड़ाई और धरती पर गिर पड़ी।

२०

अठारह जून को एक भारी संग्राम हुआ।

मजे की बात यह थी कि घेरे में फँसे अंग्रेज़ प्रातः से रात्रि तक पेशवा

की सेनाओं पर दक्षिण की ओर नदी-किनारे गोले बरसाते रहे। कप्तान मूर को सूतकराम ने समाचार दिया था कि पेशवा की दक्षिणी व्यवस्था कमजोर है। यदि उधर मार की गई तो उनके पैर उखड़ जायेंगे, पर ऐसा नहीं हुआ। सूतकराम के जरिए यह समाचार भिजवाकर नन्हे नवाब ने दक्षिणी मोरचे पर जबरदस्त व्यवस्था की थी···और अंग्रेजों ने दक्षिण की ओर पूरी शक्ति से प्रातःकाल ही हमला बोल दिया, पर हुआ उल्टा। अंग्रेजों को भारी क्षति पहुँची। इस दिन की लड़ाई में उनके सबसे ज्यादा आदमी खेत रहे। पेशवा की तोपों ने इस तेजी से गोले उगले कि अंग्रेजी किले में कोहराम मच गया। एक गोला रसदघर पर जा गिरा और उसमें आग लग गयी। उत्तर की ओर से एक ही तोप ने मार की, पर किले को विशेष नुकसान नहीं पहुँच सका। फिर भी ऊपर का कुछ हिस्सा धराशायी हो गया। प्रकट था कि सूतकराम एकदम गलत समाचार लाया था। अपनी दुर्गति और क्षति देखकर मूर अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने सूतकराम को तोप के मुँह से उड़ा देने की आज्ञा दी। कहाँ पौंडों की प्राप्ति, कहाँ तोप का मुँह? सूतकराम का गला सूख गया। उसने दया की प्रार्थना की, पर मूर अपने निर्णय पर अटल रहा। उसने कहा, "जो आदमी पौंडों के लिये अपने देश के साथ द्रोह कर सकता है, वह हमारा हितैषी कैसे होगा?" जब लालची सूतकराम को तोप के मुँह से बाँधा गया तो उसने अपने किये पर दुःख प्रकट किया और उन सारी हिन्दुस्तानियों से जो घेरे में अपने अंग्रेज मालिकों के प्रति पूर्ण वफादारी जता रहे थे, कहा कि वे गलत आदमियों का साथ दे रहे हैं! ···और तभी एक तेज आवाज उठी और सूतकराम का शरीर चिथड़ों की शक्ल में ऊँचाई तक उड़ गया।

इस युद्ध ने अंग्रेजों को बिलकुल निराश कर दिया। कप्तान मूर बात-बात पर खीजने और क्रोधित होने लगा। उसने इधर-उधर सन्देश भेजने के लिये और आदमियों की तलाश की, पर कोई तैयार नहीं हुआ। तरह-तरह की धमकियाँ दी गयीं, पर सब व्यर्थ। सूतकराम के तोप से उड़ाये जाने की घटना ने हिन्दुस्तानी नौकरों के दिमाग बदल दिये थे। वे हमेशा

वहाँ से भाग निकलने की युक्ति में रहते। एक ने तो भागने के प्रयत्न में अपनी जान ही गँवा दी। सारी आशाएँ कलकत्ता, इलाहाबाद या लखनऊ से मिलने वाली सहायता पर केन्द्रित थीं। अब तक यह भी निश्चित न हो सका था कि वहाँ समाचार पहुँचा है या नहीं।

उन्नीस जून को थामसन ने डायरी के कुछ पृष्ठ इस तरह लिखे :

"अन्धे आँखें चाहते हैं, ताकि दुनिया के हसीन नज़ारे देख सकें, पर मैं चाहता हूँ कि मेरी ज्योति बुझ जाये ताकि मैं वे घृणापूर्ण और कारुणिक दृश्य न देख सकूँ, जिन्हें हर रोज, हर क्षण देख रहा हूँ। मेरा खयाल है कि मेरी ही तरह यहाँ का हर स्त्री-पुरुष सोच रहा है, और सिर्फ यही सोच रहा है।

"अब यह निश्चित हो चुका है कि हमें आत्मसमर्पण करना पड़ेगा। और सही बात तो यह है कि हमें आत्मसमर्पण ही करना चाहिए, क्योंकि इन घृणापूर्ण और वीभत्स मौत के परिणामों की अपेक्षा दुश्मन की गोलियाँ या फाँसी का तख्ता बेहतर होंगे। मैं वृद्धावस्था के नज़दीक हूँ। तमाम जवानों का खयाल है कि मैं अनुभवी हूँ। मुझे जीवन के बेहतरीन सुखों और दुःखद क्षणों के महान् अनुभव हैं, पर मुझे लगता है जैसे सैकड़ों वृद्ध, जो सौ से भी लम्बी आयु पाकर मरते हैं, अकसर दुखों के महान अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। और मैं वे अनुभव ले रहा हूँ। घेरे के इन दिनों में मैं हर क्षण रोमांचित रहा हूँ। इससे पूर्व मैंने मृत्यु को इतने भयावह और विद्रूप रूप में कभी नहीं देखा। इससे पहले मैंने इन्सान की गोरी चमड़ी, पशुओं की तरह लापरवाही से सड़ते कभी नहीं देखी।

"यहाँ आदमी बरसाती कीड़ों की तरह, बल्कि उनसे भी गयी-गुजरी तरह मर रहे हैं। अनेक लोग घायल हैं, वे दर्दनाक चीखें मारकर रोते और कराहते रहते हैं, पर कोई उनकी परवाह नहीं करता। लोग पास से गुज़र जाते हैं, किन्तु कोई कुछ नहीं सुनता। किसी को सहानुभूति प्रकट करने का समय नहीं है। ऐसे अनेक घायल, जिनके घावों में कीड़े पड़ चुके हैं, या माँस सड़ने लगा है, दिन-रात वातावरण में भयानक करुणा उत्पन्न

करते रहते हैं। जले और सड़े मास की दुर्गन्ध ने समस्त वायुमण्डल विषाक्त और गंदा कर दिया है। इतना कि हर श्वास के बाद कै करने की इच्छा होती है। दवाएँ समाप्त हो चुकी हैं, अस्पताल जल गया और डाक्टर हेवर्सडन उसी में दबकर मारा गया।

"किले में एक कुआं है, जिसमें लाशें फेंकी जाती हैं, इतनी कि वह लगभग पट गया है और उसमें से सड़ाँध निकल रही है। सफाई के अभाव में यहाँ कुछ दिनों से हैजा भी फैलने लगा है और अनेक लोग इस दैवी आपत्ति के शिकार हो रहे हैं।

"गयी रात मेजर लिंडसे की पत्नी का हार्ट फेल हो गया। यह बात उस समय मालूम हुई, जब उसकी गोद का बच्चा देर तक रोता रहा और वह लगातार लेटी ही देखी गयी।

"लेफ्टिनेंट इकफोर्ड चाय पीते समय बरामदे में बैठा मारा गया। श्रीमती ह्वाइट अपने पति के साथ एक दीवार के साथ बचाव करती किले की दूसरी ओर जा रही थी। उसके दोनों हाथों में उसके दो जुड़वाँ बेटे थे, एकाएक एक गोली सनसनाती हुई आयी और उसके पति का सीना चीरती हुई उसके दोनों बाजू तोड़ गयी। कलेक्टर हिलर्सडन दिल का बड़ा साफ, और जबान का बहुत सच्चा आदमी था। पेशवा से भी उसकी गहरी दोस्ती रही थी। गयी शाम जब वह एक बरामदे में चुरट पी रहा था, तभी एकाएक गोलियाँ गिरने लगीं। इतनी कि बूढ़े कलेक्टर का सारा शरीर छलनी हो गया।

"मृत्यु ने सुन्दरता के साथ भी कुछ भयानक मजाक किये हैं। उसने अपना खौफनाक रूप दिखाकर सौन्दर्य के प्रति लोगों के मन में अनाकर्षण पैदा किया है। इस अनाकर्षण से कई खूबसूरत चेहरों का भारी अपमान हुआ है। वे गुलाबी चेहरे, जिन पर आयु और यौवन ने सौंदर्य बिखरा दिया था, अब सूखे रहते हैं और उनकी ओर मृत्यु के इस घने वातावरण में किसी को देखने तक की फुर्सत नहीं। कलेक्टर हिलर्सडन की लड़की मेरी अपने नाज़ो-नखरे के लिये सारे शहर के अंग्रेज-समाज में मशहूर थी

और उसका चेहरा सैकड़ों आँखों को ठंडक पहुँचाता था, अब उपेक्षा की चीज़ है। वह स्वयं भी अपने सौन्दर्य के प्रति बहुत सजग रहती थी। पर अब उसे अपने चेहरे, बालों या आँखों की कतई परवाह नहीं है। इस समय यदि वह कुछ सोच पाती है तो शायद यह कि जीवन-रक्षा कैसे हो ?

"भूख ! यह भी लगता है, मौत के व्यापार की साझेदार है। लोग यदि गोलियों से नहीं तो भूख से मर रहे हैं और वात्सल्यमयी स्त्रियों ने, जिनकी गोद में बच्चे हैं, रो-रोकर प्राण दे दिये हैं। वे माताएँ कुछ नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनकी छातियों का दूध लगातार भूखी रहने के कारण सूख गया है।

"आज प्रातः एक आशा-किरण उदय हुई थी, जब लखनऊ से एक सैनिक लारेंस महोदय का पत्र लेकर जैसे-तैसे जल-मार्ग से यहाँ आ पहुँचा था। न जाने कैसे उन लोगों तक इस विपत्ति का सन्देशा पहुँचा है ? पर जब पत्र खुला तो सभी के चेहरे मलिन हो गये। लारेंस महोदय ने पत्र में हमें सहायता दे सकने में असमर्थता प्रकट की है। उन्होंने लिखा है कि नदी के रास्ते मदद भेजने में हमारी टुकड़ी मारी जायेगी। इसके अतिरिक्त वे स्वयं भी आपत्ति में हैं। उन्होंने लिखा है—'हमें क्षमा कर दिया जाये !'···हँसी आती है। हम जो मौत के द्वार पर खड़े हैं, स्वयं क्षमा और दया के पात्र हैं, किसी को क्या क्षमा करेंगे ?

"मौत के ज्वालामुखी पर बैठे लोगों के साथ लारेंस महोदय भी खूब मज़ाक करते हैं ! ···"

ाईस जून के एक भारी संग्राम में अंग्रेज़ पक्ष के अनेक लोग बन्दी हुए। न्होंने रो-रोकर किले की दुर्दशा और अंग्रेज़ साथियों की मृत्यु का हाल ुनाया। पेशवा का सबसे बड़ा गुण उसका दया-भाव था। बन्दी अंग्रेज़ों ने र्णन इस ढंग से किया कि नाना के मन में दया-भावना उमड़ी। उसने द्ध रोककर एक ईसाई भारतीय महिला के जरिए अंग्रेज़ शिविर में एक

बार फिर आत्मसमर्पण का सन्देशा भिजवाया।

किले के अस्त-व्यस्त हाल में अचानक ही जीवन आ गया। सब बड़े आश्चर्यचकित हुए जब उन्होंने पाया कि पेशवा की फौजों ने गोलाबारी बन्द कर दी है।

जनरल ह्वीलर का साहस बहुतों से पहले ही टूट गया था और वह एक टूटी चारपाई पर लेटा-लेटा हमेशा बाइबिल में अपने अनजाने पाप धोया करता था। पेशवा की ओर से मुकाबला बन्द हुआ तो वह सतर्कता-पूर्वक अपने सुरक्षित स्थान से बाहर आया। पूर्ण शान्ति थी। किले की अन्दरूनी आवाजों के अलावा कोई शोर न था। सभी के चेहरों पर आशा की किरणें थी, किन्तु आश्वस्ति के संकेत नहीं। पेशवा की फौजों ने गये कुछ दिनों में जिस तरह मृत्यु बरसायी थी, उसने उन सभी को हमेशा-हमेशा के लिये कमजोर कर डाला था।

बरामदे में, जो मुख्य द्वार के पास ही था और जिसकी ओर काफी ओट थी, कप्तान मूर, लेफ्टिनेंट डेलाफास, मोब्रे थामसन और गोर्ड के अलावा बूढ़ा टाड भी बैठा हुआ था। टाड पेशवा को समाचार-पत्र सुनाने की नौकरी किया करता था, पर अब वह समय बीत चुका था और वह घेरे से पूर्व ही बिठूर से भागकर कानपुर के सुरक्षा-किले में आ फँसा।

बूढ़ा जनरल ह्वीलर भी इन सब के पास आ पहुँचा। सभी उलझन में थे। आखिर क्योंकर पेशवा ने गोले बरसाना बन्द कर दिया है? सभी अपनी-अपनी तरह सोचते रहे। कुछ देर बाद जनरल ह्वीलर ने मौन भंग किया, "मैं तो कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ! इस तरह युद्धबन्दी का क्या कारण है?"

लेफ्टिनेंट डेलाफास ने विचार प्रकट किया, "पेशवा की ओर से इस तरह युद्धबन्दी सचमुच आश्चर्य की बात है और खासतौर से इस समय, जब वे यह भली-भांति जानते हैं कि उन्हीं की विजय होगी। हमारी हत्या कर डालने का इससे अच्छा मौका उनके लिए और कोई नहीं हो सकता।

फिर भी वे युद्ध वन्द कर रहे हैं, यह सचमुच आश्चर्य और सन्देह में डालने वाली वात है !"

"वही तो," मूर ने सन्देह प्रकट किया, "यह युद्धवन्दी मन में भय पैदा करती है। कहीं पेशवा फिर कोई चाल तो नहीं खेल रहा ?"

वार्तालाप वन्द हो गया। एक अंग्रेज|सैनिक ने समाचार दिया, "जनरल, एक हिन्दोस्तानी औरत किले के अन्दर आ रही है। उसके साथ कोई नहीं है।"

"उसे आने दो।" ह्वीलर ने आज्ञा दी, "खयाल रहे, उसे कोई गोली न मार दे।"

सैनिक लौट गया।

ह्वीलर और सभी के विचारों पर पूर्ण विराम लगा। एक नया प्रश्न-चिह्न ? यह हिन्दुस्तानी औरत, जो अकेली किले की ओर आ रही है, कौन हो सकती है और क्यों आ रही है ?

दो गोरे पहरेदारों के साथ वह साँवले रंगवाली अधेड़ औरत उपस्थित हुई। देखने में कोई छोटी जात की और अशिक्षित लगती थी। उसने किसी को भी आदरपूर्वक अभिवादन नहीं किया। अपनी अंगिया में हाथ डाला और एक पुर्जा निकालकर उन लोगों की ओर वढ़ा दिया।

"महिमामयी विक्टोरिया के प्रजाजनो ! यह युद्ध थोड़े से समय के लिए ही वन्द किया गया है। उस समय तक के लिए, जव तक कि इस पत्र का उचित् उत्तर हमें नहीं मिल जाता। हम जानते हैं कि आप मृत्यु के मुँह में हैं, अतः मानवता की दृष्टि से सूचना देना आवश्यक है। जिन लोगों का डलहौजी की नीच नीति से कोई सम्वन्ध नहीं है, और जो लोग जीवन को प्यार करते हैं तथा हथियार डाल देने को तैयार हैं, वे अव भी जिन्दा रह सकते हैं। हम उन्हें सुरक्षित स्थिति में इलाहावाद पहुँचा देंगे।

वहुक्म—श्रीमन्त पंत प्रधान नाना धूंधूपंत पेशवा वहादुर,

त्राट् वहादुरशाह के फिदवी खास"

ह्वीलर ने पत्र मूर के हाथ मे दिया, और फिर क्रमश. यह पत्र सभी अग्रेज़ अधिकारियो के हाथ मे घूमा । थोडी देर सब चुप रहे । हालातो ने उनमे एकाएक निर्णय कर देने की शक्ति नहीं रहने दी थी ।

ह्वीलर ने कहा, "आत्मसमर्पण कर देना ही एकमात्र सहारा है ।"

मूर ने आपत्ति की, "पेशवा के आश्वासन पर भरोसा नही होता ।"

"और रास्ता भी क्या है ?" खीझकर जनरल बोला, "इस आश्वासन पर विश्वास नही करते तो कुत्तो से भी बदतर मौत मरो !"

"आत्मसमर्पण करना ही होगा !" थामसन ने कहा, "जिस स्थिति मे हम आ चुके हैं, उसमे मृत्यु निश्चित है । फिर पेशवा के आश्वासन का खतरा ही क्यो न उठा लिया जाये ?"

डेलाफास ने उसका समर्थन किया ।

मूर चुप हो गया । पेशवा की शर्तें शायद सभी को स्वीकार थी ।

ह्वीलर ने पूछा, "तो फिर यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाये ?"

मूर को छोड़कर सभी तैयार थे ।

ह्वीलर बोला, "हम भी कुछ शर्तें रख सकते हैं । ऐसी, जिन्हे मानने मे पेशवा भी आपत्ति नही करेगा ।" उसने मोब्रे थामसन को आज्ञा दी, "एक सन्धिपत्र लिखो ।"

सन्धिपत्र तैयार हुआ ।

पेशवा के नाम आदरपूर्ण सम्बोधन के बाद लिखा था :

"हम लोग कानपुर छोड देने को तैयार हैं, पर कुछ निवेदन है, जिन्हे श्रीमत पेशवा बहादुर से मान्य करने की प्रार्थना है ।

हमारा हर आदमी अपने पास एक हथियार और साठ-साठ गोलियाँ रखेगा ।

हमारे घायलो, स्त्रियो और बच्चो के लिये सवारियो का प्रबन्ध भी कर दिया जाये ।

—खाने-पीने का सामान भी दिया जाये ।

—जब तक कि हम लोग नावों में नहीं बैठ जाते, आपके दो महत्त्व-र्ण आदमी हमारे बीच बंधक रहेंगे।

—आपके सिपाही हमारी स्त्रियों का अपमान नहीं करेंगे।

—अपनी रवानगी की तैयारी हम पहले से ही देख लेना चाहेंगे।"

इन साधारण शर्तों के बाद ह्वीलर ने कहा, "इस पत्र को पेशवा के मे तक पहुँचाने का कार्य भी महत्त्वपूर्ण है। यह औरत अशिक्षित है। ोई प्रभावशाली आदमी चाहिए।"

मूर ने डेलाफास का और डेलाफास ने मोब्रे थामसन का चेहरा देखा। ाड क्रमवार सभी की ओर देखता रहा। नाना के शिविर में जाने का ाचार शेर की माँद में जाने से कम खतरनाक नहीं था। बूढ़े जनरल ने हा, "पेशवा का पत्र लेकर जो महिला आयी है, वह उस समय तक यहीं केगी, जब तक कि इस संधिपत्र को पेशवा तक पहुँचाकर हमारा आदमी हीं लौट आता।"

फिर वही स्थिति। वे सभी साहसी होने के बावजूद साहस नहीं कर ा रहे थे। बूढ़ा टाड बोला, "यह पत्र लेकर मैं वहाँ तक जाऊँगा।" वह ड़ा हो गया।

सभी ने टाड की ओर देखा। उन्हें लग रहा था जैसे जीवित टाड जल्दी ापने की चीज बनने जा रहा है। ह्वीलर ने संधिपत्र टाड के हाथ में दे दिया—"पेशवा को समझाने का प्रयत्न करना। संधिपत्र पर हस्ताक्षर ाकर लौटते ही, वह हिन्दुस्तानी ईसाई औरत वापिस कर दी जायेगी!"

टाड सन्धिपत्र लेकर चल दिया।

एक घंटे बाद ही जनरल ह्वीलर को समाचार मिला कि किले की ोर चार हिन्दुस्तानी आ रहे हैं।

ह्वीलर ने पूछा, "टाड भी उनके साथ है क्या?"

"नहीं।"

"हूँ, उन्हें आने दिया जाये।"

किले के दरवाजे खुल गये। चारों हिन्दुस्तानी निधड़क भीतर चले

आये। ह्वीलर उन्हें देखते ही स्वागत के लिए उठ खड़ा हुआ।

पराजय के क्षणो मे वह बहुत बदल चुका था।

चारो पास आ गये। स्वागत के उत्तर मे वे मुसकराए। उन्होने इधर-उधर दृष्टि दौड़ा कर अंग्रेजो की स्थिति समझी।

ह्वीलर ने टूटे-से स्वर मे पूछा, "टाड नही आये, खान साहब?"

"नही!" खान ने भारी स्वर मे उत्तर दिया, "पेशवा बहादुर ने उन्हे मेहमान बना लिया है। जैसे ही इधर से हम लौटे, उन्हें वापिस कर दिया जायेगा।"

मूर ने दाँत भीच लिए। ह्वीलर चुप हो गया।

खान ने कहा, "पेशवा बहादुर ने आपका सधिपत्र पढ लिया है। उन्हे स्वीकार है। टाड महाशय के हाथ हस्ताक्षर कराके उसे भेज दिया जायेगा।"

"उचित है।" एक गहरा श्वास खीचकर ह्वीलर बोला, "क्या हम लोग आज ही कानपुर छोड सकेंगे?"

"कल।" अजीमुल्ला बोला, "शर्तों के मुताबिक संधिपत्र लौटते ही आपको रवानगी के लिए तैयार होना है।"

"व्यवस्था?"

"सभी कुछ हो गया है।"

"स्त्रियो के लिए?"

"स्त्री-पुरुष, सभी के लिए।" अजीमुल्ला बोला, "आप लोगो को दरिया के जरिए, इलाहाबाद जाने दिया जायेगा! नावें तैयार हो रही हैं।"

मूर ने बीच ही मे पूछ लिया, "दो व्यक्ति बंधक चाहिए! वैसे हमे तो विश्वास है, पर बच्चो वाली स्त्रियाँ शोर मचाती है। उनके पास माताओ के हृदय हैं।"

"बधक रखने वाली आपकी यह शर्त व्यर्थ है, फिर भी हम पूरी किये देते हैं।" अजीमुल्ला ने गम्भीर स्वर मे उत्तर दिया, "हमारे साथ दो

आदमी हैं। ये आपके पास रहेंगे, घाट पर आप इन्हें हमारे हवाले कर देंगे।"

अज़ीमुल्ला ने शर्त रखी, "आप अपनी तोपें आज शाम ढले तक हमारे शिविर में भिजवा देंगे। साथ ही सारी कुमुक भी।"

"पर हम अपनी रक्षा के लिये कुछ सामान तो साथ रखना ही चाहते हैं।" बूढ़े ह्वीलर ने कहा, "कानपुर में तो नहीं, फिर भी मार्ग में हमें भय है।"

"आप थोड़ा-सा सामान रख सकते हैं।"

"कितना ?"

"प्रति व्यक्ति एक बन्दूक और पचास गोलियाँ।"

"यह तो बहुत कम है ?"

"हम लाचार हैं।"

ह्वीलर चुप हो गया।

अज़ीमुल्ला उठ खड़ा हुआ, "आप चाहें तो अपनी शर्त के मुताबिक रवानगी की तैयारी देख सकते हैं।"

मूर ने ह्वीलर का चेहरा देखा। ह्वीलर ने कहा, "मैं दो व्यक्ति आप के साथ भेजता हूँ"—बात अधूरी छोड़कर उसने समीप ही खड़े मोब्रे थामसन और कप्तान डेलाफास को आदेश दिये, "आप लोग खान साहब के साथ जाकर तैयारी देख आइए। असुविधा हो तो वहीं निवेदन भी कर सकते हैं।"

दोनों अज़ीमुल्ला के साथ नाना के शिविर की ओर चले गये। अज़ीमुल्ला ने साथ वाले दो हिन्दुस्तानी बंधक कर दिये थे और लौटते समय वह यह सोचकर खुश था कि बदले में दो अंग्रेज उसके पास हैं।

लगभग दो घंटे बाद बूढ़ा टाड शिविर में लौट आया। वह संधिपत्र पर पेशवा की मोहर लाया था। संधिपत्र जब उसने ह्वीलर को सौंपा तो विशेष हर्ष प्रकट नहीं किया। वह जानता था कि पेशवा के समक्ष जो लोग आत्मसमर्पण करने जा रहे हैं, उनके लिए संधिपत्र की कोई कीमत नहीं है।

पेशवा शक्तिशाली है, वह जो चाहे कर सकता है। एक कागज का टुकड़ा बंधन कैसा ? फिर भी ह्वीलर ने संधिपत्र लिखवाया था। हालांकि युद्ध के नियमों की औपचारिकता के सिवाय इसका कोई अर्थ न था।

टाड ने बताया कि मोब्रे थामसन और डेलाफास दोनों वहीं रह गये।

"क्यों ?" ह्वीलर ने पूछा।

'पेशवा बहादुर का हुक्म था।" टाड ने कहा, "बेकार ही उन्हें यहाँ तक वापस क्यों भेजा जाये ? कहते थे, आना तो यहीं है।"

"शातिर है !" घृणापूर्वक मूर ने कहा, "उनके दो आदमी यहाँ हैं, तभी उन्होंने यह कूटनीति खेली है।"

"खैर।" ह्वीलर ने विषय बदला, "क्या तोपें शाम तक दुश्मन की ओर भेजी जा रही हैं ?"

"हाँ।" मूर ने बतलाया, "हथियार और लगभग सभी सामान वहाँ तक भेजने के बाद स्त्री-पुरुष जायेंगे।"

"हाँ, यही ठीक है।" टाड बोला,"पेशवा ने भी यही कहा है। हथियार और तोपें आज शाम तक उनके हवाले हो जानी चाहिए। सुबह वे हम लोगों के लिए सवारियाँ भेजेंगे, तभी यहाँ से जाना होगा। अब हम पूरी तरह से उन लोगों की दया पर निर्भर हैं।"

विषय समाप्त हो गया।

संध्या समय ही अंग्रेजों ने अपनी दोनों तोपें, गोला-बारूद और सैकड़ों छोटे-बड़े हथियार पेशवा के शिविर में भिजवा दिये और बेचैनी के साथ दूसरे दिन की सुबह का इंतजार करने लगे।

२१

आधी रात को गंगा घाट पर एक संदिग्ध व्यक्ति पकड़ा गया।

वह नदी के रास्ते इलाहावाद से आया था। ऐसे अनेक संदिग्ध व्यक्ति पकड़े जाते थे और खोज-खवर लेकर छोड़ दिये जाते थे। वाला साहव ने लापरवाही से टाल दिया—"जाओ, कल दरवार में पेश करना!"

"हुजूर, वह आदमी कहता है, उसे अभी ही पेशवा वहादुर के हुजूर में हाजिर कर दिया जाए!"

"फिरंगी है?" तात्या ने पूछा।

"नहीं सरकार, हिन्दुस्तानी है। मुसलमान लगता है।"

गम्भीर वार्तालाप में अड़ंगा आ जाना वाला साहव को अखरा। उसने उसे फिर टाला, "अच्छा, अच्छा! ठीक है! कल हाजिर करना। उससे कहो, श्रीमंत आराम कर रहे हैं, भेंट कल ही होगी!"

"क्षमा, श्रीमंत!" सैनिक ने पुनः झुककर प्रणाम किया, "वह वूढ़ा व्यक्ति कहता है, कि उसे अभी ही पेशवा वहादुर के सम्मुख हाजिर किया जाए" कुछ सकुचाते हुए सैनिक ने वाक्य पूरा किया, "कहता है कि श्रीमंत यदि आराम भी कर रहे हों, तो उन्हें जगाकर उसे उनके सामने हाज़िर किया जाए!"

"अजीव जिद्दी आदमी है!" वाला साहव झल्लाया।

"उसे उपस्थित करो!" नाना ने आज्ञा दी।

सैनिक वाहर गया, और थोड़ी ही देर वाद उसे ले आया। आगंतुक का वूढ़ा चेहरा सफेद वालों और दाढ़ी के वीच निश्चय ही प्रभावशाली रहा होगा, किन्तु अभी मटमैला और उदास था। उसके कपड़े गंदे थे, वाल अस्तव्यस्त। वुढ़ापे के वावजूद उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। वह पेशवा की ओर दो कदम वढ़ा। नाना ने गौर से उसे देखा। लगता था कि वह वूढ़ा आदमी चलने में हिल रहा था। उसके शरीर की ढिलाई से ऐसा मालूम होता था, जैसे गहरे नशे के वाद वह जागा हो।

"कौन हो तुम ?" तात्या ने प्रश्न किया।

बूढ़े आदमी ने दोहरे होकर पेशवा को प्रणाम किया, फिर थके-से स्वर मे कहा, "श्रीमत पेशवा बहादुर का इकबाल बुलंद हो ! मेरा नाम मौलवी लियाकतअली है। इलाहाबाद से आ रहा हूँ।"

तात्या ने पहचाना। दौरे के बीच उसने लियाकतअली का बहुत नाम सुना था। कहा जाता था कि लियाकतअली देशभक्त और दबग है। तात्या की इच्छा हुई थी कि मौलवी से भेंट करे, किन्तु सम्भव न हो सका था। इधर जब से क्रांति की शुरुआत हुई, तात्या ने समाचार सुना था कि लियाकतअली ने इलाहाबाद फिरंगियो के हाथ से छीन लिया है।

"तुम इलाहाबाद से क्यो आ रहे थे ?" कठोर स्वर मे नाना साहब ने प्रश्न किया। इससे पूर्व कि मौलवी लियाकतअली कोई सफाई दे, तात्या ने पेशवा को लियाकतअली का परिचय दिया, "क्षमा, श्रीमंत ! यह वही मौलवी लियाकतअली हैं, जिनके बारे मे मैंने एक बार श्रीमंत पेशवा से जिक्र किया था। इलाहाबाद की बागडोर इन्ही के हाथ मे है।"

"ओह !" पेशवा ने आवाज़ मे नरमी पैदा की, "आइये, आप हमारे साथी हैं।"

बूढ़ा मौलवी थकी चाल से आगे बढा और धम्म से कुर्सी पर बैठ गया।

"इलाहाबाद का क्या हाल है ?" तात्या ने प्रश्न किया।

"इलाहाबाद हमारे हाथ से जाता रहा।"

"क्यों ?"

"शक्ति नही थी। ठीक वक्त पर सहायता भी नही मिली। पेशवा बहादुर, इलाहाबाद इस तरह गया कि लगता है जैसे अब वह हमारे वतन के नक्शे मे ही नही रहेगा। बड़ी मुश्किल से मैं भाग सका हूँ।"

सभी ध्यानपूर्वक मौलवी की ओर देख रहे थे।

मौलवी ने डूबे स्वर में इलाहाबाद की स्थिति बताई, "ग्यारह जून को फिरगी और सिख पलटन लेकर नील साहब बनारस से इलाहाबाद चला आया। सोलह तारीख तक हमने उसे रोका, पर बदकिस्मती ! हमें

इलाहाबाद छोड़ना पड़ा।" बात अधूरी रखकर मौलवी ने एक ठंडी आह भरी—"हमारे जवान ताकत भर खूब टिके हुए थे, पर इस मुल्क पर खुदा की नज़र ही टेढ़ी है!"

सभी ने अनुभव किया कि मौलवी टूट चुका है।

पेशवा ने उसे सांत्वना दी, "इस तरह निराश हो जाना ठीक नहीं है, मौलवी साहब! हम इलाहाबाद दोबारा ले लेंगे!"

तात्या ने भी उसे ढाढ़स दिया, "इलाहाबाद ही तो हमारे हाथ से गया है, तलवार तो हाथ से चली नहीं गई? जब तक वह हाथ में है, और हृदय में धड़कन, तब तक कई इलाहाबाद ले लिये जाएँगे। फिरंगियों को हिन्दुस्तान छोड़ना ही पड़ेगा!"

पेशवा और तात्या के ढाढ़स का मौलवी लियाकतअली की निराशा पर रंचमात्र प्रभाव नहीं पड़ा। उसके चेहरे पर उदासी ज्यों-की-त्यों कायम रही, "मुझे इलाहाबाद का मोर्चा हाथ से निकल जाने का गम नहीं है, श्रीमंत! मुझे डर है तो केवल यह कि इलाहाबाद का नाम इस मुल्क के नक्शे में रहेगा या नहीं?"

"क्या मतलब?"

"फिरंगी इलाहाबाद में जुल्म और सितम की ऐसी तसवीरें पेश कर रहे हैं, जैसी चंगेजी हुकूमत ने भी न की होंगी—" लियाकतअली ने कहा, "बनारस से इलाहाबाद आते में फिरंगी जनरल नील रास्ते के सैकड़ों गाँव तबाह और बरबाद करता आया था। हज़ारों औरतों की बेइज़्ज़ती की गई! बेगुनाह हिन्दू-मुस्लिम जनता को जिन्दा जलाया गया! इलाहाबाद आकर भी यही सब हो रहा है। लगता है, जैसे वह शैतान नील समूची हिन्दुस्तानी कौम को ही खत्म कर देने का फैसला कर बैठा है! जिस-जिस जगह उसे फतह मिली, उसने बरबादी और कत्लेआम के हुक्म दिए हैं। सैकड़ों हिन्दुस्तानी बच्चों को चीर डाला गया है। सिर्फ इलाहाबाद चौक के नीम के पेड़ों पर ही आठ सौ हिन्दुस्तानी फाँसी पर चढ़ा दिये गए..." बोलते-बोलते मौलवी की चमकदार आँखों की कोरें आँसुओं से भर आयीं।

"हिन्दुस्तान की सरसब्ज़ ज़मीन, जहाँ हिन्दू-मुसलमान राजाओं ने हरियाली बोयी थी, जहाँ मज़हब और ईमान के खुशबूदार फूल खिलते थे, वहाँ आज सिर्फ खून नज़र आ रहा है।"

पेशवा के माथे पर सिकुड़नें थीं। बालाराव का चेहरा क्रोध और घृणा से रक्तिम हो उठा।

लियाकतअली ने भारी स्वर में कहा, "श्रीमंत! मेरी इन बूढ़ी आँखों ने फिरंगियों के ज़ुल्म की ऐसी दर्दनाक तसवीरें देखी हैं, कि मुझे अचरज है, मैं उन्हें देखने और सहने के बावजूद होशोहवास में क्यों हूँ?"

तात्या और बालाराव ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। पेशवा पूर्ववत् गंभीर था। उसने कुछ नहीं कहा था, किन्तु उसकी आँखों की कोरें आँसुओं से बोझिल हो गई थीं। कुछ देर सभी चुप रहे। फिर बालाराव ने प्रश्न किया, "यह सब सुनने के बाद भी, पेशवा बहादुर फिरंगी शरणार्थियों को सकुशल कानपुर छोड़ने देंगे?"

पेशवा ने कुछ नहीं कहा। तात्या की आँखों में चमक पैदा हुई। "नहीं, बाला साहब! अब फिरंगी यहाँ से सकुशल नहीं जा सकते! यहाँ भी फिरंगियों के साथ वही सब होगा, जो इलाहाबाद या बनारस में हिन्दुस्तानियों के साथ फिरंगियों ने किया है! उन निरीह हिन्दुस्तानियों के रक्त की एक-एक बूंद के बदले हमारी पलटनें फिरंगियों का सौ-सौ बूंद रक्त वसूल करेंगी!"

"तात्या!" पेशवा काँपकर बोला, "इतने महान् सेनापति के मुंह से बदले की ये छोटी बातें शोभा नहीं देतीं! फिरंगियों में मनुष्यता नहीं है, तो हमें मनुष्यता नहीं छोड़नी चाहिए! वीर और पराक्रमी वे होते हैं, जो रणक्षेत्र में एक बूंद के बदले शत्रु की सौ बूंदें वसूल करें। निहत्थे शरणार्थियों का रक्त बहाना ऐसी कायरता होगी, जो सारे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों के मुंह पर अनंतकाल तक कालिख की तरह पुती रहेगी!"

"इसका अर्थ तो यह हुआ श्रीमंत कि हम फिरंगियों का हर अत्याचार देखकर भी चुपचाप बैठे रहें। हम उनके हर अन्याय को सिर झुकाकर

कायरों की तरह मान्य करते जाएँ ?"

"एक सीमा तक अन्याय सहना, भीरुता या खुशामद नहीं होती, सेनापति ! अन्यायी और अत्याचारी शक्तियाँ स्थायी नहीं होतीं। इलाहाबाद में नील ने जो कुछ किया है, वह उनकी क्षीण हो रही शक्ति का प्रतीक है। वह हमारी सफलता का ऐसा संकेत है, जिसके कारण फिरंगी अपनी मनुष्यता, आत्मबल और मानसिक संतुलन खो बैठे हैं। हर दीया बुझने से पूर्व तेज लौ पैदा करता है। फिरंगी ताकत का भी यही हाल है। नील के अत्याचार उनके हिन्दुस्तान से उखड़ने के पूर्व की चमक है !"

बालाराव को पेशवा के इस दर्शन पर खीझ हुई, "श्रीमंत ! आदर्श की ये बातें पुस्तकों तक ही हैं, यथार्थ अलग ! निरपराध भारतीयों के रक्त का बदला हमें चुकाना ही चाहिए।"

तात्या ने बालाराव का समर्थन किया, "क्षमा करें, श्रीमंत ! हिन्दुस्तानी सदा ही आदर्श की पुस्तकों में लिखी बातों पर बलिदान होते आये हैं। हिंस्र पशु को पुचकार कर काबू नहीं किया जाता। उसके लिए कोड़े का आसरा लेना होता है। फिरंगियों की असभ्यता और बर्बरता का हमें वैसा ही उपचार करना होगा।"

नाना की वैचारिक दृढ़ता पर बालाराव और तात्या के कथन का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने पूर्ववत् शांति और गंभीरता के साथ उत्तर दिया, "आप ठीक कहते हैं, तात्या साहब। हिन्दुस्तानी सदा आदर्श पर बलिदान होते आये हैं, पर इन बलिदानों ने ही हमारी सांस्कृतिक बुनियादें मजबूत की हैं। बदले की घृणित भावना पर काबू रखिए। कहीं ऐसा न हो कि वह आपके मानवीय गुणों को दबाकर पशुता पैदा कर दे। यदि ऐसा हुआ तो हम में और फिरंगियों में फर्क ही क्या रह जायेगा ?"

तात्या और बालाराव निरुत्तर हुए।

पेशवा ने कहा, "एक अत्याचार दूसरे अत्याचार को सही नहीं बना सकता, बालाराव ! एक भूल का निराकरण दूसरी भूल नहीं होती। कानपुर के फिरंगी शरणार्थी सुरक्षित तौर पर इलाहाबाद जाने चाहिए। जनरल

नील के अत्याचारों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।"

आज्ञापालन में बालाराव ने सिर झुका दिया। तात्या चुप था।

पेशवा लियाकतअली को ठहराने की व्यवस्था करने का आदेश देकर शयनकक्ष में चला गया। उस चर्चा के आदि से अन्त तक किसी ने द्वार की ओर ध्यान नहीं दिया था, जहां मौलवी को साथ लाने वाला सैनिक खड़ा हुआ था और सारा वार्तालाप सुनता रहा था।

दूसरे दिन, सत्ताईस जून को पेशवा की आज्ञानुसार करीब सौ पालकियाँ सुरक्षा के किले पर पहुँच गयीं। बालाराव देख-रेख कर रहा था। सूर्योदय से पूर्व ही पालकियाँ पहुँच चुकी थीं, पर निष्क्रांतों के उन पर सवार होने-होने तक सूर्योदय हो गया। सवारियाँ भर चुकी थीं, और मूर, पैंटन, जूलिया आदि अनेक लोग फिर भी जगह न बचनेसे रह गये थे। उन्हें पैदल ही सवारियों के पीछे-पीछे रवाना होना पड़ा। संधि की शर्त के अनुसार प्रत्येक पुरुष के पास एक-एक बन्दूक और पचास-पचास गोलियाँ थीं।

कारवाँ सत्तीचौरा घाट पर पहुँचा।

यहाँ भारी भीड़ जमा थी। पेशवा के सैनिकों ने उसे सम्हाल रखा था। घाट पर अंग्रेज़ों के उतरने-बैठने के लिए काफी खाली जगह रखी गई थी। प्रधान सेनापति तात्या और अज़ीमुल्ला स्वयं घाट की व्यवस्था के लिए वहाँ मौजूद थे। पैदल हिन्दुस्तानी सैनिकों के अतिरिक्त घुड़सवार सैनिक भी थे। तात्या और अज़ीमुल्ला घोड़े पर सवार एक ओर खड़े हुए थे।

अंग्रेज़ शरणार्थी जब अपना सामान लिये हुए, पालकियों से उतरे तो तमाशबीन भीड़ ने तरह-तरह की हँसी और व्यंग्यों के साथ उनकी हीन दशा पर हर्ष व्यक्त किया। भीड़ के सैंकड़ों लोगों ने उनके फटे कपड़ों और गंदे चेहरों को उछल-उछलकर देखा। बरसों तक घृणा और असतोष को दबाये वे अपने गोरे मालिकों को बरदाश्त करते रहे थे। कुछ तमाशबीन

घर से आते समय फटी पतलूनें, टूटे हुए टोप या अंग्रेज़ी पुस्तकें भी अपने साथ लेते आए थे, जिन्हें उन्होंने अंग्रेज़ों पर फेंका, और चिल्लाए, "इन्हें भी अपने साथ लेते जाओ !" वे तरह-तरह की आवाज़ें भी कसने लगे, किन्तु पेशवा के सैनिकों ने उन्हें गोलियों की धमकी देकर डाँटा-फटकारा और जैसे-तैसे चुप कराया।

घाट पर लंगर डाले करीव पैंतालीस नावें तैयार था। वे काफी बड़ी थीं और उनमें से प्रत्येक में वीस से पचीस आदमी तक समा सकते थे। नावों पर छतें लगाई गई थीं और हर नाव में चार-चार हिन्दुस्तानी नाविक थे।

शरणार्थी जब घाट पर उतर गये तब तात्या के आदेशानुसार पालकियाँ वापस कर दी गयीं। धूप चढ़ने लगी थी और घाट पर गरमी के कारण लोगों को पसीना आ रहा था।

वूढ़ा ह्वीलर पत्नी सहित नदी किनारे खड़े एक सघन पेड़ के नीचे आ वैठा। मोब्रे थामसन और डेलाफास ने एक ओर हटकर उसके लिए जगह वनाई।

घोड़े पर सवार अज़ीमुल्ला ने शरणार्थियों की भीड़ देखी। दूर किनारे पर उसका वूढ़ा शिक्षक पैटन, अपनी युवा लड़की मिस जूलिया के साथ वैठा हुआ था। वह सिर थामे हुए था। दाढ़ी वढ़ी हुई थी और कपड़े पहले से अधिक फटे हुए और मैले थे।

छोटे वच्चों वाली माताओं की नज़रें इधर-उधर कोई छाँहदार स्थान तलाश कर रही थीं। वच्चे रह-रहकर रो उठते।

घाट पर तैनात पेशवा के अधिकतर सिपाही वे ही थे, जो कभी कम्पनी के रिसालों में रहे थे। वे अपने भूतपूर्व मालिकों की दशा देखकर घृणा से मुँह विगाड़ रहे थे। उनके मन में पूर्व-स्मृतियाँ ताजा हो रही थीं और वे मन-ही-मन उनकी स्थिति पर कभी हर्ष और कभी सहानुभूति महसूस करते।

"हिलर्सडन और मेरी नहीं दीखते ?" अज़ीमुल्ला ने सोचा। फिर घोड़े की लगाम उस ओर मोड़ी जिधर पैटन और जूलिया वैठे थे।

पैंटन और जूलिया ने सिर उठाकर ऊपर देखा।

"कहिये, कैसे हैं महाशय?" अज़ीमुल्ला ने घोड़े से कुछ नीचे झुककर पूछा।

पैंटन के मुरझाये चेहरे पर और उदासी घिर आयी।

"देखते नहीं, जिन्दा हैं!" जूलिया ने तीखे स्वर में उत्तर दिया।

अज़ीमुल्ला मुसकराया, "अच्छा है। आप लोगों की उम्र लम्बी है।"

जूलिया ने कुढ़ती दृष्टि से अज़ीमुल्ला को घूरा।

"मिस्टर हिलर्संडन?"

"हम लोग किले में देर से पहुँचे। कुछ जल्दी पहुँच जाते तो शायद उन्हें देख सकते।" जूलिया ने उत्तर दिया।

"ओह! मुझे दुख है।"

"इतना ही बहुत है।"

"और मिस मेरी?"

"उन्होंने भी हमारी प्रतीक्षा नहीं की।"

"बुरा हुआ।"

"........."

अज़ीमुल्ला ने घोड़े की रास खींची और अपने पूर्व-स्थान की ओर चला गया।

घाट के किनारे दूध की कई शीशियाँ और बड़े-बड़े डिब्बों में खाने का सामान रखा हुआ था। तात्या ने आज्ञा दी, "आप लोग नावों में सवार हो जाइए!"

शरणार्थी स्त्री-पुरुष अपने-अपने स्थान से उठे। घाट के किनारे बैठे लोग ही सबसे पहले नावों तक पहुँचे। वे एक-एक कर सवार होने लगे। पेशवा के सिपाहियों ने उन्हें बैठने में सहायता दी।

सिपाहियों की बँधी कतार में, जो भीड़ को घाट पर रोकने के लिए तैनात थी, कुछ फुसफुसाहटें हुईं।

"तुम्हें मालूम है, फिरंगी अफसर नील ने हिन्दुस्तानियों पर बनारस

और इलाहाबाद में कितने जुल्म किये हैं ?" एक सिपाही ने दूसरे से पूछा।

"ऊँहूँ !" दूसरे ने इनकार किया।

"वहाँ फिरंगियों ने गाँव-के-गाँव जला दिये।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ। पर, तुमसे किसने कहा है ?"

"रात मैं पेशवा बहादुर के यहाँ तैनात था।"

"फिर ?"

"रात घाट पर जो आदमी पकड़ा गया है, जानते हो, वह कौन है ?"

"कौन है ?"

"वह इलाहाबाद का हिन्दुस्तानी हाकिम है। जनरल नील ने उसे हरा दिया और वह बड़ी मुश्किल से जान बचाकर यहाँ तक आ सका है।"

"फिर ?"

"उसने सब बताया है।"

"क्या ?"

"यही कि इलाहाबाद चौक पर सैकड़ों बेकसूर हिन्दुस्तानियों को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।"

"और ?"

"और हिन्दुस्तानी औरतों की गोरे सिपाही बेइज्जती कर रहे हैं।"

"यह बुरी खबर है।"

"हाँ, वहाँ हिन्दुस्तानी बच्चों को टाँग पर टाँग रखकर चीर दिया गया।"

"ओह !···हे राम···?"

"मन्दिरों से मूर्तियाँ उखाड़कर नालों में फेंक दी गयीं।"

"·········"

"मस्जिदों में आग लगा दी गयी !"

"·········"

"औरतों को उनके घरवालों के सामने बेइज्जत किया।"

"........."

"हाँ, और···और···शहर में आग लगाई जा रही है।"

···ये फुसफुसाहटें क्रमशः एक के बाद एक सिपाही के जरिए 'जानते हो इलाहाबाद में क्या हुआ ?' के सवाल के साथ सविवरण घाट की पहली, दूसरी, तीसरी और फिर सारी पलटनों में फैल गयीं। सैकड़ों मुट्ठियाँ बन्दूकों पर कसने लगीं। सूर्य की गरमी की अपेक्षा अन्तर की यह गरमी असह्य थी।

आधी से अधिक नावें सवारियों से भर चुकी थीं। तात्या टोपे ने बाकी लोगों को रोक दिया, "पहले इतनी नावों के लंगर खोलकर इन्हें किनारे से दूर करो, ताकि घाट पर कुछ जगह बने।"

लंगर खुलने लगे। नाव में गिनी हुई बीस-बीस दूध की शीशियाँ और खाने के सामान की चार-चार पेटियाँ रख दी गयीं।

नावें खुलकर एक ओर धीमी-सी चाल में चलीं। खाली नावें घाट के किनारे आयीं और बाकी सवारियाँ बैठने लगीं।

सिपाहियों की कतारों में धीमी-धीमी आग सुलग रही थी···

"सिंह···? सिंह ! ···जानते हो इलाहाबाद में क्या हुआ ?"

"हाँ, वहाँ फिरंगियों ने हिन्दू-मुसलमानों पर बहुत अत्याचार किये हैं।"

"फिर ?"

"हम भी बदला लेंगे।"

"कैसे ?"

"यही सोच रहे हैं।"

"सोचते क्या हो ?"

"........."

"ये तुम्हारे सामने तो हैं ?"

"क्या ?"

"हाँ, फिर वक्त कब आयेगा ?"

"पर, पेशवा बहादुर और अपने अफसर…?"

"उन्हें गोली मारो।"

"………"

"इन्होंने हम पर बहुत जुल्म किये हैं। हमें अपने भाइयों के खून का बदला लेना ही चाहिए।"

"………"

"जब अपन ही एक हो गये तो अफसर क्या करेंगे ?"

"………"

"सोचते क्या हो ?"

"………"

"बोलो, तैयार हो ?"

"हूँ ? हाँ, तैयार हूँ !"

"फिर क्या है, बगलवाले से कहो !"

"हाँ, कहता हूँ।"

"………"

"सुनते हो…!"

आधी से अधिक सवारियाँ नावों में सवार होना बाकी थीं। पहले भर चुकी नावें नदी में तैर रही थीं। उनकी चाल में गति नहीं आ पायी थी कि किनारे पर तैनात सैनिकों की कतारों में से एक फायर हुआ।

धायँ !

नदी किनारे की एक नाव से चीख उठी और फिर उसमें बैठा कोई अंग्रेज़ शरणार्थी, सीना थामे, चीत्कार करता हुआ नदी में जा गिरा। पानी पर खून का गहरा रंग दीखने लगा। सवारी वाली नावों को ज्यों-का-त्यों छोड़कर भयातुर नाविक नदी में कूदने लगे…

तात्या उधर दौड़ा, जिधर से फायर की आवाज आयी थी। धायँ···! धायँ! धायँ···! और फिर लगातार आवाजें आने लगी। घाट पर खड़े स्त्री-पुरुष चीखें मारते हुए जहाँ-तहाँ भागने लगे। तमाशबीन जनता भेड़ों के गल्लों की तरह एकत्र थी, पर जैसे ही गोलियों के स्वर उठे, इधर-उधर भागने लगी।

"गोली चलाने का हुक्म किसने दिया? ···फायरिंग बन्द करो!" तात्या चीख रहा था।

सिपाहियों ने नहीं सुना। सभी कतारों के सैनिकों ने गोलियाँ बरसानी प्रारंभ की। उनके सामने केवल एक लक्ष्य था—बदला! एक सिपाही चिल्लाया, "तुम फिरंगियों ने हमारे भाइयों के साथ इलाहाबाद में जो कुछ दिया-लिया है, वही लौटा रहे हैं!"

अजीमुल्ला अवाक्! तात्या, दलभजनसिंह, बालाराव, टीकासिंह, सभी ने चीख-चीखकर सिपाहियों को रोकने का प्रयास किया, "क्या कर रहे हो, कमबख्तो! ···सुनो तो सही···! ये तुम्हारी शरण आये हैं!"

"ये हमारे शरणागत हैं···? ऊँह!" सिपाही लगातार फायर करते रहे। घाट पर ढेरों अंग्रेज स्त्री-पुरुष या तो मृत पड़े हुए थे, या घायल हालत में बीभत्स चीत्कारें छोड़ रहे थे।

नावों में बैठे अंग्रेजों ने भी उत्तर में गोलियाँ छोड़ीं, किन्तु अधिक नहीं। सभी नावें धीरे-धीरे जल में समाने लगीं।

केवल एक नाव थी, जो गोलियों से बचकर दूर निकल गयी थी। बहुत गोलियाँ बरसती रहीं, किन्तु वह निकल ही गयी। नदी पर रक्त से सने कुछ कपड़े थोड़ी देर दीखते रहे, फिर गायब हो गये। दूध की शीशियाँ लहरों के साथ इधर से उधर तैर रही थीं।

घाट की धरती दूर तक रक्त से रँग गयी थी। तात्या, अजीमुल्ला और अन्य कई अधिकारियों ने बड़ी कठिनाई से सैनिकों को काबू किया। वे हाँफ रहे थे और अंग्रेजों को कोस रहे थे।

बचे हुए शरणार्थी स्त्री-पुरुष और अंग्रेजों में से दो-चार

"हाँ, फिर वक्त कब आयेगा ?"

"पर, पेशवा बहादुर और अपने अफसर···?"

"उन्हें गोली मारो।"

".........'

"इन्होंने हम पर बहुत जुल्म किये हैं। हमें अपने भाइयों के खून का बदला लेना ही चाहिए।"

"........."

"जब अपन ही एक हो गये तो अफसर क्या करेंगे ?"

"........."

"सोचते क्या हो ?"

"........."

"बोलो, तैयार हो ?"

"हूँ ? हाँ, तैयार हूँ !"

"फिर क्या है, बगलवाले से कहो !"

"हाँ, कहता हूँ।"

"........."

"सुनते हो···!"

आधी से अधिक सवारियाँ नावों में सवार होना बाकी थीं। पहले भर चुकी नावें नदी में तैर रही थीं। उनकी चाल में गति नहीं आ पायी थी कि किनारे पर तैनात सैनिकों की कतारों में से एक फायर हुआ।

धायँ !

नदी किनारे की एक नाव से चीख उठी और फिर उसमें बैठा कोई अंग्रेज़ शरणार्थी, सीना थामे, चीत्कार करता हुआ नदी में जा गिरा। पानी पर खून का गहरा रंग दीखने लगा। सवारी वाली नावों को ज्यों-का-त्यों छोड़कर भयातुर नाविक नदी में कूदने लगे···

तात्या उधर दौड़ा, जिधर से फायर की आवाज आयी थी। धायें···! धायें! धायें···! और फिर लगातार आवाजें आने लगी। घाट पर खड़े स्त्री-पुरुष चीखें मारते हुए जहाँ-तहाँ भागने लगे। तमाशबीन जनता भेड़ों के गल्लों की तरह एकत्र थी, पर जैसे ही गोलियों के स्वर उठे, इधर-उधर भागने लगी।

"गोली चलाने का हुक्म किसने दिया? ···फायरिंग बन्द करो!" तात्या चीख रहा था।

सिपाहियों ने नही सुना। सभी कतारो के सैनिको ने गोलियाँ बरसानी प्रारंभ की। उनके सामने केवल एक लक्ष्य था—बदला! एक सिपाही चिल्लाया, "तुम फिरंगियों ने हमारे भाइयो के साथ इलाहाबाद मे जो कुछ दिया-लिया है, वही लौटा रहे है!"

अज़ीमुल्ला अवाक्! तात्या, दलभंजनसिंह, बालाराव, टीकासिंह, सभी ने चीख-चीखकर सिपाहियों को रोकने का प्रयास किया, "क्या कर रहे हो, कमबख्तो! ···सुनो तो सही···! ये तुम्हारी शरण आये हैं!"

"ये हमारे शरणागत हैं···? ऊँह!" सिपाही लगातार फायर करते रहे। घाट पर ढेरो अंग्रेज स्त्री-पुरुष या तो मृत पड़े हुए थे, या घायल हालत मे वीभत्स चीत्कारें छोड़ रहे थे।

नावों मे बैठे अंग्रेजो ने भी उत्तर मे गोलियाँ छोड़ी, किन्तु अधिक नही। सभी नावें धीरे-धीरे जल मे समाने लगी।

केवल एक नाव थी, जो गोलियो से बचकर दूर निकल गयी थी। बहुत गोलियाँ बरसती रहीं, किन्तु वह निकल ही गयी। नदी पर रक्त से सने कुछ कपड़े थोड़ी देर दीखते रहे, फिर गायब हो गये। दूध की शीशियाँ लहरों के साथ इधर से उधर तैर रही थी।

घाट की धरती दूर तक रक्त से रँग गयी थी। तात्या, अज़ीमुल्ला और अन्य कई अधिकारियों ने बड़ी कठिनाई से सैनिको को काबू किया। वे हाँफ रहे थे और अंग्रेजों को कोस रहे थे।

बचे हुए शरणार्थी स्त्री-पुरुष और अंग्रेजो मे से दो-चार ही भागकर

शहर की ओर निकल सके, बाकी वहीं घेर लिये गए। घिरे हुए लोग भय से काँप रहे थे। माताओं की गोदियों में बच्चे चीख रहे थे। और जो चुप थे वे हक्के-बक्के-से 'क्या हुआ ?'—यह समझने की चेष्टा कर रहे थे।

सूर्य जवानी पर था और धरती पर पड़ा ताजा रक्त सूखने लगा। घायलों की कराहें अब भी आ रही थीं। उन्हें किसी ने नहीं उठाया। कुछ लोग पीड़ा बरदाश्त न कर सकने के कारण सरकते-सरकते नदी में जा गिरे और लहरों में विलीन हो गये।

तात्या की इच्छा थी कि आज्ञा की अवहेलना करने वाले सैनिकों को खरी-खोटी सुनाये, पर तभी पेशवा का आदेश उसे मिला—"सिपाहियों से कुछ न कहना। बचे हुए शरणार्थी कैद कर सवाड़ा हाउस पहुँचा दिये जाएँ!"

२२

पेशवा के राजतिलक और अन्य कार्यों में उलझे रहने के कारण इन दिनों अज़ीमुल्ला बहुत परेशान रहा था।

उस दिन दो सैनिक, एक वृद्ध अंग्रेज़ और एक जवान लड़की को लेकर उपस्थित हुए।

अजीमुल्ला ने मसनद पर लेटे-ही-लेटे देखा, पैटन और जूलिया पुनः पकड़े गये थे।

एक सैनिक ने कहा, "हुजूर, ये लोग बंगले में पीछे की ओर छिपे हुए थे।"

"हूँ।" अज़ीमुल्ला ने कहा, "तुम लोग जा सकते हो!"

सैनिक बाहर चले गए।

"अजीब इत्तिफाक है, आप लोग हमेशा मेरे सामने ही लाये जाते हैं।"

दोनों ने उत्तर नहीं दिया।

"मैं तो आप लोगों को घाट पर ढूँढता रहा पर आप मिले ही नहीं।"

"यह हमारा सौभाग्य है।" जूलिया ने उत्तर दिया।

"आप मुझ पर अविश्वास कर रही हैं!" अज़ीमुल्ला बोला, "सच मानिये, मैं आपकी सहायता करना चाहता था। घाट पर जो कुछ हुआ उसके लिये मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। पेशवा बहादुर भी उस घटना से गैर-जानकर थे। सिपाही आपे से बाहर हो गये और उन्होंने किसी का कहना नहीं माना।"

"उस जिक्र को छोड़ दीजिये।" पैटन बोला, "हम लोगों ने जीवन-रक्षा के बहुत उपाय किये, किन्तु भाग्य ही हमसे कुछ टेढ़ा है। अब हम फिर आपके अपराधी हैं। आप जो चाहे करें।"

"अब तो आप लोगों का कोई अपराध नहीं है। मैं आपका कुछ नहीं कर सकता। हाँ, शिष्य के नाते सेवा करना चाहता हूँ।"

वे घबराये। एक बार पहले भी शिक्षक के प्रति शिष्य ने कर्तव्य निवाहा था।

अज़ीमुल्ला कह रहा था, "मैं चाहता हूँ कि आप लोग कुछ दिन मेरे मेहमान रहें। अभी आपका बाहर जाना ठीक नहीं है। हिन्दुस्तानी बहुत उत्तेजित हैं। जब ज्वालामुखी कुछ ठंडा हो जाये तब आप बाहर निकल जाइएगा।"

आश्चर्य से पैटन और जूलिया ने अज़ीमुल्ला का चेहरा देखा। क्या यह वही अज़ीमुल्ला है, जिसने पेशवा का न्यायाधिकारी होने के नाते उन्हें मृत्यु के मुँह में धकेल दिया था?

अज़ीमुल्ला ने उनकी मनःस्थिति समझी—"आप किसी तरह की दिमागी उलझन में मत पड़िये। तब की बात और थी। मैं श्रीमत पेशवा बहादुर और देश के प्रति अपना कर्तव्य निवाह रहा था। उस दिन मेरे सारे व्यक्तिगत सम्बन्ध मेरे कर्तव्यों से दबे हुए थे पर आज आप अपराधी नहीं, शरणार्थी हैं। अतः आपकी सेवा करना मेरा कर्तव्य है। आप यहाँ

रहिये, किसी तरह का खतरा या तकलीफ नही होगी।" उसने उन्हें दुबारा आश्वस्त किया, "निश्चित रहिये। जैसे ही खतरे की स्थिति टली, मैं स्वयं ही आपको सुरक्षित स्थान तक पहुँचा दूंगा, पर अभी आपका उधर जाना ठीक नहीं है। सिपाही फिरंगी जाति से घृणा करते हैं। जीवन-रक्षा आपको वहुत महँगी पड़ेगी।"

पैंटन के मुर्झाये चेहरे पर जीवन का वसंती हास्य खिल गया। जूलिया के मन में गहरे तक अविश्वास था। "घाट पर भी आप हमें जीवनरक्षा के लिये तो लाए थे, तव आपने क्यों नही सोचा कि हम शरणार्थी हैं। उस समय आपकी हिन्दुस्तानी रीति-नीति कहाँ चली गयी थी?..." जूलिया ने कह तो दिया, किन्तु पैंटन को भय लगा। अंग्रेज़-नीति शक्तिवान और समर्थ के आगे आत्मसमर्पण की है, मुंहजोरी की नहीं।

अज़ीमुल्ला के माथे पर सिकुड़नें पड़ीं-मिटीं। प्रश्न जिस अक्खड़ ढंग से किया गया था, निस्संदेह ही वह अपमानजनक था। फिर भी उसने क्षोभ पर कावू किया। मिठासभरे स्वर में वोला, 'मैंने पहले ही घाट वाली घटना पर खेद व्यक्त कर दिया है। हालाँकि ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह सम्पूर्ण घटना हमारे लिए भी एक रहस्य ही वनी हुई है। अतः हमें भी आपके सामने सिर झुकाना पड़ रहा है, वरना विश्वास कीजिए यह सिर किसी फिरंगी के आगे झुकने के लिए नहीं है!"...अन्तिम पंक्ति उसने इतने भारी स्वर में कही कि भय से पैंटन के पैरों में कम्पन हो आया। जूलिया ने अज़ीमुल्ला की गम्भीरता की परवाह किये विना व्यंग्य किया, "सचमुच यह अजीव वात है कि आपके सिपाही अपनी परम्परा भूलकर शरणार्थियों की हत्या कर दें, स्त्रियों और वच्चों को मौत की गोद में सुला दें और आप पूरी घटना से गैर-जानकर ही रहें। अपने कर्तव्यों की हत्या करने के वाद भी आप कहें कि यह सिर झुकने के लिए नहीं है!!"

पैंटन की इच्छा हुई थी कि जूलिया के नर्म गालों पर एक कठोर तमाचा कसे। अज़ीमुल्ला से मुंहजोरी कर वह स्वयं के साथ-साथ उसे भी मृत्यु के मुंह में खींच रही थी।

अजीमुल्ला के चेहरे पर स्पष्ट ही क्रोध के भाव आ गये। फिर भी उसने स्वयं को असंतुलित नहीं होने दिया, "मिस जूलिया, मैं आपके साहस की प्रशंसा करता हूँ। घाट का हत्याकांड सचमुच बहुत दुःखद है और हिन्दुस्तानियों के लिए एक शर्मनाक घटना है। पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उसकी जिम्मेदारी हम लोगों पर नहीं है। वह सब सिपाहियों ने अपनी इच्छा से किया और मजे की बात यह है कि वे भी उसके जिम्मेदार नहीं हैं!"...

जूलिया ने कुछ कहा तो नहीं, पर उसके देखने के ढंग में एक सवाल था।

"सत्तीचौरा घाट की घटना की जिम्मेदारी हिन्दुस्तानियों पर नहीं है। उसकी जिम्मेदारी तो आप फिरंगियों पर ही है। इलाहाबाद, बनारस और आसपास के इलाकों में आपने आगजनी, हत्याकांड और अमानुषिकता के जो नाटक खेले हैं, सत्तीचौरा घाट की घटना उसी का परिणाम है। नियम और परम्पराएँ मनुष्यता के रखवाले जरूर है, पर आदमी की प्रतिक्रियाओं पर ये बन्धन लागू नहीं हो पाते। हिन्दुस्तानियों के प्रति आपने जो कुछ किया है, कई सालों से और अभी हाल में, उसे देखते हुए घाट की घटना बहुत साधारण है। वह तो केवल एक स्थान की प्रतिक्रिया है। अभी अन्य स्थानों का तो पता ही नहीं है कि वहाँ क्या हुआ है या क्या होगा? आप फिरंगी शासक होने की बात करते हैं और इतना ज्ञान नहीं रखते कि लूट, दमन और अत्याचार से नहीं, सच्चाई और मानवता के पालन से शासन चलता है!"

जूलिया के पास अजीमुल्ला की किसी दलील का न कोई उत्तर था और न विरोध का कोई तर्क। फिर भी वह अजीमुल्ला के प्रति मन में पैदा हुई घृणा और अविश्वास के भाव को बदल नहीं पाती थी।

जब अजीमुल्ला ने समझ लिया कि जूलिया और पैटन के पास उत्तर-कोश खाली हो चुका है, तब बोला, "खैर, छोड़िए ये सारी बातें। जब आप लोग यहाँ आ ही गए है तो आपकी रक्षा मेरा कर्तव्य है। मेरा खयाल

है कि अब आप लोग यहाँ से भागने की कोशिश नहीं करेंगे। सिपाहियों के मन में कमांडर नील जैसे भद्र व्यक्तियों ने जिस वदले की आग को भड़का दिया था, उसे ठंडा कर सकना हमारी या पेशवा वहादुर की शक्ति में नहीं है। आपने यदि यहाँ से भागने की चेष्टा की तो सम्भव है कि आप और हम फिर कभी भेंट न कर सकें। अच्छा यही होगा कि आप उस समय तक यहीं रहें जव तक कि वह आग ठंडी नहीं हो जाती।"

जूलिया और पैटन चुप थे। अजीमुल्ला उठा और दूसरे कमरे में चला गया।

२३

घाट के हत्याकांड में वचे व्यक्तियों को, जिनमें अंग्रेज़ महिलाओं और वच्चों की वहुतायत थी, पेशवा के आदेशानुसार कैद कर सवाड़ा हाउस पहुँचा दिया गया। इस आदेश-पालन में तात्या और वालाराव को भारी उलझनों का सामना करना पड़ा। सिपाही, इलाहावाद में नील के अत्याचारों की कहानी सुनकर इस हद तक उत्तेजित हो उठे थे, कि वे अपने अधिकारियों के आदेशों तक की अवहेलना करने को तैयार हो गये। जैसे-तैसे अंग्रेज़ महिलाएँ और वच्चे सवाड़ा हाउस पहुँचाए गये, पर सिपाहियों की उत्तेजना चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। यहाँतक कि वे पेशवा के राजतिलक कार्यक्रम के वाद, घाट पर हत्याएँ करने के वाद ज़िद करने लगे कि शरणार्थियों की रक्षा कर पेशवा ठीक नहीं कर रहे हैं। उन्हें जनता के हाथों सौंप दिया जाना चाहिए। कैम्प में पहुँचते ही तात्या को समाचार मिला, सिपाही कहते हैं कि घाट पर कैद किये गए अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों को उनके हवाले कर दिया जाये!

"यह क्या वकवास है?" तात्या लगातार ज़िद से क्रोधित हो उठा।

ज्वालाप्रसाद ने स्थिति की गंभीरता समझायी, "सिपाही बेकाबू हैं, यदि उनकी मांग पूरी नही हुई तो निश्चय ही वे हमारा साथ छोड़ सकते हैं।"

"मगर पेशवा बहादुर का हुक्म ?" तात्या ने अपनी उलझन रखी। ज्वालाप्रसाद की घबराहट से उसे मामले की गंभीरता समझते देर न लगी।

"पेशवा बहादुर को भी यही समझाना पड़ेगा। मैंने सिपाहियों को काबू करने की बहुत कोशिश की, पर वे मानते ही नही ! पूरे लश्कर में एक भी ऐसा आदमी नही है जो इस मामले में हमारा हुक्म मानने को तैयार हो।"

"हूँ। पेशवा बहादुर को मामला बताये देते है, पर वे ऐसी शर्त मानेंगे, मुझे इसमे सन्देह है।" यह कहकर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये, तात्या पेशवा से भेंट के लिए रवाना हो गया।

समाचार पाकर पेशवा चिन्तित हुआ, पर यह जानकर कि तात्या और ज्वालाप्रसाद जैसे व्यक्ति तक जिस मामले में हाथ डाल चुके है, अपने आदेश वापिस लेने के अलावा उसके पास और कोई चारा नही था। उसने आदेश दिया, "सैनिको से कहो कि हमें उनकी प्रार्थना स्वीकार है, हालांकि हमारी संस्कृति मे निहत्थों पर वार करने की स्वीकृति नही है, फिर भी स्थितियों केअनुसार कुछ नियम बदलने होते हैं। कैदियों में से अंग्रेज पुरुषों को मारो, किन्तु स्त्रियों और बच्चों को कोई हानि न पहुँचाओ।"

ज्वालाप्रसाद यह समाचार लेकर सिपाहियों तक पहुँचा।

सवाडा हाउस मे कैद पुरुषों को घाट पर लाकर पंक्तिबद्ध खड़ा किया गया। क्रोधित भारतीय सैनिक खूंख्वार आंखों से उन्हें घूर रहे थे। मरने से पूर्व जब एक अंग्रेज पुरुष ने इंजील में से कुछ ईश्वर-प्रार्थनाएँ पढ़कर अपने साथियों को सुनाने की इच्छा प्रकट की, तो उसे स्वीकृति दी गई।

ईश्वर-प्रार्थना के बाद सैनिकों ने कैदी अंग्रेजों के सिर कलम कर दिये। स्त्रियां और बच्चे बीबीघर पहुँचा दिए गए।

सिपाहियों ने अपनी ज़िद पूरी तो कर ली थी, किन्तु पेशवा इस घटना को लेकर बहुत दुखी था। उस सम्पूर्ण दिन वह एकान्त में पड़ा रहा। आवश्यक कार्य होते हुए भी उसने तात्या, अज़ीमुल्ला या बालाराव, किसी से भेंट न की। सहृदयता और सौजन्य उसे पूर्वजों से विरासत में मिले थे। सत्ती-चौरा घाट के हत्याकांड ने उसे झकझोर डाला था। उस सारी रात वह चैन से सो भी न सका। हर क्षण उसे घाट वाली घटना बेचैन करती रही। उसे इतिहास से भय लगा। आनेवाली पीढ़ियों के इतिहासकार कितना बड़ा कलंक थोप देंगे उसके माथे पर ?

दूसरे दिन का प्रातः कब हुआ, यह नाना को पता भी न चला। रात्रि में बालाराव और अज़ीमुल्ला ने तीन बार भेंट का प्रयत्न किया था, पर हर बार पेशवा की मानसिक अस्वस्थता के कारण उन्हें लौटा दिया गया था। प्रातःकाल बालाराव और अज़ीमुल्ला चौथी बार उपस्थित हुए। नाना ने फिर उन्हें टालना चाहा, किन्तु इस बार वे ज़िद कर पेशवा के सम्मुख आ खड़े हुए।

"कहिये ?"

अज़ीमुल्ला को नाना की यह बेरुखी अच्छी नहीं लगी। कानपुर पर कब्जा कर लेने के बाद पेशवा इस तरह निश्चिन्त या उदासीन होकर पड़ा रहेगा, उसने कभी न सोचा था। अंग्रेज़ कानपुर दोबारा हथियाने की सोच रहे हैं, इस तरह के लगातार समाचार मिल रहे थे।

बालाराव ने पिछले तीन दिनों के समाचार दिये, "खबर मिली है कि फिरंगी कमांडर नील इलाहाबाद में है और हैवलाक कानपुर की ओर कूच कर चुका है।"

"हूँ।"

"अन्देशा है कि जनरल नील भी इसी ओर आयेगा। फिरंगी पूरी ताकत से कानपुर पर हमला करना चाहते हैं।"

"तात्या कहाँ है ?" पेशवा ने पूछा।

"तात्या तैयारी कर रहे हैं।" बालाराव ने कहा, "शहर के बाहर

मोर्चे तैयार किये गए हैं और आसपास के गाँव खाली कराके फौजों के पड़ाव डाले गए हैं।"

"और बिठूर की रक्षा ?"

'बिठूर खतरे में है।" अज़ीमुल्ला ने बताया, "यहाँ की उचित व्यवस्था के लिए तो हम मौजूद ही हैं, पर बिठूर में परिवार के पास श्रीमंत की उपस्थिति आवश्यक है। खुदा न करे, कानपुर दोबारा फिरंगियों के कब्जे में आ जाए। वैसे हर मोर्चे पर उन्हें कड़ा लोहा लेना पड़ेगा, फिर भी श्रीमंत बिठूर पहुँच जायें, यही उचित रहेगा।"

"हूँ।" पेशवा कुछ सोचने लगा, पर बालाराव और अज़ीमुल्ला उसे मौका ही न देना चाहते थे। इससे पूर्व कि पेशवा कुछ कहे, बालाराव ने कहा, "दादा साहब, उचित यही है कि आप बिठूर पहुँच जायें।"

"ठीक है।" पेशवा ने बिठूर जाना स्वीकार कर लिया, "पर हमारे साथ तात्या चलेंगे !"

बालाराव और अज़ीमुल्ला ने एक-दूसरे के चेहरे देखे। नाजुक स्थिति में तात्या को कानपुर से हटा देना उचित नहीं था। अज़ीमुल्ला ने प्रस्ताव किया, "तात्या साहब की मौजूदगी यहाँ जरूरी है। ज्वालाप्रसादजी आपके साथ जायेंगे। हमारा विचार है कि वे बिठूर में खूब अच्छी व्यवस्था कर सकेंगे।"

पेशवा ने कुछ नहीं कहा। उसकी चुप्पी स्वीकृति मान ली गयी।

बालाराव और अज़ीमुल्ला पेशवा की बिठूर-रवानगी की तैयारी करवाने चले गये। नाना पुनः उसी मानसिक ऊहापोह में उलझ गया। लाख प्रयत्न करने पर भी सत्तीचौरा घाट वाली घटना दिमाग से हट नहीं पाती थी।

क्रान्तिकारी लखनऊ से सहायता माँग रहे थे। बीच में पेशवा ने विचार भी किया कि लखनऊ की ओर एक टुकड़ी भेज दी जाये, पर जन-

बाद हैवलाक की कानपुर की ओर चढ़ाई के समाचार ने उसे इस ओर से ध्यान हटाने के लिए बाध्य किया। नाना-परिवार बिठूर में था। वहाँ से दिन में कई बार समाचार आ जाते थे, पर परिवार से भेंट का लोभ नाना के मन में था। बाबा, बालाराव और अज़ीमुल्ला ने भी बिठूर जाने के लिए बहुत ज़ोर डाला। उनका कहना था कि हैवलाक से निपट लेंगे, नाना बिठूर चले जायें। नाना ने स्वीकार कर लिया। सोचा कि बिठूर में परिवार से भेंट करके ही कानपुर लौट पड़ेगा और अंग्रेज़ी फौजों से युद्ध करने के समय कानपुर में ही रहेगा। ज्वालाप्रसाद और अन्य सरदारों को यह उचित नहीं था किन्तु पेशवा ने नहीं [illegible]। [illegible] जुलाई को बिठूर गया और जल्दी ही वापस लौट आया।

हैवलाक की चढ़ाई के समाचार आठ जुलाई से ही आने प्रारंभ हुए। कानपुर के आसपास के गाँवों से मार्मिक समाचार पहुँचाये। हैवलाक की फौजें जहाँ [illegible] मार्ग के गाँवों और बस्तियों में [illegible] हुई। पेशवा की फौजें भी आज कल समाचार सुनतीं। [illegible] अंग्रेज़ों के [illegible] और [illegible] होगी। ऐसे समाचारों की भी कमी न थी, जिनमें अंग्रेज़ी फौजों की अमानुषिकता की घटनाएँ सुनने को मिलतीं। लूटमार और हत्याओं की खबरों के अलावा बलात्कार की घटनाओं के [illegible] थे। नाना और पेशवा के लिए भी ऐसे समाचारों पर भयानक प्रतिक्रिया होती। [illegible] जो शहर में [illegible] किये हुए थे, ऐसे ही दिन किसी भी [illegible], मौत के घाट उतार दिए जाते।

[illegible] लड़ाई।

हैवलाक की फौजों ने कानपुर के लिए [illegible]।

नाना और बालाराव ने मुकाबले की तैयारियाँ कर ली थीं। हैवलाक के [illegible] यद्यपि [illegible], फिर भी [illegible] फौजें [illegible] और [illegible] मुकाबले में [illegible]। [illegible] के [illegible] तमाम [illegible]

ओर की तोपें गरजती रहीं। तात्या, बालाराव और राव साहब के अलावा टीकासिंह यहां-वहां भाग-दौड़कर मोरचे सँभालते रहे। संध्या को ही पेशवा नाना बिठूर से वापस लौट आया था। तात्या मोरचे पर था। नन्हे नवाब ने खबर पहुँचायी, "पेशवा बहादुर आ गये हैं! ···" खबर पाकर तात्या बहुत खीझा। कितना कहा था कि बिठूर मत छोड़ना, पर··· तात्या मन मसोसकर रह गया। पेशवा स्वामी था और स्वामी को केवल सलाह दी जा सकती थी। मोरचों की हालत के समाचार बहुत निराशाजनक थे। जीत की आशा पैदा होने के पूर्व ही मरने लगी। गोलंदाजी नन्हे नवाब के अधीन थी। बालाराव और राव साहब पूर्वी हिस्से की कमान सँभाल रहे थे, टीकासिंह दक्षिणी। दैत्यशक्ति वाले हैवलाक के हमलों से तात्या जूझ रहा था। इधर-उधर से हर क्षण बुरे समाचार मिल रहे थे। लड़ाई का पहला और अधूरा दिन परिणाम स्पष्ट कर रहा था। हैवलाक के पास तोपें अधिक हैं, उसकी लगातार गोलाबारी ने यह सिद्ध कर दिया। जीत का प्रश्न ही न था। रात्रि हुई तो तात्या ने टीकासिंह और बाला साहब को संदेश भेजे, "पराजय के क्षण आए है। बुद्धिमत्तापूर्वक पीछे हटना प्रारंभ करो। कहीं आगे मोरचा जमायेंगे।" सदेशा भिजवाकर वह पेशवा से भेंट के लिए रवाना हुआ।।

पेशवा चिन्तित था। उसे भी सारे समाचार मिल रहे थे। वह बेचैनी से टहल रहा था। अज़ीमुल्ला तख्त पर विचारमग्न बैठा था। मोरचा टूट रहा है। पराजय के क्षण पास आ रहे हैं। फौजें पीछे हटानी पड़ेंगी ··ऐसे हर समाचार के बावजूद आशा का पल्ला नहीं छूटा था। तात्या ने जैसे ही कमरे में प्रवेश किया, पेशवा ने प्रश्न कर दिया, "तात्या! कोई नयी बात ?"

"कोई नयी बात नहीं है, श्रीमन्त।" तात्या ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "फिरंगियों के सामने हम नहीं टिक सकेंगे।"

पेशवा के चेहरे पर उदासी की एक पर्त और चढ़ गयी।

अज़ीमुल्ला ने ढाढस बँधाया, "जय-पराजय तो होनी ही रहती है।"

"मैंने सेना को पीछे हटने के आदेश दिये हैं"—तात्या ने बताया, "हैवलाक की भारी शक्ति के आगे, व्यर्थ जीवन गँवा देना उचित नहीं था।"

पेशवा ने उत्तर नहीं दिया। तात्या ने एक क्षण प्रतीक्षा की और फिर मोरचे की ओर वापस हो गया।

सेनाएँ पीछे हटीं। विजयी अंग्रेज़ फौज ने दूने वेग से आगे बढ़ना प्रारंभ किया। पीछे हटने के इस दौर में क्रान्तिकारी फौजों को भारी हानि उठानी पड़ी। अनेक तोपें और भारी रसद अंग्रेज़ों के हाथ लगी। सैंकड़ों सैनिक मारे गये, उनकी तुलना में अंग्रेजों की मृत्युसंख्या नगण्य थी। बारह जुलाई को नाना ने ज्वालाप्रसाद और टीकासिंह के नेतृत्व में एक सेना पुनः मुकाबले के लिये भेजी। फतहपुर के निकट इस सेना ने मोरचा जमा लिया। शक्ति के समक्ष साहस और धैर्य की एक अमर कहानी लिखी जा रही थी।

कानपुर में पेशवा का निवासस्थान। भविष्य की रूपरेखा पर विचार चल रहा था।

तात्या, अज़ीमुल्ला, बाला साहब और राव साहब उपस्थित थे। चेहरे उदास और युद्ध की आँधी से क्लांत। फिर भी आशा की ज्योति कहीं टिमटिमा रही थी, जो आपत्ति के अंधेरे में भी उनके मन रोशन किये हुए थी।

बाला साहब ने सुझाव रखा, "श्रीमंत बिठूर चले जायें।"

अज़ीमुल्ला और तात्या ने समर्थन किया। पेशवा चुप था। वह आपत्ति के इस मौके पर अपने साथियों और सेनाओं से अलग होने के लिए तैयार न था।

अज़ीमुल्ला ने दबी-मुंदी आवाज में आगामी खतरे की ओर इंगित किया, "श्रीमंत का अब यहाँ ठहरना उचित नहीं है। पराजय निश्चित है। कानपुर का युद्ध, स्वतन्त्रता की यह लड़ाई, केवल श्रीमंत पेशवा बहादुर के सहारे जारी है। अगर सहारा टूट जायेगा तो यह लड़ाई खत्म हो जायेगी।

इस पराजय की अपेक्षा वह पराजय अधिक दुखदायी और बुरी होगी।"

तात्या और बालाराव ने भी इसी ढग से सोचा था। उन्होंने अजीमुल्ला के विचार से केवल सहानुभूति ही व्यक्त नहीं की, अपितु उसे बल दिया, "श्रीमंत, खान साहब ने ठीक ही निवेदन किया है, यह युद्ध केवल आपके नाम पर जीवित है। युद्ध को जीवित रखने के लिए आपका अमूल्य जीवन आवश्यक है।"

"तात्या उचित ही कहते हैं, दादा साहेब!" बालाराव बोला, "यह सही है कि पराजय झेलकर जीवित रहना वीरों के लिये कठिन है, फिर भी कभी-कभी नीति के लिए यह मृत्युवत् दंड सहना होता है। हम सभी चाहते हैं कि श्रीमंत यही मार्ग स्वीकार करें। आपके नाम पर यह छितराया हुआ युद्ध, सेनाएँ, सभी कुछ सगठित होंगे और स्वतन्त्रता की यह लड़ाई जारी रहेगी।"

अजीमुल्ला भी कुछ कहना चहता था, पर नाना मुखर हुआ, "मित्रो!" उसका स्वर बहुत थका हुआ था। तात्या और अजीमुल्ला ने 'मित्रो' शब्द पर कुछ झेंप अनुभव की। किन्तु यह शब्द संभवतः परस्पर स्नेह और विश्वास का ऐसा सम्बल था, जिसमे बहुत हद तक प्रजातंत्र की प्रथम कल्पना छिपी थी।

"यह बहुत कठोर दंड है। आप लोगों की नीतिज्ञता के प्रति हम किंचित् सन्देह प्रकट नही करते, पर विचार कीजिये, यों आपद्काल मे हमारा चोरों की तरह पलायन क्या हास्यास्पद और निंदाजनक नहीं होगा? जब इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों मे पेशवाई की महान् कथा लिखी जायेगी, तब क्या इतिहासकार के आगे हम प्रश्नचिह्न न होंगे? हम आपके विचारो का आदर करते हैं, पर सोचिये यह कितनी दुखदायी बात होगी कि महान पेशवाओं की संतति पराजय मे जीवन-रक्षा के लिये डरपोकों की भाँति इधर-उधर भागती फिरे? ---नहीं, मित्रो, यह कभी नहीं हो सकता!" पेशवा भावुक हो उठा,"शत्रु के खड्ग हृदय में इतनी तीखी वेदना नहीं देंगे जितने रण से भागकर बचाये गये जीवन मे अपमान के क्षण।"

अज़ीमुल्ला और तात्या का मन भारी हो गया। वे पेशवा की मनः-स्थिति और पीड़ा अनुभव कर रहे थे, किन्तु जीवन-रक्षा कर युद्ध जारी रखने के अलावा कोई चारा शेष नहीं था।

अज़ीमुल्ला बोला, "श्रीमंत, रणक्षेत्र से हटने को भागना नहीं कहा जाता। विपत्तिकाल में एक बार महाराणा प्रताप ने भी जीवन-रक्षा की थी। उससे उनकी महानता और कुल पर आंच नहीं आयी। हमारी प्रार्थना है कि आप इस समय कहीं और चले जायें ताकि एक बार फिर शक्ति जुटाकर शत्रु को निकाल भगाने के लिये युद्ध किया जा सके।"

पेशवा उत्तर न दे सका। अजीमुल्ला ने महाराणा की मिसाल पेश कर उसे निरुत्तर कर दिया।

तात्या ने उठते हुए कहा, "मैं श्रीमंत के लिए वाहन-व्यवस्था करवाता हूँ।"

"अवश्य!" अज़ीमुल्ला बोला।

तात्या चला गया। कुछ देर बाद ही वह लौटा, "वाहन तैयार है। श्रीमंत के साथ राव साहब भी जायेंगे। कुछ सैनिक भी तैयार हो रहे हैं।"

"और आप, खान साहब?" पेशवा ने पूछा।

अज़ीमुल्ला, एक विलक्षण व्यक्तित्व। ऐसे विपत्तिकाल में भी वह हँसने का लोभ संवरण न कर सका, "मेरी चिन्ता छोड़िये, पेशवा बहादुर! कानपुर की धरती ने मुझे पाला, बड़ा किया, स्नेह-सम्मान दिया। अब इस माता को छोड़कर किसका आँचल ढूंढूंगा?"

पेशवा की आँखें छलछला आयीं। डूबते-से स्वर में ऐसे, जैसे कोई चीज़ पानी में गिरकर समाती जा रही हो, पेशवा ने तात्या से भी वही प्रश्न कर दिया, "और आप, तात्या?"

"मैं यहाँ से निबटकर जहाँ आप होंगे वहां अवश्य पहुँच जाऊँगा।"

तात्या की बात सुनकर उम्मीद की कोई मद्धिम किरण पेशवा की आँखों की कोरों पर चमकी और बुझ गयी।

पेशवा चुप था। उसने कभी तात्या की ओर जी भर कर देखा, कभी

अज़ीमुल्ला की ओर। ठीक कुछ यही स्थिति उन दोनों की थी। वे नाना की ओर सूनी आँखों से लगातार देखे जा रहे थे। कमरे में कुछ क्षण मौन रहा। यह मौन मानस के सूनेपन से कहीं अधिक भयानक था। अभी यह मौन टूटा भी न था कि एक सन्देशवाहक सैनिक ने हाँफते हुए कमरे में प्रवेश किया।

"क्या है ?" तात्या ने पूछा।

"फतेहपुर में भी मोरचा टूट रहा है।" काँपते स्वर में सैनिक ने बताया। थकान और निराशा से उसके उखड़े-उखड़े शब्द निकले। अज़ीमुल्ला को लगा जैसे मोरचे ही नहीं, आदमियों के साहस भी टूट रहे हैं।

"जनरल टीकासिंह ने श्रीमंत की सेवा में निवेदन किया है कि श्रीमंत कानपुर छोड़ दें···" सिपाही को लग रहा था जैसे यह समाचार सुनकर पेशवा क्रोधित हो उठेगा। किन्तु उसे आश्चर्य हुआ कि वैसा कुछ नहीं हुआ। पेशवा ने समाचार पूर्ण शान्ति के साथ सुना। एक बार तात्या का चेहरा देखा और फिर गर्दन झुका ली।

"तुम जाओ !" तात्या ने सैनिक को आदेश दिया। जब वह चला गया तो पेशवा से बोला, "अब अधिक देर करना उचित नहीं है, श्रीमंत ! आप बिठूर की ओर रवाना हों। वहाँ भी कुछ समय लगेगा। कानपुर के भीतर आने तक हैवलाक को काफी कीमत चुकानी पड़ेगी।"

पेशवा थकी-सी चाल से कमरे से बाहर [illegible]आ। पीछे-पीछे तात्या और अज़ीमुल्ला निकले। सामने एक बड़े पीपल के पेड़ के नीचे कुछ घोड़े खड़े हुए थे। पेशवा उस ओर बढ़ा। बीच में उसने एक बार ठिठककर तात्या और अज़ीमुल्ला को देखा।

इधर-उधर पहरे पर खड़े सैनिक उदास चेहरे और भीगी आँखों से पेशवा को देख रहे थे। कानपुर के भविष्य पर अब कोई पर्दा शेष नहीं रहा था। पेशवा की विदाई इसका प्रमाण थी।

अभी पेशवा घोड़े पर सवार हो ही रहा था कि दो भारतीय सैनिक एक अंग्रेज स्त्री और भारतीय पुरुषों को उनके सामने ले आये।

नाना रुक गए। तात्या ने कठोर स्वर में प्रश्न किया, "क्या है ?"

सैनिक ने बताया, "बीबीघर की कैद अंग्रेज औरतें षड्यंत्र कर रही हैं, हुजूर ! अभी-अभी यह गद्दार हिन्दुस्तानी पकड़ा गया है। यह इलाहाबाद से नील साहब का सन्देश लेकर आ रहा था।"

पेशवा का चेहरा घृणा से भर गया। आसपास खड़े सभी लोगों पर ऐसी ही प्रतिक्रिया हुई। तात्या तो जैसे बरस ही पड़ा, "गोली से उड़ा दो इसे ! गद्दार ! देशद्रोही !"

"क्षमा, श्रीमंत ! ···भूल हुई ! ···मुझे क्षमा करें···!"

"इसे गोली से उड़ा दो ! ···देशद्रोह का और कोई दण्ड नहीं है !" तात्या ने आदेश दिया।

दो भारतीय सैनिक उसे खींचते हुए एक ओर ले गए।

"श्रीमंत, अब विलम्ब न करें !" अज़ीमुल्ला ने कहा।

पेशवा घोड़े पर सवार हुआ। उसे दुःख था कि जिन अंग्रेज़ स्त्री-पुरुषों की रक्षा के लिए उसने अपने सैनिकों को डाँटा-डपटा था, उनसे विरोध मोल लिया था, वे ही उसके विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे। घोड़े पर एड़ लगाने से पूर्व उसने एक बार पुनः भीगी आँखों से सभी की ओर देखा। घोड़ा दौड़ पड़ा। पीछे-पीछे कुछ सैनिकों के साथ राव साहब भी चला गया।

२४

लगातार हार के समाचारों ने सैनिकों में एक खीझ का भाव पैदा किया था। नाना साहब की दरियादिली से भी वे कम नहीं झल्लाये थे। हैवलाक और नील के अत्याचारोंके समाचार आ ही रहे थे। इलाहाबाद से कानपुर की विजय-यात्रा के लिये चले इन अंग्रेज़ सेनानियों की सेनाओं ने बरबादी और प्रतिहिंसा का ऐसा दौर चलाया, जिसके समाचारों से लगता था, जैसे

अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों को जड़-मूल से समाप्त करने की ही सौगन्ध खा रखी है। नील और हैवलाक की फौजें रास्ते के सभी ग्रामों और ग्रामवासियों का नाश करती हुई, बढ़ती आयी थीं। किसी ग्राम के पास जब अंग्रेजी फौजें पहुँचती तो उसे चारों ओर से घेर लिया जाता और फिर योजनाबद्ध ढंग से निर्दोष ग्रामीण स्त्री-पुरुषों और बच्चों को मौत के घाट उतारा जाता। कभी-कभी मौत की सजा में अंग्रेज सैनिक मनोरंजन करते। जीवित आदमियों को आग पर भूने जाने से लेकर उसे संगीनों से कुचल-कुचलकर मारने तक को मनोरंजन समझा जाता। मौत के इन शैतानी खेलों की कहानी इतनी लम्बी है कि यदि पूरी लिख दी जाए तो एक ऐसा ग्रन्थ तैयार हो सकता है, जिसके सामने रोमन राजाओं द्वारा मनोरंजन के लिए जीवित आदमियों को भूखे शेरों या जंगली भैंसों के सामने डलवा देने की कथाएँ भी फीकी पड़ जाएँगी।

फतेहपुर की हार के समाचारों और अंग्रेजों के अत्याचारों की खबरें जब कानपुर आयी तो भारतीय सैनिकों की खीझ और क्रोध चरमसीमा पर पहुँच गए। जहाँ-तहाँ सैनिकों में यही चर्चा होती। हर चेहरा आक्रोश और घृणा में डूबा हुआ, हर आँख अंगारे बरसाती हुई और हर जबान बदले के स्वर बोलती हुई।

पेशवा के जाते समय जब सैनिकों तक यह समाचार पहुंचा कि वे अंग्रेज स्त्रियाँ, जिन्हें पेशवा ने दया कर जीवित बचा रखा था, पेशवा के विरुद्ध षड्यंत्र कर रही थी, तब बदले की यह धूमिल आग और प्रज्वलित हो गई। ठीक इसी समय फतेहपुर की हार के समाचार कानपुर पहुँचे और इससे पहले कि सैनिकों के मन सम्हाले जाते, सिलसिले से फतेहपुर में हुए अंग्रेजी अत्याचारों की खबरें भी आ पहुँची।

साँझ हुए जब पहरे बदले जा रहे थे, सैनिक दो-दो, चार-चार के झुंड बनाए, फतेहपुर की खबरों पर दुःख और रोष व्यक्त कर रहे थे।

दूसरी घुड़सवार बटालियन के हिन्दुस्तानी सिपाहियों की एक टुकड़ी में चर्चा ने जोर पकड़ा:

"हमारे अफसर दव्वू हैं !" एक सैनिक ने कहा।

दूसरे ने समर्थन किया और एक टिप्पणी दी, "तुम ठीक कहते हो। न वे खुद कुछ करते हैं और न कुछ करने देते हैं। जनरल नील ने इलाहाबाद में हजारों-लाखों हिन्दुस्तानी मार दिये। औरतों की लाज लूटी, बच्चों को संगीनों में पिरोया और पेशवा बहादुर ने यहाँ अंग्रेज औरतों-बच्चों को अपने आँचल में छिपा लिया ? शि···हिश्श ! कितनी बुरी बात है ?"

"सिर्फ इलाहाबाद ही क्यों, फिरंगियों ने हर जगह ऐसे ही जुल्म किये हैं और हमारे अफसर हमें हमेशा रोकते रहे हैं। भला सोचो कि यह कोई न्याय की बात है कि वे मनचाही करते रहें और हम हाथ पर हाथ धरे, अपनी माँ-बहनों की बेइज्जती सहते जायँ ? ऐसा किस पुराण और धर्म में लिखा है ? देवताओं ने राक्षसों को माफ कर दिया था क्या ? उन्होंने भी गिन-गिनकर मारे थे, तब कहीं धरती का दुःख दूर हुआ।"

"सुनते हैं कि फतेहपुर को फिरंगियों ने बिलकुल बरबाद कर दिया है !"

"बरबाद कर दिया या जला डाला ? वहाँ के सिपाहियों ने मजिस्ट्रेट शेरर साहब को जिन्दा छोड़ दिया था। अब वही यमदूत की तरह सारे शहर पर टूट पड़ा है। वह वहाँ से जान बचाकर भागा था और अब वह गिन-गिनकर बदले चुका रहा है।"

"कहते हैं कि शेरर साहब के हुक्म से शहर में आग लगाकर सारी आबादी जला डाली गयी।"

"लानत है हम पर जो हम यह सब सह रहे हैं और जिन्दा हैं !"

'हाँ, हाँ ! अफसर क्या चीज़ हैं ?" दूसरे सैनिक ने कहा, "हम न हों तो कुछ नहीं हो सकता। हम चाहें तो क्या नहीं कर सकते ? बेकार ही इतने परेशान हो रहे हैं ! ऐसे डरपोक अफसरों का साथ छोड़ो और जो जी चाहे करो। बन्दूकें-तोपें अपने हाथ में हैं, जी चाहे तो अभी बीबीघर पर हमला करो और जितने लाल-गुलाबी चेहरे दिखें, सबको मौत के घाट

उतार दो। बोलो, हो तैयार ?"

"हाँ, हाँ ! हम तैयार है ! चलो इसी वक्त।"

"हाँ, हाँ !" दूसरे सैनिक ने कहा और उठ खडा हुआ, "आज अगर कोई अफसर रोकेगा तो हम नही रुकेंगे। बहुत बर्दाश्त कर लिया, अब नही होता। साले फिरंगी समझते क्या है ! वे अगर हमे मिटाना चाहते है, तो हम ही उन्हे मिटा देंगे। हैं ही कितने ?"

...और सब उठ खडे हुए। दो-चार सिपाही इधर-उधर भाग-दौड़कर गये और अन्य सैनिकों को भी ले आये। अब सिपाहियो का एक बडा हुजूम शोर मचाता हुआ बढ रहा था। इसमे पेशवा की व्यक्तिगत सेना का कोई व्यक्ति न था। क्रान्तिकारी नेताओ को खबर भी मिली, पर वे मन मसोस-कर चुप हो गये। देशी सेना काफी थी और उन्हे रोकने का मतलब होता गृहयुद्ध। ऐसी कठिन स्थिति मे, जब शत्रु द्वार पर आ खडा हुआ था, गृह-युद्ध को निमंत्रण देना समझदारी न होती।

प्रतिहिंसा की क्रोधाग्नि मे जलते भारतीय सैनिक बीबीघर पहुँचे। यहाँ पेशवा की व्यक्तिगत फौज की एक छोटी-सी टुकडी पहरे पर थी।

सिपाहियो में से एक ने आगे बढ़कर कहा, "फाटक खोल दो ! फिरंगियों की रक्षा करते हो, नामर्दो ! उन फिरंगियों की, जिन्होंने हमारे घर-गाँव-शहर सब कुछ बरबाद कर डाले हैं !"

पहरे के एक सैनिक ने विरोध किया, "तुम्हे हो क्या गया है ? श्रीमंत पेशवा बहादुर के हुकम से आगे पाँव बढाते हो ? शरणागतों को मारना बहादुरी नही है। ये गौ हैं, निहत्थी हैं। इन पर गोलियाँ चलाओगे ? नामर्द तुम हो या हम ?..." सैनिक और भी कुछ कहता, किन्तु बदले के लिए पागल एक सैनिक ने उसे मौका नहीं दिया। एक गोली सनसनाती हुई आयी और उसके सीने में जा लगी। वह चीत्कार करता हुआ धरती पर लोट गया। सिपाही पागलों की तरह शोरगुल करते हुए अन्य पहरे-दारों पर टूट पडे। कुछ मारे गये, कुछ ने जीवन-रक्षा के लिए उनका साथ देने में ही कुशल समझी।

बीबीघर का फाटक खुला। दरवाजे टूटे।

कमरों में छुपी अंग्रेज स्त्रियाँ और बच्चे घसीटकर हॉल में लाये गये। इनकी संख्या लगभग एक सौ पचीस थी। सैनिकों ने नृशंसतापूर्वक एक-एक कर सभी को काट डाला। उस दिन भयानक चीत्कार और कोलाहल से भरे बीबीघर में संसार के इतिहास की एक और घृणित घटना दीवारों पर लिखी गयी। हॉल के फर्श का कोई हिस्सा ऐसा नहीं बचा था, जिस पर रक्त की रेखा न फैल गयी हो। दीवारों पर काफी ऊँचाई तक रक्त के छींटे उड़े। और एक नहीं, अनेक सिर और धड़ देर तक फर्श पर छट-पटाते रहे।

२५

पराजय बारह जुलाई ने ही घोषित कर दी थी, पर 'जब तक स्वांसा—तब तक आसा' के भरोसे, कानपुर में तात्या और अज़ीमुल्ला डटे रहे। तेरह-चौदह जुलाई को हैवलाक कानपुर से कुछ मील दूर रह गया था।

तात्या ने निर्णय किया था कि कानपुर के मोरचे पर ही बलिदान का पुण्य कमा लेगा। उसने अज़ीमुल्ला से कहा भी था, "खान, युद्ध समाप्ति पर आ गया है। यही मौका है कि मातृभूमि के ऋण से उऋण हो लिया जाये। इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है कि कानपुर आज नहीं तो कल जरूर हमारे हाथ से निकल जायेगा। अच्छा यही है कि जितनी शक्ति है, उसे लेकर फिरंगियों पर टूट पड़ा जाये। हिन्दुस्तानी उनके तिहाई भी नहीं हैं, मारे जायेंगे, पर इस धर्मयुद्ध में जो भी मारा जाएगा, उसे स्वर्ग मिलेगा।"

अज़ीमुल्ला ने उसका चेहरा देखा। तात्या के चेहरे पर लगातार पराजय के बावजूद दुख की कोई मलिन रेखा नहीं थी, अपितु उसके स्थान

पर एक ऐसी चमक थी, जो विजयी चेहरों पर जगमगाती है। सम्भवतः यह बलिदानी व्यक्ति का आत्मसंतोष और गौरव था, जो तात्या का मुख सर्वदा तेजोमय रखता था।

तात्या बोला, "खान, सिपाही होना व्यक्ति के गौरव का चरम है। सैनिक की मृत्यु यदि वीरोचित हो तो उसकी मातृभूमि और माता-पिता गौरवान्वित होते हैं। इतिहास-लेख में उसका बलिदान सदा सूर्य की तरह चमकता है। काल की क्रूर छाया भी उसे दबा नहीं सकती। मोह-सीमाओं से आगे बढ़कर वह चिरंतन की प्राप्ति करता है, पर ये सारे सौभाग्य उसे तभी प्राप्त होते हैं, जब वह बलिदान का स्वर्ण अवसर कायरता के वशीभूत होकर त्याग न दे। आज मेरे सामने भी ऐसा ही अवसर है। मैं इसे नहीं छोड़ूंगा। मोक्ष-मार्ग का यह द्वार छोड़कर भटक जाना, मूर्खता और दुर्भाग्य होगा। फिरंगियों के सौ सिर भी काट सका तो मृत्यु में मुझे शांति मिलेगी!"

अज़ीमुल्ला अब भी कुछ नहीं बोला। उसे तात्या का 'दर्शन' अच्छा नहीं लग रहा था, फिर भी वह उसे टोकना न चाहता था।

"पेशवा बहादुर का जीवन बचाना अनिवार्य था। मुझे हर्ष है कि हम उन्हें सुरक्षित देखते हुए मृत्यु-वरण करेंगे। यह धर्मानुकूल आचरण है और यह आचरण स्वामिभक्ति का पुण्य बटोरता है। मैंने निश्चित किया है कि कल सुबह ही हैवलाक की फौजों पर चुनिन्दा आदमी लेकर टूट पड़ूंगा। इस महान् कार्य में जो व्यक्ति खुशी-खुशी मेरे साथ आना चाहें, आ सकते हैं।"

अज़ीमुल्ला समझा। तात्या ने अन्तिम शब्द विशेष रूप से उसी के लिए कहा था। उसकी इच्छा थी कि अज़ीमुल्ला भी उसका साथ दे। नीति और योजनाओं का समय जा चुका था, अब रणक्षेत्र ही परख की कसौटी थी। संवाद के ऐसे स्थल पर अज़ीमुल्ला को शांत रहना उचित न लगा, बोला, "तात्या साहब, मैं आपकी वीरता, स्वामिभक्ति और पराक्रम के लिए सदा ही श्रद्धा रखता हूँ। आज के विपत्तिकाल में भी आपकी भावनाएँ सदा की

तरह ही श्रेष्ठ और वीरोचित हैं, किन्तु युद्ध और राजनीति सिर्फ तलवार और वीरता से ही नहीं होते, समय और परिस्थिति के अनुसार कार्य करना ही नीति है। आज की परिस्थितियाँ व्यर्थ जीवन होम देने की नहीं हैं। समय की माँग है, कि हम जीवन-रक्षा करें और उपयुक्त समय पाकर पुनः उद्देश्य की सफलता के लिए प्रयत्न करें। श्रीमंत पेशवा को अकेले छोड़ देना भी समझदारी न होगी। संगठन की बड़ी कीमत होती है। मेरी प्रार्थना है कि आप भावावेश में इतनी शीघ्रता से कोई गलत कदम न उठाएं। हैवलाक की विजय को युद्ध की समाप्ति न बनने दें।"

तात्या चुप रहा।

अज़ीमुल्ला कह रहा था, "यह सही है कि कानपुर अपने हाथ से निकल रहा है। समझिए कि निकल ही गया है, पर इसका अर्थ यह तो नहीं कि वह पुनः फिरंगियों के हाथों से नहीं लिया जा सकेगा। हम और प्रयत्न करेंगे। तब तक करते रहेंगे, जब तक कि शरीर कायम है और साहस शेष है।"

तात्या को लगा अज़ीमुल्ला ठीक ही कह रहा है।

"उचित यही होगा, तात्या साहब कि आप ऐसे युद्ध का विचार छोड़कर इस समय केवल जीवन-रक्षा के बारे में सोचें। यह भी सोचो कि कानपुर छोड़ने के बाद किस तरह यह युद्ध जारी रखा जा सकेगा? रही वीरोचित मृत्यु की इच्छा, सो यदि पूर्ण प्रयत्न और सेवाओं के बावजूद उद्देश्य में सफलता नहीं मिली तो वह अवश्यम्भावी है। अतः क्यों न जितने संभव हैं, सभी प्रयत्न कर लिये जायँ?" अज़ीमुल्ला ने तात्या का हाथ अपने दोनों हाथों के बीच दबा लिया। भावुक होकर बोला, "मुझसे वायदा कीजिये, तात्या साहब! आप यह विचार छोड़कर युद्ध पुनः संगठित करने का प्रयत्न करेंगे।"

तात्या एकाएक कोई उत्तर न दे सका। अज़ीमुल्ला अधिक भावुक हो उठा, कहने लगा, "आपकी सैनिक सूझ-बूझ और योग्यता पर मुझे पूरा विश्वास है, दोस्त! आप जैसे लोग यदि ऐसे निर्णय करने लगे, तो पराजय

निश्चय है ! ... यह महान् युद्ध यदि क्षणिक प्रभाव देकर समाप्त हो गया तो उसके परिणाम भयानक होगे । फिरगी शत्रु बदले से ही प्रेरित न होगा, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से मारे देश की शक्ति कुचल डालेगा । दमन और अन्याय का चक्र चलेगा ।"

तात्या सुनता गया ।

"तात्या, यह युद्ध जब छेड़ ही दिया है, तो उस समय तक जारी रखो, जब तक शत्रु जीवित है या आप जीवित हैं । नीति यही है । यदि उद्देश्य पूरा न भी हो, तब भी यह तो शत्रु को मालूम हो ही जाना चाहिए कि हमें अत्याचार और दमन बर्दाश्त करने की आदत नही है ।" बोलते-बोलते खान का स्वर भारी और ऊँचा होता गया । जोश और आवेश था, जो क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था, "हम यों नही टूट सकते ! और यदि टूटे भी तो शत्रु को भी तोड देंगे । उसके हाथ थकान से इतने भारी हो जायेंगे कि वे हम पर कभी न उठ सकें । मुझे विश्वास है, तात्या साहब ! आज नही तो कल, एक न एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब हिन्दुस्तान की गर्दन फिरंगियों का जुआ उतारकर फेंकेगी । यही शत्रु हमारी श्रेष्ठता और महानता स्वीकार करेगा । हमारेइतिहास की कहानियाँ उसके लिए आदर्श की प्रतीक और सबक बन जायेंगी ।"

तात्या को जोश आया, उत्साह पैदा हुआ । उससे भी अधिक महत्त्व-पूर्ण था खान का उसके प्रति विश्वास, जिसे वह किसी तरह की ठेस नही पहुँचाना चाहता था । उसने कहा, "खान साहब, आप विश्वास रखे, यह युद्ध जारी रहेगा । मेरे शरीर मे जब तक रक्त की एक भी बूँद बाकी है, तब तक यह युद्ध चलता रहेगा । बराबर चलता रहेगा ! कानपुर के बाद हम किसी और स्थान से शत्रु को चुनौती देंगे और चुनौतियो का यह क्रम तब तक चलता रहेगा, जब तक कि हम नही टूट जाते या शत्रु नही टूट जाता !"

अजीमुल्ला उठ खड़ा हुआ—"तात्या साहब । आप कभी नही टूटेंगे ! यह युद्ध भी कभी नही टूटेगा, तब तक जब तक कि फिरंगियो को समुन्दर

पार नहीं धकेल दिया जाता।"

२६

सत्रह जुलाई के उस दुर्भाग्यशाली दिन ने एक बार फिर भारत के इतिहास में गुलामी की काली कहानी लिख दी।

सप्ताहों और माहों के लगातार कड़े मुकावले के वाद जनरल हैवलाक ने कानपुर की धरती पर पाँव रखा। क्रांतिकारी तितर-वितर हो चुके थे। पेशवा नाना विठूर से भागकर फतेहपुर की ओर चला गया था। हैवलाक को खवर मिली—'नाना ने गंगा में डूवकर आत्महत्या कर ली हैं।'

हैवलाक ने जव कानपुर में प्रवेश किया तो विजय के वावजूद मन में मलाल था। नाना, तात्या, टीकासिंह, वाला साहव या अजीमुल्ला, कोई नेता उसके हाथ नहीं लगा। प्रवेश के साथ-साथ ही उसे वीवीघर के हत्या-कांड का समाचार मिला। वदले की आग में झुलसते हुए हैवलाक ने गोरी फौजों को हुक्म दे दिया, "जो ठीक लगे, करो!"

गोरों के साथ सिक्ख सिपाही भी थे। हैवलाक को जैसे-जैसे खवरें मिलती गयीं, उसके शैतानी हुक्म छूटते गये।

खवर मिली कि सर ह्वीलर कुत्तों से भी वदतर मौत मारे गये थे।

जनरल ने उसी समय चिल्लाकर हुक्म दे डाला, "जो हिन्दुस्तानी दिखे, उसे कुत्ते की मौत मार डालो।"

खवर आयी कि सारा कानपुर छान मारा है, क्रान्तिकारियों का एक भी नेता नहीं मिला!

हैवलाक ने हुक्म छोड़ दिया, "शहरवाले तो हैं! तुम उन्हें गोलियों से उड़ा दो!"

—वीवीघर की दीवारों और फर्श पर गोरी मेमों और वच्चों के

खून के छींटे पड़े हैं।

"हिन्दुस्तानी पंडितों को ले जाओ, उनसे वह खून चटवाओ और कहो कि यह तुम्हारे मालिकों का खून है!"

—हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेजों के बगले लूटे और जलाये थे।

हैवलाक ने वहशियाना आवाज में तड़पकर कह दिया, "तुम हिन्दुस्तानियों को लूटो, उनके घर जलाओ!"

...और बात की बात में जनरल के हुक्म का हर शब्द सच किया जाने लगा। बीबीघर में हिन्दू पंडित ले जाये गये। उन्हें संगीनों से कोच-कोचकर वह फर्श चाटने के लिए बाध्य किया गया, जिस पर रक्त के सूखे हुए धब्बे पड़े थे। अनेक के हाथों में झाड़ू दी गयी और कहा गया कि वे उस रक्त को धोयें, साफ करें, क्योंकि मालिकों का पवित्र रक्त साफ करना गुलामों के लिए गौरव की बात है।

शहर लूट लिया गया। विरोध करने वाले हर भारतीय स्त्री-पुरुषों और बच्चों को संगीनों से कुचला गया और उनकी लाशें सड़ने के लिए शहर की सड़कों पर फेंक दी गयीं। घरों में आग लगी, मन्दिर-मस्जिद तहस-नहस कर डाले गये। हिन्दुस्तानी बदहवास इधर-उधर कोने-कातरों में भागते-छिपते देखे जाते और गोरे और सिक्ख सैनिक उन्हें यहाँ-वहाँ से पकड़ लाते। वृक्षों पर फाँसियाँ दी जातीं या गोली से उड़ा दिया जाता। हिन्दुओं के मुँह में गाय का गोश्त और मुसलमानों के मुँह में सूअर का गोश्त ठूँसा जाता। स्त्रियों को जहाँ चाहे पकड़ा गया और बलात्कार हुए।

अंग्रेज-विजय के वे दिन और रात्रि, फिर दिन और रात्रि! इतिहास इसी तरह लिखा गया।

यह सब हुआ, किन्तु हैवलाक अब भी प्यासा था। लगता था कि विजय अधूरी है। तब तक जब तक कि नाना और उसके साथी हाथ नहीं लगते। भले ही समाचार आते रहे हों कि नाना ने गंगा में डूबकर आत्महत्या कर ली, किन्तु अभी बिठूर तो है, पेशवा का घर। उसका परिवार। पेशवा न मिला तो न सही; फिरंगी उसके घर दीवार और नाते-रिश्तेदारों

से ही वदला चुकायेगा। हैवलाक दौड़ पड़ा विठूर की ओर…

विठूर शांत था। उदास और सहमा हुआ। जैसे एक विधवा हो, हाल में ही जिसके सुहाग-सिंगार उतारे गये हों।

गोरी फौजें वहाँ पहुँचीं। विठूर और आसपास का जंगल ही नहीं, गंगा-तट के आसपास का पानी छान मारा गया, किन्तु नाना नहीं मिला। खीझ उतरी ग्रामीणों पर। वही कानपुर का-सा दृश्य !

पेशवा का निवासस्थान वरवाद कर डाला गया। महल के कुछ हिस्सों में आग लगा दी गयी। कुछ धूल-धूसरित कर दिये गये।

पचीस जुलाई।

कानपुर और विठूर के दमन की आग अभी ठंडी नहीं हुई थी। हैवलाक का क्रोध और पागलपन से भरी प्रतिहिंसा सामान्य नहीं हो पायी थी कि तभी जनरल नील आ गया। लूटमार और हत्याओं का क्रम ज्यों-का-त्यों चल रहा था।

लखनऊ की ओर रवाना होने से पूर्व जनरल नील को हैवलाक ने आवश्यक निर्देश दिये और जव कूच के लिये तैयार होकर वह सीढ़ियों तक आया तो देखा, गोरे सिपाही किसी हिन्दुस्तानी को पकड़े हुए चले आ रहे हैं।

हैवलाक ठिठक गया। नील पास ही खड़ा था।

सिपाही नजदीक आये तो हैवलाक ने देखा कि एक वूढ़ा अंग्रेज़ और युवती भी उसके साथ हैं।

सिपाही सामने आ खड़े हुए। जनरल कुछ पूछे या सैनिक कुछ कहें, इसके पूर्व ही वूढ़ा अंग्रेज दो कदम आगे वढ़कर जनरल के नजदीक आ गया, "मैं पैटन हूँ।" उसने कहा। फिर पास खड़ी लड़की का परिचय दिया, "यह मेरी वेटी है, जूलिया !"

"कम ऑन ! कम ऑन !" हैवलाक ने आगे वढ़कर दोनों को सीने

से लगा लिया, "यह परिचय काफी है कि तुम अंग्रेज हो।" जनरल बोला। उसे इससे आगे न तो कुछ जानने की इच्छा थी और न उन्हीं लोगों ने उसे कुछ बताया।

नील ने हिन्दुस्तानी की ओर संकेत कर पूछा, "यह कौन है ?"

"हिन्दोस्तानी।" पास खड़ी जूलिया ने घृणापूर्वक कहा, "पेशवा नाना का गुलाम कुत्ता, अजीमुल्ला खान।"

"अजीमुल्ला !" हैवलाक लगभग चिल्ला उठा, "यही है अजीमुल्ला! शैतान, कुत्ते !"··· उसने क्रोध में मुट्ठियाँ भींचीं, जबड़े कसे। जैसे मुँह से निकलने वाला हर शब्द चबाकर गोली बना डालना चाहता हो, जो बाहर निकलते ही अजीमुल्ला के सीने में जा समायें।

गोरे सिपाहियों में कुछ सिहरन हुई। जनरल एकाएक ही जितने आवेश में आ गया था, उससे प्रकट था कि वे किसी ऐसे मुजरिम को पकड़े हुए थे, जो बेहद खतरनाक है। उन्होंने खान की बाँहों पर अपनी पकड़ और मजबूत कर दी। पहले से अधिक सतर्क हो गये।

अजीमुल्ला के चेहरे पर फैली हल्की-सी रहस्यमय मुसकान पहले से अधिक गहरा गयी। वह न तो कुछ बोला, न हैवलाक की चिल्लाहट से विचलित हुआ।

जलन और क्रोध में डूबकर हैवलाक ने न तो न्यायालय की आवश्यकता समझी, न अपराधी से किसी तरह की सफाई माँगी। उसने चिल्लाकर कहा, 'जाओ ! इसे ले जाओ और तोप के मुँह से उड़ा दो !"

अजीमुल्ला की मुसकान हँसी में बदल गयी। उस हँसी में यदि मनोरंजन का भाव था तो व्यंग्य का तीखापन भी था। उसने पैटन और जूलिया पर एक दृष्टि डाली, फिर कहा, "धन्यवाद, पैटन महाशय ! मैंने कहा था न, हिन्दुस्तानी हमेशा विश्वास करने की गलती करता है। सारे जीवन कोशिश करने के बावजूद मैं अपनी यह कमजोरी दूर नहीं ···"

आदेशपालन के लिये सैनिक लौट पड़े।

जूलिया और पैटन चुपचाप खड़े तब तक सामने की ओर देखते रहे, जब तक कि दूर मैदान से तोप की आवाज़ के साथ आसमान में कुछ चिथड़े उड़ते नहीं दीखे !…हर क्षण उन्हें उस तोप पर अविश्वास हो रहा था। क्या सचमुच अब अज़ीमुल्ला नहीं है…?